मूल्य 200 रुपए
ISSN 2582-4481

वर्ष : 43
अंक : 1

जनवरी - मार्च 2022

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

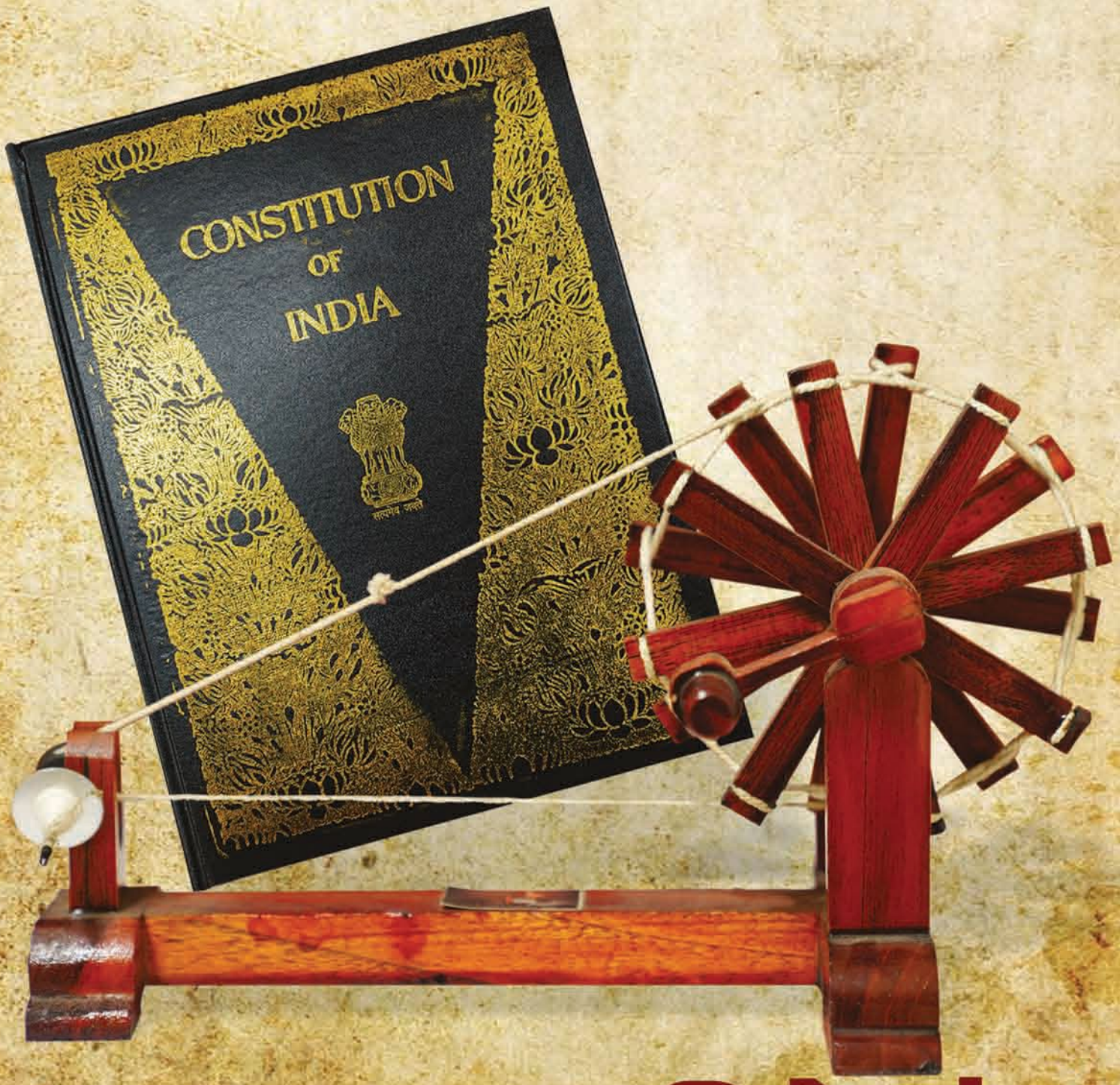

ग्राम स्वराज्य विशेषांक

सत्यमेव जयते
Government of Tripura

Azadi Ka Amrit Mahotsav

21 January
TRIPURA STATEHOOD

TRIPURA

"A LAND OF DIVERSE CULTURE AMIDST IN NATURE
OFFERS A LOT TO THE AVID TRAVELLER"

SHRI BIPLAB KUMAR DEB
CHIEF MINISTER, TRIPURA

- *16 nos. Log hut have been constructed in different tourist spots for tourist attraction. And more 33 Nos. Log huts are underconstruction at Narikelkuja, Chabimura and Jampui Hills.*
- *2 Nos. Water Scooter / Zet Ski has been introduced at Dumbor Lake to provide better service to the visiting tourists. Apart from this 2 Nos. Zet Ski at Jagamnath Dighi, Udaipur and 1 No. Zet Ski at Jagarnnath Dighi at Agartala to be operates very shortly. Floating Jetty has been commissioned at Rudrasagar (Neermahal), Gomati River (Chabimura), Dumbor Lake and Kalapania Lake under Melaghar as a part of Modernization of the tourist locations.*
- *Battery Operated vehicles (BOV) are introduced at different tourist destinations (Ujjayanta Palace, Akhura Check Post, Sepahijala Wild Life Sanctuary, Tepania Eco -Park, New Secretariat complex) of the state for providing better tourist facility.*
- *External Aid Projects in Tourism department: The Department has sent a proposal to Asian Development Bank through State Government, for an amount of Rs.500 Cr, to develop the tourism infrastructure in the State. This has been considered and project readiness finance has been approved and necessary work under progress.*
- *Paryatan Sahayak Prakalpa, an interest subvention scheme to promote entrepreneurship in tourism sector has been introduced. The applicant can avail a loan up to Rs. 5.00 lakh for any tourism related projects from banks. The interest on the loan up to 8%, will be borne by the State Government. So far 211 nos. applications have been recommended for sanction of loan.*
- *To promote the religious Destination of Tripura, Ministry of Tourism, Government of India has sanctioned Rs.37.80 Cr. under Prasad scheme. In this connection, this work has already started in Mata Tripurseswari Temple Premises.*
- *Recently on 11th November, 2021 new Dumboor Helipad has inaugurated by the Hon'ble Chief Minister for the interest of the tourists to visit Narikelkunja, Dumboor. Helicopter package will be launched very shortly.*

Tripura marching towards All round Development

Inauguration of

New Integrated Terminal Building of Maharaja Bir Bikram Airport, Agartala

• Comfortable movement for over 15 Lakh Passengers per annum • 4 Aerobridges for seamless passenger movement • Tripura to become Gateway of North East • Facilitating air transport of local produce and products • Growth of trade, tourism and economy • Eco-friendly Airport • Terminal Building of 30,000 sq. metres • Peak Hour capacity of 1200 Passengers • Investment of Rs. 450 Crore

and Launch of

Mission 100 -Vidyajyoti Schools

• Holistic and creative education to 1.2 Lakh children • ICT Labs and Vocational education for igniting Minds • 100 Vidyajyoti Schools to be "Centres of Excellence" • Modern Infrastructure for all round development of Children • Investment of Rs. 500 Crore

and

Mukhyamantri Tripura Gram Samriddhi Yojana

• Holistic development of Villages • 100 % coverage of Household drinking water tap connections and domestic electricity connections • 100% coverage of Ayushman Bharat, Ujjwala Yojana, Immunization, Kisan Credit Card and Crop Insurance • All weather roads within villages • Incentive of Rs. 6 Lakh for Gram Panchayats and Village Committees on saturation

by

Narendra Modi

Prime Minister

in the august presence of

Satyadeo Narain Arya
Governor, Tripura

Biplab Kumar Deb
Chief Minister, Tripura

Jyotiraditya M. Scindia
Union Civil Aviation Minister

Jishnu Dev Varma
Deputy Chief Minister, Tripura

Km. Pratima Bhoumik
Union MoS for Social Justice and Empowerment

at 2 P.M. on Tuesday, 4th January, 2022 ■ Swami Vivekananda Maidan, Agartala,Tripura

Join the event live at : DD NEWS DD NEWS Biplab Kumar Deb ICA Tripura

₹ 200/-

अतिथि संपादक
डॉ. चंद्रशेखर प्राण

संपादक मंडल
श्री रामबहादुर राय
श्री अच्युतानंद मिश्र
श्री बलबीर पुंज
श्री अतुल जैन
डॉ. भारत दहिया
श्री इष्ट देव सांकृत्यायन

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

वर्ष : 43, अंक : 1 जनवरी-मार्च 2022

ग्राम स्वराज्य विशेषांक

संपादक
डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

प्रबंध संपादक
श्री अरविंद सिंह
+91-9868550000
me.arvindsingh@manthandigital.com

सज्जा
श्री नितिन पंवार
nitin_panwar@yahoo.in

मुद्रण
कुमार ऑफसेट प्रिंटर्स
381, पटपड़गंज औद्योगिक क्षेत्र,
दिल्ली-110092

प्रकाशक
एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान
एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली–110002
दूरभाष : 011–23210074; ईमेलः info@manthandigital.com
Website: www.manthandigital.com

अनुक्रम

1.	लेखकों का परिचय		03
2.	संपादकीय निवेदन		04
3.	संपादकीय आलेख ग्राम स्वराज्य आधारित मौलिक संविधान क्या संभव था?	डॉ. महेश चंद्र शर्मा	06
4.	73वें संविधान संशोधन के बाद पंचायत सरकार	डॉ. चंद्रशेखर प्राण	09
5.	भारतीय संविधान सभा और ग्राम पंचायत	रामबहादुर राय	22
6.	विधान के मसौदे में ग्राम अनुपस्थित		31
7.	राजीव गांधी, भारतीय राज्य व्यवस्था और पंचायती राज संशोधन	एस. एस. मीनाक्षीसुंदरम	36
8.	ग्रामसभा : सहभागी लोकतंत्र का आधार	भीमराव रासकर	41
9.	गुजरात की समरस पंचायतें	भरत पंड्या	46
10.	मजबूत पंचायत व्यवस्था हेतु विभिन्न समितियों के सुझाव	अवनेश कलिक	50
11.	दायित्ववान एवं सशक्त पंचायतें	मनोज राय	52
12.	श्री अरविंद की विश्वदृष्टि में भारत की शासन-प्रणाली	रामबहादुर राय	58
13.	गांधी के सपनों का स्वराज	डॉ. राजीव रंजन गिरि	66
14.	पंचायती राज और विकेंद्रित राज्य-व्यवस्था पर धर्मपाल का अनुशीलन	डॉ. जितेंद्र के. बजाज	75
15.	श्रीगुरुजी एवं पं. दीनदयाल उपाध्याय की दृष्टि में पंचायती राज	डॉ. शिवशक्ति बक्सी	80
16.	लोहिया का 'चौखंभा राज' सहभागी राष्ट्र निर्माण का समाजवादी रास्ता	आनंद कुमार	83
17.	लोक, परंपरा और विकेंद्रित ढाँचे पर जेपी के सुझाव	प्रेम प्रकाश	96
18.	विकेंद्रीकरण की नेहरूवादी दृष्टि	डॉ. योगेश कुमार	99

आनुषंगिक आलेख

1.	स्वावलंबी गाँव के लिए सहकारिता	20
2.	संविधान संशोधन की पूरक कार्यवाही	21
3.	पूर्ण लोकतंत्र अर्थात पंचायती राज का निर्माण	94

लेखकों का परिचय

डॉ. चंद्रशेखर प्राण पंचायती राज व्यवस्था पर अठारह शोधपरक पुस्तकों के रचनाकार डॉ. चंद्रशेखर प्राण कई महत्त्वपूर्ण पदों पर रहते हुए भी निरंतर ग्राम्य जीवन और उसकी व्यवस्था से जुड़े रहे हैं। आरंभिक दौर से ही सामाजिक कार्यों से लगाव। नेहरू युवा केंद्र में क्षेत्रीय समन्वयक से लेकर राष्ट्रीय निदेशक तक के रूप में 25 वर्षों तक विभिन्न पदों पर कार्य। नए पंचायती राज की वस्तुस्थिति के अध्ययन और आकलन के लिए 1999 के अंत में लगातार 72 दिनों तक साइकिल से पाँच राज्यों - उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा तथा पंजाब - की पंचपरमेश्वर यात्रा का नेतृत्व। 2002 में सरकारी सेवा से अध्ययन अवकाश लेकर 'विकास में ग्राम पंचायतों की भूमिका तथा युवाओं का दृष्टिकोण एवं व्यवहार परिवर्तन' विषय पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय से पाँच राज्यों - उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, कर्नाटक एवं पश्चिम बंगाल - का तुलनात्मक शोधकार्य। वर्ष 2013 में स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेकर पुनः सामाजिक कार्यों के प्रति समर्पित। संपर्क: cspran854@gmail.com

रामबहादुर राय पद्मश्री से सम्मानित। हिंदुस्तान समाचार के समूह संपादक और इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के अध्यक्ष। लोकनायक जयप्रकाश नारायण के साथ आपातकाल विरोधी आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाई।
संपर्क: rbrai118@gmail.com

एस. एस. मीनाक्षीसुंदरम लंबे समय तक भारतीय प्रशासनिक सेवा में रहे एस.एस. मीनाक्षीसुंदरम मद्रास (अब चेन्नई) के लोयोला कॉलेज से गणित में परास्नातक और नई दिल्ली की जामिया मिलिया इस्लामिया नेशनल यूनिवर्सिटी से विकास अर्थशास्त्र में पी-एच.डी. हैं। कर्नाटक के मुख्यमंत्री के साथ प्रधान सचिव तथा भारत के तीन प्रधानमंत्रियों के साथ संयुक्त सचिव के रूप में कार्य के बाद अब एक स्वैच्छिक संगठन एमवाईआरएडीए के अध्यक्ष। साथ ही राष्ट्रीय प्रगत अध्ययन संस्थान तथा गांधीग्राम ग्रामीण विश्वविद्यालय से संबद्ध इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल ऐंड इकोनॉमिक चेंज में अभ्यागत आचार्य के रूप में अध्यापन। प्रशासनिक सेवा में रहते हुए ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज की कई संस्थाओं से सक्रिय जुड़ाव। पंचायती राज पर पहली कृति 'डीसेंट्रलाइजेशन इन डेवलपिंग कंट्रीज' 1994 तथा दूसरी 'एंपावरमेंट ऑफ रूरल विमेन' 2017 में प्रकाशित।
संपर्क: meenakshi54@hotmail.com

भीमराव रासकर रिसोर्स ऐंड सपोर्ट सेंटर फॉर डेवलपमेंट के निदेशक भीमराव रासकर तीसरी सरकार आंदोलन के प्रमुख सदस्यों में शामिल हैं। इसके अलावा महाराष्ट्र में समाजिक कार्य से संबद्ध कई संस्थाओं-राष्ट्रीय आरोग्य अभियान की संनियंत्रण समिति, महिला राजसत्ता आंदोलन, राज्य निर्वाचन आयोग की आईडीईजीजी सेल आदि से भी सक्रिय संबद्धता। संपर्क: bhim.rscd@gmail.com

भरत पंडया पूर्व विधायक, पूर्व प्रदेश प्रवक्ता और प्रदेश महासचिव गुजरात भाजपा। भाजपा गुजरात में 33 साल सें कार्यरत भरत पंडया ने प्रदेश में संगठन, मिडीया, प्रशिक्षण वर्ग, यात्राएं, चुनाव संबंधित प्रचार-प्रसार, मेनेजमेन्ट, चूनाव संकल्पपत्र से लेकर कई जिम्मेदारियाँ निभाई है।
संपर्क: bharatpandyabjp@gmail.com

अवनेश कलिक विगत 20 वर्षों से उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड एवं उत्तराखंड में विकास के मुद्दे पर विशेषकर स्थानीय स्वशासन के सशक्तीकरण हेतु कार्य कर रहे अवनेश कलिक ने पंचायतों के सशक्तीकरण हेतु उत्तर प्रदेश पंचायती राज संहिता के साथ-साथ त्रिस्तरीय पंचायत प्रतिनिधियों के लिए संदर्भ सामग्री तथा मास्टर प्रशिक्षकों के लिए संदर्भ साहित्य के अलावा झारखंड में पंचायती राज के लिए 16 मैनुअल तथा बिहार पंचायती राज के लिए 5 मैनुअल का निर्माण किया है। पंचायतों के सशक्तीकरण हेतु भारत सरकार की विभिन्न योजनाओं में पंचायतों की भूमिका को प्रदर्शित करते हुए अलग-अलग संदर्भ साहित्य का भी निर्माण। पंचायती राज विषय पर पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर लेखन। वर्तमान में भारत सरकार के डीम्ड गवर्नमेंट कंपनी ए.एफ.सी. इंडिया लिमिटेड में सहायक महाप्रबंधक एवं प्रभारी के रूप में कार्यरत एवं उत्तर प्रदेश के अलावा अन्य प्रांतों में पंचायती राज व्यवस्था के प्रभारी के रूप में भी कार्यरत। संपर्क: awanesh1971@rediffmail.com

मनोज राय भारत के लगभग सभी राज्यों में पंचायतों और नगर पालिकाओं के साथ मिलकर काम मनोज राय ने एक प्रतिष्ठित राष्ट्रीय गैर सरकारी संगठन पीआरआईए (प्रिया) के (1996-2018) तक निदेशक रहे हैं। इसके साथ-साथ देश में पंचायतों को मजबूत करने के लिए विभिन्न मध्यस्थता प्रयासों और शोधों का नेतृत्व। पंचायतों से संबंधित मुद्दों पर केंद्र और राज्य सरकारों और अन्य संस्थानों को तकनीकी सहायता भी प्रदान की। बाद में आगा खान फाउंडेशन के साथ मध्य और दक्षिण एशिया के क्षेत्रीय सलाहकार के रूप में कार्य। इस अवधि (2018-2021) के दौरान चल रही विकास पहलों में पारदर्शिता, दक्षता और जवाबदेही स्थापित करने के लिए विभिन्न देशों के राष्ट्रीय और स्थानीय सरकारों के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय गैर सरकारी संगठनों का मार्गदर्शन और समर्थन। संपर्क: manojrai3011@gmail.com

डॉ. राजीव रंजन गिरि जन्म 19 दिसंबर 1978, भादा, पूर्वी चंपारण (बिहार)। शिक्षा : एम .ए. (हिंदी), पीएच.डी.। 'परस्पर : भाषा - साहित्य- आंदोलन', 'अथ-साहित्य : पाठ और प्रसंग', 'संविधान सभा और भाषा विमर्श', 'स्त्री -मुक्ति : यथार्थ और यूटोपिया', 'गांधीवाद रहे न रहे' पुस्तकें प्रकाशित। 'संवेद' के संपादन से संबद्ध रहे। संप्रति : दिल्ली विश्व विद्यालय के राजधानी कॉलेज में अध्यापन। संपर्क: rajeev.ranjan.giri@gmail.com

डॉ. जितेंद्र के. बजाज कई प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में शोध अनुभव। जनसत्ता के स्थानीय संपादक भी रहे। समसामयिक विषयों पर कई पुस्तकों का लेखन। संप्रति सेंटर फॉर पॉलिसी स्टडीज (चेन्नई एवं दिल्ली) के निदेशक।
संपर्क: policy.cpsindia@gmail.com

डॉ. शिवशक्ति बक्सी अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के कार्यकर्ता रहे डॉ. शिवशक्ति बक्सी नई दिल्ली स्थित जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से आधुनिक इतिहास में पी-एच.डी. हैं। एक पुस्तक 'पं. दीनदयाल उपाध्याय: लाइफ ऑफ ऐन आइडियोलॉग पोलिटिशियन' प्रकाशित। संप्रति: भाजपा प्रकाशन विभाग के राष्ट्रीय प्रभारी, भाजपा मुखपत्र 'कमल संदेश' के संपादक।
संपर्क: shivshaktibjp@gmail.com

आनंद कुमार जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से आचार्य पद से सेवानिवृत्त। इसके अलावा देश-विदेश के कई विश्वविद्यालयों में अध्यापन।
संपर्क: anandkumar1@hotmail.com

प्रेम प्रकाश कवि-लेखक और पत्रकार का पहला कविता संग्रह 'खिलौना या आईना' तब आया, जब स्नातक के छात्र थे। इस बीच कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से जयप्रकाश आंदोलन और हिंदी कविता विषय पर एम. फिल.। हाल में आलोचना पुस्तक 'इमरजेंसी में कविता' प्रकाशित। जापानी लेखिका मैरिको शिंजो की पुस्तक 'मोताइनाई ग्रैंडमा' का हिंदी अनुवाद नेशनल बुक ट्रस्ट से प्रकाशित। इसके साथ ही एक और पुस्तक 'शिक्षा परीक्षा और प्रधानमंत्री' भी प्रकाशित। 1992 से लगातार पत्रकारिता के क्षेत्र में। पत्रकारिता में औपचारिक पारी 1999 में 'जनसत्ता' से शुरू। बाद में 'सहारा समय', 'राष्ट्रीय सहारा', 'नेशनल दुनिया' और 'न्यूज ट्रस्ट ऑफ इंडिया' के लिए कार्य। करीब ढाई दशक की पत्रकारिता के दौरान प्रचुर मात्रा में वैचारिक और स्तंभ लेखन, सामयिक मुद्दों पर कई विशिष्ट पृष्ठों का आयोजन और समन्वय। विष्णु प्रभाकर पत्रकारिता सम्मान (2017), इंडियन प्लान अवार्ड (2016), वाइएस रिसर्च फाउंडेशन का एक्सीलेंस अवार्ड (2016), प्रभाष जोशी स्मृति पत्रकारिता सम्मान (2020) से विभूषित। संप्रति: जनसत्ता में सहायक संपादक।
संपर्क: ppgulshan@gmail.com

डॉ. योगेश कुमार लखनऊ स्थित गिरि इंस्टीट्यूट ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज से पी-एच.डी. डॉ. योगेश कुमार मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ में कार्यरत एक प्रमुख स्वयंसेवी संस्था समर्थन: सेंटर फॉर डेवलपमेंट सपोर्ट के संस्थापक सदस्य तथा कार्यकारी निदेशक हैं। स्थानीय शासन, जवाबदेही और पारदर्शिता पर कई शोध पत्रों का लेखन। संपर्क: yogesh@samarthan.org

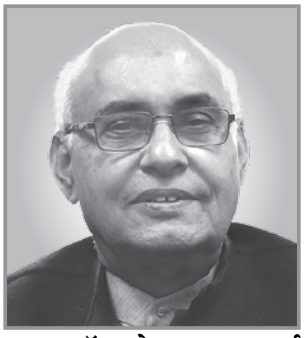

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

संपादकीय निवेदन

2022 वर्ष का यह प्रथम अंक है। आजादी के अमृत महोत्सव का प्रथम् अंक। आजाद भारत की सबसे महत्वपूर्ण रचनात्मक गतिविधि, भारतीय संविधान का निर्माण ही था। अंग्रेजी साम्राज्य द्वारा 1857 के बाद हुए संवैधानिक विकास की प्रक्रिया का यह अंतिम छोर था। संविधान सभा बनाकर, उसके प्रारूपण का आधार देकर, वे चले गए।

यह संविधान हमारा है, हमारे अपनों द्वारा स्वीकार किया हुआ है। यह हमारी आजादी का परिणाम है। कुछ संवैधानिक मुद्दे हैं, जिनको इस अवसर पर समझना चाहिए। इसके लिये 'मंथन' ने इस वर्ष चार विषय सोचे हैं। पहला है, ब्रिटिश संसदीय प्रणाली बनाम भारत का ग्राम स्वराज्य। अतः यह पहला विशेषांक 'ग्राम स्वराज्य विशेषांक' है। दूसरा विषय, 'हम भारत के लोग' बहुसंख्यक एवं अल्पसंख्यक में संविधानतः ही बँटे हुए हैं। इस बँटवारे की भी समीक्षा आवश्यक है, अतः दूसरा विशेषांक 'अल्पसंख्यक विशेषांक' होगा। भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों की बहुत चर्चा होती है, लेकिन संविधान भारतीय राज्य के लिए कुछ 'दिशा निर्देशक तत्वों' को भी अभिलिखित करता है, जिनकी चर्चा नहीं होती। अतः तीसरा विशेषांक 'नीति निर्देशक तत्व विशेषांक' होगा। चौथा विषय है, भारत के पुराने संप्रभु राज्य जो 'ब्रिटिश इंडिया' के हिस्से नहीं थे। उनकी ब्रिटिश क्राउन से संधियाँ थीं। वे 'रियासती राज्य' संविधान सभा में समुचित स्थान नहीं पा सके, जबकि इन राज्यों में भारत की लगभग 40 प्रतिशत जनता का निवास था। इस विषय को भी कम ही विमर्श प्राप्त हुआ है। अतः चौथा विशेषांक होगा 'रियासती राज्य विशेषांक'। संवैधानिक अनुसंधानपूर्ण अध्ययनों की परंपरा में 'मंथन' के ये अनुसंधानपरक अंक वर्तमान व भावी पीढ़ी के लिए ज्ञान-निधि सिद्ध होंगे, यह विश्वास है। आपका सहयोग तो सदैव ही अपेक्षित है।

'संघ दृष्टि विशेषांक' को प्राप्त प्रतिसाद के लिए आभारी हूँ। 'ग्राम स्वराज्य विशेषांक' आपके हाथ में है। इस अंक में अतिथि संपादक के नाते हमें डॉ. चंद्रशेखर प्राण जैसे सक्रिय अध्येता उपलब्ध हुए। उनके मार्गदर्शन में इस अंक को लब्धप्रतिष्ठित एवं अनुभवी लेखक भी प्राप्त हुए। श्री रामबहादुर राय ने संविधान के अधिष्ठान पर अनुपम गवेषणात्मक आलेख लिखा है। संविधान के 73वें संशोधन के बाद उत्पन्न हुई स्थिति के विवेचन का भी सांगोपांग प्रयत्न इस अंक में हुआ है। संविधान सभा ग्राम-स्वराज्य अथवा पंचायती-राज्य की उपेक्षा से कितनी आहत थी इसका अंदाज तब तक नहीं लग सकता, जब तक हम संविधान सभा के वाद-विवाद को ठीक से

न पढ़ें। 'मंथन' ने कोशिश की है कि संविधान सभा में हुई बहस के प्रासंगिक अंशों को पाठकों तक पहुँचाया जाए।

भारतीय राज्य-व्यवस्था के बारे में चाहे आधुनिक शिक्षा प्राप्त भारतीय कम जानते हों, लेकिन पंचायताधिष्ठित भारत की मौलिक शासन-व्यवस्था हमें जाननी समझनी ही चाहिए। इसके लिए श्री अरविंद, महात्मा गांधी, श्रीगुरुजी (मा.स. गोलवलकर), पं. दीनदयाल उपाध्याय, डॉ. राममनोहर लोहिया एवं जयप्रकाश नारायण के संदर्भित विचारों को इस अंक में समेटने का प्रयास किया गया है। जो हमारी व्यवस्था के तात्कालिक नियामक थे पं. जवाहरलाल नेहरू उनकी विचारसरणी तथा उसमें परिवर्तन के वाहक बने। श्री राजीव गांधी के प्रयत्नों का भी विवेचन हम इस अंक के सुधी लेखकों द्वारा प्राप्त कर सके। मैं सबके प्रति कृतज्ञतापूर्वक आभार प्रकट करता हूँ। आप इसे समुचित प्रतिसाद देंगे, इसकी अपेक्षा करता हूँ। शुभम्।

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा
mahesh.chandra.sharma@live.com

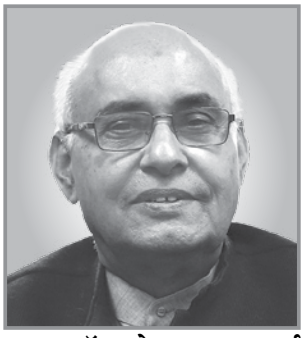

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

संपादकीय आलेख

ग्राम स्वराज्य आधारित मौलिक संविधान क्या संभव था?

भारतीय संकल्पना का ग्राम स्वराज्य या पाश्चात्य संसदीय अथवा अध्यक्षीय राज्य पद्धतियाँ, इनमें से भारत के संविधान का अधिष्ठान क्या हो? आजादी के आंदोलन में भी इस मुद्दे पर चर्चा होती थी। 1905 से 1911 तक चले बंग-भंग विरोधी राष्ट्रीय आंदोलन का नारा 'स्वदेशी' एवं 'वंदेमातरम्' था। श्री अरविंद ने कहा था कि भारत का स्वराज्य 'वेदांतिक स्वराज्य' होगा। लोकमान्य तिलक ने कहा, 'पुनश्च हरिओम', तथा महात्मा गांधी ने कहा, 'रामराज्य और ग्राम स्वराज्य'। यह भारतीयतापरक स्वराज्य की परिकल्पना थी।

वहीं एक दूसरी भी धारा थी जो पाश्चात्य प्रकार की संसदीय शासन-व्यवस्था चाहती थी, दादाभाई नौरोजी इसमें अग्रणी थे, नरम दल के सभी नेता इस मत को मानते थे। अंग्रेज शासन ने भी संवैधानिक सुधार[1] की एक प्रक्रिया को प्रारंभ किया था। लगभग 1920 के बाद क्रांतिकारियों को छोड़कर जो सार्वजनिक आजादी का आंदोलन चल रहा था, वह इन संवैधानिक सुधारों के इर्द-गिर्द ही चला था। लेकिन लोकमन तो स्वाभाविक रूप से भारतीयतापरक ही था। महात्मा गांधी की वाणी में वह लोकमन प्रतिध्वनित भी होता था। जनांदोलन का उद्घोष तो वंदेमातरम् एवं स्वराज्य का था लेकिन साम्राज्यवादी कूटनीति, तत्कालीन नेतृत्व को संवैधानिक सुधारों की धारा में खींचती था। परिणामतः 1909, 1919 व 1935 के अधिनियम अस्तित्व में आए तथा भारत का नेतृत्व इन अधिनियमों की चपेट में रहा। इन अधिनियमों में कुछ लोगों को स्वतंत्रता का मार्ग सूझता था तो कुछ लोगों को सत्ता का आकर्षण होता था। परिणामतः आजादी बाद में आई तथा हमारे नेता सत्ता में पहले गए।

इसी संवैधानिक प्रक्रिया में से हमारी संविधान सभा भी स्थापित हुई। कैबिनेट मिशन योजना एवं 1935 के अधिनियम में से संविधान निर्माण का मार्ग प्रशस्त हुआ। क्या इस प्रकार जन्मी संविधान सभा भारतीयतापरक विधान रच सकती थी? क्या ब्रिटिश पार्लियामेंट के अधिनियमों को हम अस्वीकार कर देते तो यह संविधान सभा बन पाती? इन प्रश्नों का उत्तर है, नहीं। लेकिन वातावरण ऐसा बना था कि संविधान सभा के निर्माण से हमें अपने भाग्य के नियमन का अवसर मिल गया है। तभी जब डॉ. अंबेडकर ने संविधान का मसौदा प्रस्तुत किया तो अधिकांश सदस्यों ने तीव्र प्रतिक्रियाएँ कीं। उन्हें लगता था कि हम कांग्रेसी हैं, महात्मा गांधी हमारे नेता हैं, तो हम अपनी आत्मा के अनुकूल संविधान बनाएंगे। मंथन के इसी अंक में श्री रामबहादुर राय का आलेख है तथा संविधान सभा में सदस्यों के उद्गारों का भी आलेख है। उनसे यह तथ्य स्पष्ट हो जाएगा।

संविधान का मसौदा पूर्णतः विदेशी है, पाश्चात्य नागरी सभ्यता एवं व्यक्तिवाद का नियामक है। भारत की सभी सामाजिक, सांस्कृतिक संस्थाओं की उपेक्षा करता है। इस वास्तविकता ने सदस्यों को आहत किया वे आक्रोशित भी हुए। डॉ. अंबेडकर के बहुत ही अनुसंधानपूर्वक तैयार किए गए, विद्वतापूर्ण भाषण एवं वैधिक प्रक्रियाओं को विवेचित करने

वाली प्रभावी वक्तृता के बावजूद उन्हें सदस्यों के आक्रोश का सामना करना पड़ा। संभवत: यह डॉ. अंबेडकर के लिए अनपेक्षित था। उन्होंने अपना कार्य पूरी निष्ठा से किया था। वे आश्चर्यचकित थे कि क्या इन सदस्यों को नहीं मालूम कि हम संविधान निर्माण में 1935 के अधिनियम से बँधे हुए हैं। यह संसदीय तथा संघीय शासन हमें इसी अधिनियम से प्राप्त हुए हैं। अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक का बँटवारा भी इसी अधिनियम की देन है। "विधान परिषद ने उक्त समिति को यह भी आदेश दिया था कि कतिपय विषयों में वह भारत सरकार के 1935 के एक्ट में दी हुई प्रावधानों का ही अनुगमन करे।"[2] अपने वक्तव्य के प्रारंभ में ही डॉ. अंबेडकर ने यह भी कहा था "मसौदा समिति ने आपके सभी आदेशों का पालन सच्चाई से किया है।"[3]

मसौदा समिति के समक्ष श्री बी.एन. राव का बनाया हुआ ड्राफ्ट पहले से मौजूद था। इसके अलावा अनेक समितियाँ बनाई गई थीं। उनकी रिपोर्टें थीं, यथा संघ शासन समिति, संघ विधान समिति तथा मौलिक अधिकारों, अल्पसंख्यकों एवं कबायली क्षेत्रों के लिए नियुक्त परामर्शदात्री समिति इत्यादि द्वारा प्रस्तुत रिपोर्टों के आधार पर विधान तैयार करना था। अत: जब डॉ. अंबेडकर पर आक्रमण हो रहे थे, तब श्रीमती दाक्षायणी वेलुयादुन ने कहा, "मसौदा समिति के योग्य एवं सुवक्ता अध्यक्ष ने नवीन भारतीय गणतंत्र के विधान निर्माण में प्रशंसनीय रूप से अपना कर्तव्य पालन किया है। मेरा ख्याल है चाहने पर भी वे उन मुख्य-मुख्य सिद्धांतों के बाहर नहीं जा सकते थे, जिनके आधार पर, सत्ता हस्तांतरित हुई है। इसलिए मेरी समझ में जो भी आलोचना इस संबंध में उनके विरुद्ध की गई है, वह सर्वथा अशोभनीय और अनुचित है।"[4]

वस्तुत: जितने बंधनों में मसौदा अथवा प्रारूपण समिति काम कर रही थी, उससे किसी मौलिक विधि रचना की अपेक्षा करना समुचित नहीं था। लेकिन अधिकांश सदस्य इस सच्चाई को गंभीरता से नहीं जानते थे। अत: गहरा आक्रोश प्रकट हुआ। डॉ. अंबेडकर ने अपने आपको इस बहस से अलग कर लिया। अत: स्थिति को सँभालने का कार्य प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू को करना पड़ा। सभा में न केवल कांग्रेस का प्रचंड बहुमत था वरन् जवाहरलाल जी के प्रतिभापूर्ण चमत्कारिक व्यक्तित्व से लोग अभिभूत थे। ग्राम-स्वराज्य की अवहेलना को लेकर उठे आक्रोश को उन्होंने शांत किया। वे चार दिनों तक लगातार शांत रहकर बहस सुनते रहे। चौथे दिन वे उठे तो सभा में स्वाभाविक हर्षध्वनि हुई।

जवाहरलाल जी ने लंबा भावप्रवण एवं काव्यात्मक भाषण दिया, वह भाषण भी उनकी साहित्यिक प्रतिभा का नमूना है। उन्होंने अपने भाषण में ग्राम-पंचायत के उलाहने का कोई जिक्र नहीं किया। आलोचनास्वरूप कहे गए तर्कों का भी उत्तर नहीं दिया। लेकिन उनके काव्य-प्रवाह में सभा प्रवाहित हो गयी। तर्क के नाते उन्होंने जो बात कही, वह यह थी:

"हम यह अवश्य ही चाहते हैं कि अपने विधान को अधिक से अधिक ठोस और स्थायी बनाएँ, किंतु विधान में स्थायित्व नहीं होता, उसमें कुछ लचक होनी ही चाहिए। यदि आप किसी भी चीज को कठोर और स्थायी बनाते हैं, तो आप राष्ट्र के विकास को रोकते हैं, एक सजीव जाति के विकास को रोकते हैं, इसलिए विधान को लचीला रखना ही होगा।....हम लोग जो सभा में यहाँ समवेत हैं, अवश्य ही भारतीय जनता के प्रतिनिधि हैं, पर इस विधान के आधीन नया चुनाव होने के बाद, जिसमें कि हर बालिग नर-नारी को मतदान का अधिकार होगा, जो सभा बनेगी....उसका नाम कुछ भी हो--- वह वास्तविक प्रतिनिधिमूलक सभा होगी.....इस प्रकार निर्वाचित सभा को यह अवसर मिलना चाहिए कि वह विधान में इच्छानुसार परिवर्तन कर सके और विधान के अनुसार उसको अवश्य ही यह अधिकार दिया जाएगा।"[5]

निर्वाचित सभा को यथापेक्षित परिवर्तन के लिए अधिकार दिया जाएगा, यह एक गंभीर आश्वासन था। निर्वाचित भारतीय संसद को क्या कभी यह अधिकार मिला? क्या कभी संविधान सभा के विमर्श के प्रकाश में संविधान की समीक्षा का प्रस्ताव संसद में आया, नहीं। संविधान को केवल सत्ता संचालन का औजार बना लिया गया। संसद व संसद के बाहर कभी भी इस विषय को विमर्श का मुद्दा नहीं बनाया गया, सत्तारूढ़ दल के साथ ही संपूर्ण राजनैतिक नेतृत्व इसके लिए जिम्मेदार है।

लेकिन इस बहस का असर संवेदनशील डॉ. अंबेडकर पर हुआ। उन्होंने अपने को इस बहस से अलग कर लिया था। सदन में उनकी अनुपस्थिति पर सवाल भी उठे। सामान्यत: प्रस्ताव प्रस्तुत करने वाला व्यक्ति ही प्रस्ताव पर हुई बहस का उत्तर देता है। लेकिन इस बहस का उत्तर उन्होंने नहीं दिया। जवाहरलाल जी के हस्तक्षेप के बाद आलोचना का स्वर कुछ मद्धिम हो गया था। मसौदा समिति के ही एक सदस्य सैयद मोहम्मद सादुल्ला ने अत्यंत संक्षेप में बहस का उत्तर दिया। उन्होंने भी अपने उत्तर में ग्राम स्वराज्य या पंचायती राज्य का जिक्र नहीं किया तथा स्पष्टीकरण देते हुए कहा था, "श्रीमान्, कार्यवाही की रिपोर्टों से मुझे यह पता चलता है कि उससे केवल लक्ष्य-संबंधी प्रस्ताव तक ही अपने को सीमित रखकर विधान बनाने को कहा गया था और इसलिए जिस प्रकार की आलोचना की गई है, वह स्वाभाविक ही है। उस समय भी बुद्धिमान लोग यही समझते थे कि इस प्रकार की आलोचना होगी और इसलिए बंबई के विद्वान प्रधानमंत्री श्री खेर ने सरकारी प्रस्ताव पर एक संशोधन उपस्थित किया था, जिसमें हमको कुछ आदेश दिए

गए थे। मैं उनके भाषण के कुछ अंश पढ़कर सुनाऊंगा। उन्होंने मूल प्रस्ताव पर मसौदा समिति के निर्माण के संबंध में एक संशोधन उपस्थित किया था और उसमें यह कहा गया था कि -मसौदा-समिति का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह वैधानिक सलाहकार[6] के तैयार किए हुए विधान में सम्मिलित की जाने वाली सभी बातों को यथोचित स्थान दे और अपने दुहराए हुए विधान के मसौदे को सभी के विचारार्थ उपस्थित करे।"[7]

इस उत्तर के बाद 'मसौदा-प्रस्ताव' सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया। अनुच्छेदानुसार बहस प्रारंभ हुई। अनुच्छेदों में तो कहीं ग्राम स्वराज्य था ही नहीं, अत: उसकी चर्चा न होना स्वाभाविक था। लेकिन नीति निर्देशक तत्वों की अनुच्छेदानुसार चर्चा के समय श्री अनंतशयनम् आयंगर तथा के संथानम् ने एक संशोधन पेश किया:

"अनुच्छेद 31 में नया अनुच्छेद 31ए जोड़ा जाए। राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कार्रवाई करेगा और उन्हें स्वशासन के अंगों के रूप में कार्य करने देने के लिए यथावश्यक शक्ति एवं प्राधिकार प्रदान करेगा। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने उस समय अचानक लचीला रुख अपनाकर पूरी संविधान सभा को चकित कर दिया। किसी को दूर-दूर तक इसकी संभावना नहीं दिख रही थी कि वे कोई संशोधन स्वीकार करेंगे। जैसे ही के. संथानम अपने भाषण का अंतिम वाक्य पूरा कर अपनी सीट पर बैठे कि डॉ. अंबेडकर खड़े हुए। वे बोले, "मैं संशोधन को स्वीकार करता हूँ।" इससे सदन में संतोष का भाव पैदा हुआ। प्रसन्नता की लहर चल पड़ी। इस कारण एक के बाद दूसरे उन सदस्यों ने अपनी प्रसन्नता व्यक्त की। उसमें टी. प्रकाशम, सुरेन्द्र मोहन घोष, सेठ गोविंद दास, डॉ. सुब्रमण्यन, एल. कृष्णास्वामी भारती थे। उस समय जो नया अनुच्छेद स्वीकार हुआ, वह संविधान के नीति-निदेशक तत्व का अंग बन गया। लेकिन इससे संविधान का मौलिक रूपांतरण नहीं हो सका। संविधान की औपनिवेशिक निरंतरता ही बनी रही। जिस तरह कोई माँ अपनी संतान को बुरी नजर से बचाने के लिए उसके माथे पर काला टीका लगा देती है, वैसे ही संविधान सभा के नीति-निदेशक तत्व में ग्राम पंचायत को जगह देकर एक टोटका किया। बेनेगल नरसिंह राव ने जो संवैधानिक स्वरूप निर्धारित किया था, वह यथावत बना रहा।"[8]

इसके पश्चात की एक लंबी कहानी है। जिसके सभी संदर्भों के आलेख इस अंक में हैं। शुभम्।

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

mahesh.chandra.sharma@live.com

संदर्भ

1. *भारत का संविधान एक परिचय*, ब्रज किशोर शर्मा, प्रेंटिस हॉल ऑफ इंडिया, नई दिल्ली 2002, अध्याय 1, पृ. 1-27
2. *विधानसभा के वाद-विवाद*, खंड 7क, भाग-3, 4 नवंबर 1948, मा. डॉ. बी. आर. अंबेडकर, पृ. 60
3. वही, 4 नवंबर 1948, मा. डॉ. बी. आर. अंबेडकर, पृ. 60
4. वही, 8 नवंबर 1948, श्रीमती दाक्षायणी वेलायुदन, पृ. 289
5. वही, 8 नवंबर 1948, मा. पं. जवाहरलाल नेहरू, पृ. 314
6. *संविधान के प्रधान निर्माता बेनेगल नरसिंह राव*, *भारतीय संविधान की अनकही कहानी*, राम बहादुर राय, पृ. 412
7. *विधानसभा के वाद-विवाद*, खंड 7क, भाग-3, 9 नवंबर 1948, सैय्यद मोहम्मद सादुल्ला, पृ. 436-37
8. *अंबेडकर से संविधान सभा चकित*, भारतीय संविधान की अनकही कहानी, रामबहादुर राय, पृ. 267

डॉ. चंद्रशेखर प्राण

73वें संविधान संशोधन के बाद पंचायत सरकार

संविधान में संशोधन के जरिये तीसरी सरकार का प्रावधान तो कर दिया गया और इसे जमीनी स्तर पर लाने की प्रक्रिया भी शुरू कर दी गई, लेकिन अभी भी इसे प्रभावी होने में बहुत कुछ शेष है। एक वस्तुगत अध्ययन

भारत का गाँव एक सांस्कृतिक इकाई है, जो परिवार और पड़ोस से मिलकर बनता है। इसका जो स्वरूप प्रारंभिक रूप में विकसित हुआ वही गाँव समाज है। इस गाँव समाज की व्यवस्था के बेहतर संचालन के लिए, जनसामान्य ने जो सहज पद्धति अपनाई उसे ही 'पंचायत' कहा गया। पंचायत ने शताब्दियों से गाँव समाज को और प्रकारांतर से भारत की संस्कृति को सुरक्षित और संवर्धित किया है। गाँव समाज प्रारंभिक काल से ही अपने स्वराज्य व स्वावलंबन के लिए इसी पंचायत पद्धति को आधार बनाता रहा है।

आजादी के बाद जब देश का संविधान बनना तय हुआ तभी महात्मा गांधी ने जमीनी स्तर पर आजादी व लोकतंत्र को आम आदमी के जीवन का उपयोगी अंग बनाने के लिए पंचायत को आधार के रूप में लेने की बात कही थी। ग्रामसभा से लेकर अखिल भारतीय स्तर (साथ में ब्लॉक, जिला व प्रांत) तक पंचायत सरकार के प्रावधान पर आधारित गांधीवादी संविधान के लेखक श्रीमन्नारायण अग्रवाल के शब्दों में, "गांधी जी की निश्चित राय है कि भारत का भावी संविधान उनके सकारात्मक और प्रत्यक्ष लोकतंत्र, अहिंसक कुटीर अर्थव्यवस्था और मानव संपर्कों के साथ अच्छी तरह से निर्मित और समन्वित ग्राम समुदायों के संगठन पर आधारित होना चाहिए"।[1] लेकिन कुछ कारणों से यह संभव नहीं हो सका। संविधान सभा में इसी विषय पर हुई एक लंबी बहस के बाद इसे भविष्य के लिए छोड़ते हुए नीति निर्देशक तत्वों के अंतर्गत शामिल करके राज्य (सभी प्रकार के सत्ता प्राधिकारी) के ऊपर छोड़ दिया गया। संविधान सभा ने पंचायत को एक नई संवैधानिक पहचान देते हुए Self Government अर्थात स्व-सरकार के रूप में इसे चिन्हित किया।[2]

26 जनवरी 1950 को भारत का जो संविधान लागू हुआ, उसमें दो सरकारों का प्रावधान किया गया। संविधान के भाग-5 में 'संघ सरकार' तथा भाग-6 में 'राज्य सरकार' का। एक लंबे समय तक इन्हीं दोनों सरकारों के द्वारा देश का शासन चलता रहा।[3] वर्ष 1992 में 73वें व 74वें संविधान संशोधन के द्वारा एक और सरकार का प्रावधान किया गया है। संविधान के भाग-9 के अंतर्गत 'पंचायत' तथा 9क के अंतर्गत 'नगरपालिका' के रूप में स्व-सरकार (Self Government) का प्रावधान किया गया है। नीति निर्देशक तत्त्व के अंतर्गत अनुच्छेद 40 में भविष्य की जो संकल्पना की गई थी, एक तरह से उसे ही समय और परिस्थिति की माँग एवं दबाव के फलस्वरूप मूर्त रूप देना पड़ा। यह सही है कि भारत के संविधान में 'सेल्फ गवर्नमेंट' को परिभाषित नहीं किया गया है, लेकिन उसका आशय केंद्र व राज्य सरकार के बाद भारतीय राज्य व्यवस्था में स्थानीय स्तर पर गाँव में उसकी स्वयं की सरकार के रूप में उसे अपने बारे में निर्णय लेने का अधिकार प्रदान करने का था। जिसका स्पष्ट उल्लेख महात्मा गांधी से लेकर नेहरू, जे.पी., विनोवा, लोहिया, दीनदयाल उपाध्याय तथा राजीव गांधी के व्यक्तव्यों एवं चर्चाओं में मिलता है। 73वें संविधान संशोधन के द्वारा राष्ट्रनायकों की इसी मंशा को साकार किया गया।

इस संविधान संशोधन के बाद पंचायत की

'अपनी (स्व) सरकार' का जो स्वरुप सामने आया है, उसकी खास-खास विशेषताएँ इस प्रकार है:-

1. पूरे देश में ढाँचागत एकरूपता लाने के लिए त्रिस्तरीय (गाँव, मध्य क्षेत्र तथा जिला) पंचायत की व्यवस्था लागू की गई। तीनों स्तर पर (ग्राम, क्षेत्र, जिला) पंचायत सदस्यों का चुनाव सीधे जनता द्वारा निर्वाचन से सुनिश्चित किया गया। निर्वाचन क्षेत्र जनसंख्या के आधार पर समान अनुपात के आधार पर घोषित हुआ। सभी स्तर की पंचायतों के चुनाव में भाग लेने हेतु प्रत्याशियों की एक निश्चित आयु 21 वर्ष निश्चित की गई।
2. पंचायतों का कार्यकाल 5 वर्ष का तय हुआ। कार्यकाल समाप्ति के बाद 6 माह के भीतर चुनाव कराना अनिवार्य हो गया। इसके लिए अलग से 'राज्य निर्वाचन आयोग' का प्रावधान हुआ।
3. सभी स्तरों पर अनुसूचित जाति/जनजाति के लिए उस क्षेत्र में उनकी जनसंख्या के अनुपात में सीट आरक्षित की गई। महिलाओं के लिए भी सभी स्तरों पर एक तिहाई भाग आरक्षित हुआ। यह व्यवस्था अध्यक्ष पद पर भी लागू की गई। पिछड़े वर्ग के आरक्षण का मुद्दा राज्य सरकारों के ऊपर छोड़ दिया गया।
4. संसाधनों की समुचित व्यवस्था हेतु 'राज्य वित्त आयोग का गठन' तथा आडिट की समुचित व्यवस्था बनाई गई। ग्राम पंचायत से लेकर जिला स्तर तक जन भागीदारी के साथ योजना बनाने के लिए 'जिला योजना समिति' के गठन का प्रावधान भी इसी क्रम में 74वें संविधान संशोधन में किया गया। ग्यारहवीं अनुसूची के माध्यम से 29 विषयों के कार्य पंचायतों को सुपुर्द किए गए।
5. ग्राम स्तर पर 'ग्रामसभा' का गठन अनिवार्य किया गया। ग्राम से संबंधित मतदाता सूची में पंजीकृत व्यक्तियों से मिलकर यह निकाय गठित होता है। 73वें संविधान संशोधन में इस बात का निर्देश है कि राज्य के विधानमंडल द्वारा कानून बनाकर ग्रामसभाओं को अधिकार प्रदान किए जाएंगे। इसी को मद्देनजर रखते हुए पंचायतों को अपने निर्धारित क्षेत्र में योजना बनाने की जिम्मेवारी मुख्य रूप से सौंपी गई। आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय को इस व्यवस्था का प्रमुख उद्देश्य निश्चित किया गया।

संविधान ने ग्यारहवीं सूची के माध्यम से जिन 29 विषयों की जिम्मेवारी पंचायत को सौपी है उसमें कृषि, जल, वन तथा पशु जैसे गाँव जीवन के मूलभूत विषयों को तो शामिल किया ही साथ ही शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्योग जैसे भौतिक समृद्धि एवं गरीबी उन्मूलन के मुद्दों को भी जोड़ा गया है। वहीं दूसरी ओर मकान, सड़क, पुलिया, बिजली, सामुदायिक भवन जैसे भौतिक संरचनागत संसाधनों के निर्माण व विकास के साथ साथ महिला एवं बाल विकास, समाज कल्याण तथा अनुसूचित एवं कमजोर वर्गों के कल्याण की जिम्मेवारी भी सौंपी है। इस प्रकार ग्रामीण जीवन के नियमन और विकास के उन सभी तत्वों एवं विषयों को पंचायत के साथ जोड़ा गया है जो गाँव की खुशहाली के लिए आवश्यक हैं। पंचायतों को यह जिम्मेवारी गाँव की अपनी सरकार के रूप में उसे दिया गया है।

73वें संविधान संशोधन के इस प्रावधान पर चर्चा के क्रम में 1996 में भारतीय संसद द्वारा अनुसूचित क्षेत्रों के लिए बनाए गए पंचायत विस्तार अधिनियम की भी चर्चा आवश्यक है।

73वें संविधान संशोधन अनुच्छेद 243ङ के भाग 4(ख) के अंतर्गत अनुसूचित क्षेत्रों को इससे अलग रखते हुए संसद को अलग से अधिनियम बनाने का दायित्व भी सौंपा गया।[4] जिसके अंतर्गत भारत की संसद के उच्च सदन (राज्यसभा) में 12 दिसंबर 1996 में पंचायत उपबंध (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) विधेयक प्रस्तुत किया गया। जो संसद के दोनों सदनों में पारित होकर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के बाद 24 दिसंबर 1996 में लागू हो गया। इस विधेयक के लिए जून 1994 में ही दिलीप सिंह भूरिया की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित की गई थी। जिसकी रिपोर्ट के आधार पर यह तैयार किया गया था।

इस विस्तार अधिनियम की विशेषता यह है कि इसमें आदिवासियों के पारंपरिक नियम तथा सामाजिक व धार्मिक रिवाजों तथा सामुदायिक संसाधनों के प्रबंधन के पारंपरिक तरीकों को पूरा सम्मान देते हुए उसी के अनुरूप राज्य के विधानमंडलों को कानून बनाने का निर्देश दिया गया है। इसी के साथ उनके पारंपरिक गाँवों को ही इसकी इकाई मानते हुए उसे ही ग्रामसभा के रूप में स्वीकार करने तथा उसे संबंधित समुदाय की परंपराओं, सामुदायिक संसाधनों तथा सांस्कृतिक पहचान को सुरक्षित करते हुए आपस के झगड़ों को सुलझाने का पूरा अधिकार दिया गया है। इसी के साथ भूमि अधिग्रहण तथा गौण खनिजों के लाइसेंस देने से पहले ग्रामसभा से सलाह लेने के प्रावधान के साथ गाँव में मादक पदार्थ की बिक्री को प्रतिबंधित करने, भूमि का हस्तांतरण रोकने, धन उधार की प्रक्रिया को नियंत्रित करने तथा सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यकर्ताओं पर नियंत्रण रखने की शक्ति प्रदान की गई है।[5]

अनुसूचित क्षेत्रों के लिए बना पेसा कानून पंचायती राज व्यवस्था के लिए कई अर्थों में महत्वपूर्ण है। जिसमें सबसे महत्वपूर्ण है समुदाय के महत्व को स्वीकार करना। पंचायत भारत के सामुदायिक समाज के संरक्षण व विकास का महत्वपूर्ण आधार रही है। लेकिन अंग्रेजी राज में गाँवों की गुलामी

संविधान ने ग्यारहवीं सूची के माध्यम से जिन 29 विषयों की जिम्मेवारी पंचायत को सौपी है उसमें कृषि, जल, वन तथा पशु जैसे गाँव जीवन के मूलभूत विषयों को तो शामिल किया ही साथ ही शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्योग जैसे भौतिक समृद्धि एवं गरीबी उन्मूलन के मुद्दों को भी जोड़ा गया है। वहीं दूसरी ओर मकान, सड़क, पुलिया, बिजली, सामुदायिक भवन जैसे भौतिक संरचनागत संसाधनों के निर्माण व विकास के साथ साथ महिला एवं बाल विकास, समाज कल्याण तथा अनुसूचित एवं कमजोर वर्गों के कल्याण की जिम्मेवारी भी सौंपी हैं

तथा स्वतंत्र भारत में बहुमत आधारित चुनाव पद्धति ने गाँव की इस सामुदायिक भावना को सबसे अधिक चोट पहुँचाई है। 73वें संविधान संशोधन के द्वारा सामान्य क्षेत्रों के लिए पंचायत व्यवस्था के प्रावधान जहाँ प्रत्येक नागरिक को सिर्फ एक मतदाता के रूप में चिन्हित करते हैं वहीं पेसा कानून के अंतर्गत अनुसूचित क्षेत्र की पंचायत व्यवस्था में वहाँ के समुदाय को महत्व दिया गया है। उसे ही स्थानीय स्वशासन का मूलभूत तत्व मन गया है। खनिज, जल, जंगल तथा जमीन के नियंत्रण व स्वामित्व का अधिकार समुदाय को सौंपा गया है।

इस प्रकार संविधान के 73वें संशोधन के द्वारा 'पंचायत' संघ (केंद्र) और राज्य के बाद 'तीसरी सरकार' है। हालाँकि एक सरकार के रूप में उसके अधिकारों में अभी कई कमियाँ जरूर हैं, लेकिन अवधारणा एवं प्रारंभिक स्तर पर यह तीसरी सरकार है, जिसमें जनता सीधे-सीधे भागीदारी कर सकती है। अपनी आवश्यकता पर विचार करके निर्णय ले सकती है और अपनी सीमा में इस निर्णय को क्रियान्वित भी कर सकती है।

लेकिन यदि इसे व्यवहार के स्तर पर देखा जाए तो पिछले 27 वर्षों से 'सेल्फ गवर्नमेंट' के लिए की जा रही कोशिश का प्रभाव अपेक्षा के अनुसार नहीं बन पाया है। इस संशोधन के द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर पंचायत व्यवस्था के संरचनागत स्वरूप में एकरूपता तो जरूर स्थापित की गई लेकिन दायित्व एवं अधिकार के निर्धारण की जिम्मेवारी राज्य के विधानमंडलों को सौंप दी गई। इससे राज्य सरकारों की प्रतिबद्धता एवं सक्रियता काफी महत्वपूर्ण हो गई।

संविधान के अनुच्छेद 243छ के अंतर्गत यह व्यवस्था की गई है कि "किसी राज्य का विधानमंडल विधि द्वारा पंचायतों को ऐसी शक्तियाँ और प्राधिकार प्रदान कर सकेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने में समर्थ बनाने के लिए आवश्यक हो"।[6] जिसके अनुसार पंचायतों को शक्तियाँ, प्राधिकार व दायित्व सौंपने के लिए प्रारंभ से लेकर आज तक समय-समय पर राज्य सरकारों द्वारा कमेटियों का गठन करके सुझाव प्राप्त किए जाते रहे हैं और कमोबेश उन्हें लागू भी करने का प्रयास होता रहा है।

जब सत्ता के हस्तांतरण या विकेंद्रीकरण की बात की जाती है तो उसमें तीन बातें मुख्य होती हैं। पहला निर्धारित विषय से संबंधित कार्यों का हस्तांतरण, दूसरा इन कार्यों को करने वाले कर्मियों का हस्तांतरण तथा तीसरा इन कार्यों के लिए निर्धारित सभी तरह के बजट का हस्तांतरण। इस दृष्टि से यदि राज्य के विधानमंडलों द्वारा अधिनियम के अंतर्गत किए गए प्रावधानों तथा उसको व्यवहार में लाने के किए बनाए गए नियमों और शासनादेशों को देखा जाए तो काफी अंतराल दिखाई पड़ता है

1995 के शुरुआती दौर में ज्यादातर राज्यों में पंचायतों के चुनाव तो हो गए लेकिन सत्ता हस्तांतरण की धीमी प्रक्रिया आगे के कई वर्षों तक चलती रही है। जो आज भी जारी है। जिसके चलते अधिकांश राज्यों में अभी तक सत्ता का सही अर्थों में हस्तांतरण नहीं हो पाया है।

73वें संविधान संशोधन द्वारा सत्ता के विकेंद्रीकरण का जो गुरुतर दायित्व राज्य के विधानमंडलों को सौंपा गया है वह कार्य तो आज भी अधूरा है। इसके अंतर्गत राज्य सरकारों द्वारा ग्यारहवीं अनुसूची के 29 विषयों के कार्यों की मैपिंग के बाद उसे तीनों स्तरों (ग्राम, ब्लॉक एवं जिला) की पंचायतों के बीच बाँट कर सत्ता का सही अर्थों में हस्तांतरण करना चाहिए था। लेकिन यह कार्य अधिकांश राज्यों में आज तक अधूरा है। कई राज्यों में तो कार्यों एवं गतिविधियों की ठीक से मैपिंग ही नहीं की गई है। जिन राज्यों में मैपिंग हुई है वहाँ भी सत्ता का ठीक से हस्तांतरण नहीं हुआ है। जब सत्ता के हस्तांतरण या विकेंद्रीकरण की बात की जाती है तो उसमें तीन बातें मुख्य होती हैं। पहला निर्धारित विषय से संबंधित कार्यों का हस्तांतरण, दूसरा इन कार्यों को करने वाले कर्मियों का हस्तांतरण तथा तीसरा इन कार्यों के लिए निर्धारित सभी तरह के बजट का हस्तांतरण। इस दृष्टि से यदि राज्य के विधानमंडलों द्वारा अधिनियम के अंतर्गत किए गए प्रावधानों तथा उसको व्यवहार में लाने के किए बनाए गए नियमों और शासनादेशों को देखा जाए तो काफी अंतराल दिखाई पड़ता है। जिसके चलते अधिकांश राज्यों में पंचायतें 'स्व-सरकार' के स्वरूप में अपने प्राधिकार को आज तक प्राप्त नहीं कर पाई हैं।

केरल, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में जहाँ पंचायत राज व्यवस्था अपेक्षाकृत अधिक प्रभावी तरीके से संचालित हो रही है, वहाँ गतिविधियों की व्यवस्थित तरीके से मैपिंग करके कार्य, कर्मी और कोष को सौंपने का कार्य किया गया है। उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, बिहार, तमिलनाडु तथा उड़ीसा जैसे राज्य जहाँ इसकी उपेक्षा की गई है, वहाँ आज भी सत्ता के विकेंद्रीकरण की दिशा में बहुत कम दूरी तय की जा सकी है। इनमें से अधिकांश राज्यों में तो गतिविधियों की मैपिंग की बजाय अधिनियम के अंतर्गत ग्यारहवीं अनुसूची के 29 विषयों का उल्लेख मात्र करके छोड़ दिया गया है।

सत्ता के विकेंद्रीकरण की दृष्टि से जिन राज्यों में बेहतर प्रयास किए गए हैं उनमें से केरल, कर्नाटक तथा पश्चिम बंगाल को उदाहरण के तौर पर लिया जा सकता है।

केरल

केरल में 73वें संविधान संशोधन के उपरांत 1995 में पंचायतों के गठन के तुरंत बाद विकेंद्रीकरण के लिए गठित एस. बी. सेन कमेटी की संस्तुतियों के आधार पर सबसे पहले तीनों स्तर की पंचायतों की गतिविधियों का मानचित्र ही तैयार किया गया। तदुपरांत अधिनियम के अंतर्गत ग्रामसभाओं को विशेष शक्ति प्रदान करते हुए प्रत्येक स्तर की कार्यात्मक जिम्मेदारियों का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया और उसी के अनुसार विषयवार कार्य, कर्मी और कोष के हस्तांतरण का कार्य प्रारंभ कर दिया गया। इसके अंतर्गत जहाँ एक तरफ राज्य सरकार के संबंधित विभागों के कार्मिक और बजट पंचायतों को स्थानांतरित किए गए

वहीं ग्रामीण विकास में कार्य में लगे अन्य अभिकरणों (जैसे डीआरडीए) को पंचायत सरकार का हिस्सा बना दिया गया। पंचायत के लिए अलग से सेवा संवर्ग बनाकर उसे उसी के नियंत्रण में सक्रिय किया गया। पंचायत क्षेत्र के लिए राज्य बजट में एक अलग तंत्र बनाकर शुरुआती दौर से ही राज्य योजना के परिव्यय का लगभग 35% निर्धारित कर दिया गया। इसी के साथ आगामी वर्षों में राज्य वित्त आयोग की संस्तुतियों को बहुत सकारात्मक ढंग से लेते हुए उसे लागू करने का प्रयास किया गया। जिससे पंचायतों के क्रियाकलाप एवं प्रभाव क्षमता में निरंतर सुधार होता गया।[7]

अपनी गाँव सरकार के रूप में पंचायतों की प्रभावी भूमिका को तय करने के लिए सक्रिय और सशक्त लोकभागीदारी के उद्देश्य से विकेंद्रित योजना हेतु एक व्यापक जनांदोलन भी शुरू किया गया। जिसे गाँव के स्तर पर सघन रूप से लगातार तीन वर्षों तक संचालित किया जाता रहा। इसी के साथ पंचायत की स्थाई समितियों को सक्रिय और प्रभावी बनाने के साथ-साथ गाँव समाज की सामुदायिक भवन को विकसित और सुदृढ़ करने के लिए 'कुटुंब श्री पड़ोस समूह' का गठन एवं संचालन बड़ी ही कुशलता और सफलता के साथ किया गया। इतना ही नहीं बल्कि पंचायत के चुने हुए प्रतिनिधियों की जागरूकता और क्षमता संवर्धन के लिए गुणात्मक प्रशिक्षण कार्यक्रमों के आयोजन के साथ उनके सशक्तीकरण तथा सतत विकास के लिए 'स्थानीय सरकार संघ' जैसे स्वैच्छिक संगठन को भी प्रोत्साहित किया गया।[8]

कर्नाटक

पंचायती राज संस्थाओं को शक्तियों के विकेंद्रीकरण में कर्नाटक अग्रिम पंक्ति में आता है और यह उन थोड़े राज्यों में से है जहाँ इन संस्थाओं ने प्रभावकारी ढंग से कार्य किया है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कर्नाटक वह राज्य है जहाँ 73वें संविधान संशोधन (1992) से पहले ही अत्यंत प्रभावी पंचायती राज्य व्यवस्था के संचालन की शुरुआत कर दी गई थी। वर्ष 1983 में कर्नाटक में राज्य सरकार द्वारा जिला एवं मंडल को आधार बना कर द्विस्तरीय पंचायत प्रणाली का ऐतिहासिक कानून पारित किया गया था। इस कानून में महिलाओं को 25% आरक्षण का प्रावधान था। इसके तहत 1987 में जिला पंचायत एवं मंडल पंचायत के चुनाव हुए। इसी कानून के तहत जहाँ राज्य वित्त आयोग की भी स्थापना की गई थी वहीं राजकोषीय स्तर पर इन पंचायतों के दायित्वों के अनुरूप राज्य बजट में जिला सेक्टर बनाया गया। जिला परिषदों में जिला उपायुक्त से वरिष्ठ अधिकारी को मुख्य सचिव के रूप में तैनात किया गया था। भारत सरकार के अनुमोदन से डीआरडीए को जिला परिषदों में मिला दिया गया। जिला परिषद के मुख्य सचिव की वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट जिला पंचायत अध्यक्ष को लिखने का अधिकार दिया गया। इस पद्धति के फलस्वरूप राजनीतिज्ञों तथा नौकरशाहों दोनों के मध्य शक्ति संरचना में अभूतपूर्व एवं मौलिक परिवर्तन दिखाई पड़ा। 1993 में संविधान संशोधन के तुरंत बाद कर्नाटक राज्य ने नए पंचायती राज की स्थापना के लिए जो अधिनियम पारित किया उसमें ज्यादातर उन प्रावधानों को बरकरार रखा जो 1987 के अधिनियम में शामिल थे।[9]

नई पंचायती राज व्यवस्था को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए जून 2001 में विकास आयुक्त की अध्यक्षता में एक कार्यदल गठित किया। जिसकी संस्तुतियों के आधार पर 2003 में पुनः अधिनियम में संशोधन करके पंचायती राज को आगे और मजबूत करने हेतु प्रयास शुरू किया गया। जिसमें गतिविधियों का मानचित्रीकरण (मैपिंग) तथा कार्य, कर्मी तथा कोष का हस्तांतरण शामिल था।

कर्नाटक राज्य के पंचायत अधिनियम में ग्राम पंचायतों के बारे में विधान कार्य बहुत विस्तृत है। पंचायत की शक्तियों को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया गया है तथा कानून की धाराओं में अधिकतर नागरिक कार्यों को शामिल किया गया है।

लेकिन इस सबके बावजूद नियमित रूप से समय पर चुनाव का न होना, अनावश्यक राजनीतिक हस्तक्षेप तथा अधिनियम में समय और आवश्यकता के हिसाब से मौजूद कुछ अंतरालों के चलते यहाँ की पंचायतें अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के अनुरूप उतने प्रभावी तरीके से कार्य नहीं कर पा रही है जैसी कि उनसे अपेक्षा थी।

कर्नाटक वह राज्य है जहाँ 73वें संविधान संशोधन (1992) से पहले ही अत्यंत प्रभावी पंचायती राज्य व्यवस्था के संचालन की शुरुआत कर दी गई थी। वर्ष 1983 में कर्नाटक में राज्य सरकार द्वारा जिला एवं मंडल को आधार बना कर द्विस्तरीय पंचायत प्रणाली का ऐतिहासिक कानून पारित किया गया था। इस कानून में महिलाओं को 25% आरक्षण का प्रावधान था

पश्चिम बंगाल

केरल और कर्नाटक की ही तरह पश्चिम बंगाल की पंचायती राज व्यवस्था का स्वरूप काफी प्रभावी है। पश्चिम बंगाल में ब्रिटिश काल में ही (1870) 'चौकीदारी पंचायतों' के माध्यम से कानून-व्यवस्था को बनाए रखने का कार्य किया जाने लगा था। इसी के साथ भारत में पहली बार 1885 में 'बंगाल लोकल सेल्फ गवर्नमेंट एक्ट' बना, जिसके अंतर्गत जिला स्तर पर 'जिला बोर्ड', उपसंभाग स्तर पर 'स्थानीय बोर्ड' तथा ग्राम समूहों के स्तर पर 'संघ समितियाँ' बना कर स्थानीय सरकार को स्थापित किया गया था। शाही विकेंद्रीकरण आयोग (1909) की संस्तुतियों के आधार पर 1919 में सबसे पहले 'बंगाल ग्राम स्व-सरकार अधिनियम 1919' पारित किया गया था। जिसमें पूर्व की सभी समितियों एवं संघों का विलय कर दिया गया था। आजादी के बाद बलवंत राय मेहता कमेटी की संस्तुतियों के आधार पर 1963 में 'जिला परिषद अधिनियम' तो पारित किया गया लेकिन सही अर्थों में 1973 में बना 'पश्चिम बंगाल पंचायती राज अधिनियम' में एक ठोस कानून बनाने की पहल हुई। जिसमें त्रिस्तरीय पंचायत राज प्रणाली के साथ-साथ ग्रामसभा की सर्वोच्चता तथा एक-तिहाई महिला तथा अनुसूचित जातियों

के आरक्षण जैसे विषय प्रमुखता से शामिल किए गए थे।[10]

73वें संविधान संशोधन के बाद 1994 में अधिनियम में संशोधन किया गया तथा शुरुआती दौर से ही 29 विषयों के ज्यादातर कार्य तीनों स्तर की पंचायतों को सौंप दिए गए। इसके लिए गतिविधियों की मैपिंग करके कार्यों के हस्तांतरण को और ज्यादा स्पष्ट किया गया। इसके लिए निरंतर प्रयास चलता रहा तथा बीच-बीच में आवश्यकतानुसार शासनादेश भी जारी किए जाते रहे हैं।

कार्यों के हस्तांतरण के बाद कर्मियों के हस्तांतरण का कार्य भी प्राथमिकता पर लिया गया। इसके लिए वर्ष 2006 में अधिनियम में पुनः संशोधन करके अलग 'पंचायत संवर्ग' की व्यवस्था की गई। इस प्रकार जिला, ब्लॉक तथा ग्राम स्तर पर पंचायत के कामकाज से जुड़े हुए सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को पंचायत सरकार के पूर्व नियंत्रण में कर दिया गया।[11]

कोष के हस्तांतरण के विषय में राज्य वित्त आयोग की सिफारिश को गंभीरता से लेते हुए पर्याप्त वित्त की व्यवस्था सुनिश्चित की गई है।

पंचायती व्यवस्था में लोक भागीदारी को सक्रिय एवं प्रभावी बनाने के लिए सभी स्तरों (ग्राम, ब्लॉक तथा जिला) पर 'संसद' का प्रावधान किया गया है। जिसमें बड़े पैमाने पर जनमत के शामिल होने का अवसर है। ग्राम स्तर पर प्रत्येक वार्ड में 'ग्राम संसद' बनती है। इसमें संबंधित वार्ड के समस्त मतदाता शामिल होते हैं। इसे योजना बनाने से लेकर निगरानी तक का अधिकार है। इसी तरह ब्लॉक एवं जिला स्तर पर भी 'संसद' का प्रावधान है। ग्राम पंचायत के अंतर्गत वार्ड स्तर पर ही 'ग्राम उन्नयन समिति' का भी प्रावधान है। जिसे वार्ड स्तर पर ग्राम पंचायत के समस्त कार्यों के क्रियान्वयन का दायित्व सौंपा गया है।[12]

इस प्रकार पश्चिम बंगाल में पंचायतों को विकेंद्रीकरण की दृष्टि से अधिकतर अधिकार दिए गए हैं। यह एक सामाजिक, आर्थिक आंदोलन के रूप में अपनी पहचान बना चुकी है। उस राज्य में भूमि सुधार के क्षेत्र में पंचायत व्यवस्था का योगदान सर्वविदित है।

केरल, कर्नाटक और पश्चिम बंगाल जैसे राज्य जहाँ पंचायत व्यवस्था का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं वहीं दूसरी ओर उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान जैसे कई राज्यों में अभी भी यह व्यवस्था सही तरीके से अपने पाँव पर खड़ी नहीं हो पाई। ग्राम सरकार की बजाय राज्य सरकार की एक कार्यदायी संस्था के रूप में आज भी इसकी पहचान अधिक है।

उत्तर प्रदेश में अब तक राज्य वित्त आयोग की पाँच रिपोर्ट आ चुकी है और उसमें सत्ता हस्तांतरण (कार्य, कर्मी और कोष तीनों) की बहुत ही स्पष्ट एवं जोरदार तरीके से संस्तुति की गई है। लेकिन इनमें से अधिकांश महत्वपूर्ण सिफारिश ठंडे बस्ते में पड़ी हैं। वर्तमान समय में एक बार फिर से ग्राम पंचायतों को प्रभावी बनाने के लिए कुछ नए प्रयास शुरू तो जरूर हुए हैं लेकिन वह अभी निष्प्रभावी हैं। कुल मिलाकर 73वें संविधान संशोधन की मंशा के अनुसार उत्तर प्रदेश में पंचायतों की स्थिति काफी कमजोर है

उत्तर प्रदेश

वैसे तो पंचायत व्यवस्था की दृष्टि से उत्तर प्रदेश का भी इतिहास उल्लेखनीय है। आजादी से पूर्व सरकारी एवं सामाजिक दोनों स्तरों पर ग्रामीण समाज के विकास में पंचायत प्रणाली की सक्रिय भूमिका व योगदान रहा है। आजादी के बाद 1947 से ही राज्य के अधिनियम के अंतर्गत पंचायतों का गठन व कार्य प्रारंभ हो गया था। लेकिन 73वें संविधान संशोधन के बाद स्व-सरकार के रूप में पंचायतों की संरचना व काम काज में जो गुणात्मक अंतर आना चाहिए वह आज तक नहीं दिखाई पड रहा है। यह सही है कि संविधान संशोधन के बाद 1994 में राज्य के अधिनियम में संशोधन करके 1995 में नए पंचायती राज के प्रावधानों के अनुसार चुनाव भी संपन्न हो गया था लेकिन इस राज्य में आज तक 29 विषयों के क्रियाकलापों की मैपिंग नहीं की जा सकी है। ऐसी स्थिति में कार्यों के हस्तांतरण की स्थिति काफी कमजोर है।

वैसे तो 1994 में ही प्रशासनिक सुधार एवं विकेंद्रीकरण के उद्देश्य से बजाज आयोग का गठन कर दिया गया था और उसकी संस्तुतियों के क्रियान्वयन हेतु बनाई गई भोलानाथ तिवारी उच्चस्तरीय समिति द्वारा 29 की जगह 32 विषयों के हस्तांतरण की सिफारिश भी की गई थी, लेकिन आज तक इसको अमली जामा नहीं पहनाया जा सका।[13]

संविधान संशोधन के बाद 1995 में गठित पंचायतों के जब लगभग पाँच साल बीत रहे थे तब जून 1999 में 12 विभागों के 16 कार्य पहली बार सौंपे गए थे। उस समय जारी शासनादेश में इन विभागों के कर्मियों को भी पंचायत सरकार के अधीन किया गया था तथा उसी के साथ समुचित वित्त की व्यवस्था भी की गई थी।[14] लेकिन यह व्यवस्था ज्यादा दिनों तक नहीं चल सकी। संबंधित विभागों के कर्मियों के विरोध प्रदर्शन तथा राज्य में सत्ता परिवर्तन के साथ ही हस्तांतरण का यह प्रयास लगभग असफल हो गया। उसके बाद इस तरह के सत्ता हस्तांतरण का कोई दूसरा प्रयास आज तक नहीं हो सका है। जिसके चलते पंचायतें एक कार्यदायी संस्था के रूप में ही कार्य कर रही हैं।

उत्तर प्रदेश में अब तक राज्य वित्त आयोग की पाँच रिपोर्ट आ चुकी है और उसमें सत्ता हस्तांतरण (कार्य, कर्मी और कोष तीनों) की बहुत ही स्पष्ट एवं जोरदार तरीके से संस्तुति की गई है। लेकिन इनमें से अधिकांश महत्वपूर्ण सिफारिश ठंडे बस्ते में पड़ी हैं। वर्तमान समय में एक बार फिर से ग्राम पंचायतों को प्रभावी बनाने के लिए कुछ नए प्रयास शुरू तो जरूर हुए हैं लेकिन वह अभी निष्प्रभावी हैं। कुल मिलाकर 73वें संविधान संशोधन की मंशा के अनुसार उत्तर प्रदेश में पंचायतों की स्थिति काफी कमजोर है।

हरियाणा

चूँकि हरियाणा 1966 के पहले पंजाब का हिस्सा था अतः 73वें संविधान संशोधन से

पूर्व यहाँ पर पंजाब ग्राम पंचायत अधिनियम 1952 के अनुसार पंचायतें काम कर रही थीं। 73वें संशोधन के बाद हरियाणा पंचायती राज अधिनियम 1994 बनाया गया। बाद में विभिन्न प्रकार के नियमों को शामिल कर नए पंचायती राज को लागू किया गया। यह उल्लेखनीय है कि हरियाणा में 1994 में ही पंचायत के चुनाव करा दिए गए थे। तब से नियमित रूप से चुनाव होते आ रहे हैं।

राज्य के पंचायत अधिनियम में ग्यारहवीं अनुसूची के 29 विषयों को शामिल तो किया गया। मात्र 10 विषयों के ही कुछ कार्यकलापों की मैपिंग की गई तथा उन्हीं 10 विभागों के कार्यों का बँटवारा किया गया। लेकिन इन विभागों के कार्यों में अभी नौकरशाही का हस्तक्षेप अधिक है। पंचायत सदस्यों की न तो कोई भागीदारी है और न ही विधिवत उनकी संस्तुतियाँ या सुझाव प्राप्त करने की कोई परंपरा है। भारत सरकार के पंचायती राज मंत्रालय द्वारा कराए गए मूल्यांकन के अनुसार सुपुर्द किए गए कार्यों में ग्राम पंचायतों की अपेक्षित भूमिका न के बराबर है। उन्हें उसके बारे में ठीक से जानकारी भी नहीं है। सौंपे गए विभागों के अधिकांश सरकारी कर्मी अभी भी पूरी तरह से राज्य सरकार के नियंत्रण में हैं। वैसे तो स्थानांतरित पदाधिकारियों का ब्यौरा एक चार्ट में दिया गया है लेकिन वह कागजों तक ही सीमित है।[15]

राज्य सरकार ने विकास कार्य करने के लिए जुलाई 2006 में एक अधिसूचना के माध्यम से पंचायतों के वित्तीय अधिकार बढ़ाने का आदेश जारी किया था। लेकिन वह भी सही रूप में जमीन पर नहीं उतर पाया है।[16]

हरियाणा में ग्राम स्तर पर ग्राम विकास समितियों का गठन करके एक समानांतर निकाय बनाया गया था। जिसके चलते पंचायतें गौण हो गई थीं। बाद में उसे हटाया तो गया लेकिन आज भी ग्रामीण विकास से जुड़े कई समानांतर अभिकरण कार्यरत हैं। डीआरडीए तो है ही। इसके कारण पंचायतों का प्रभाव क्षेत्र काफी प्रभावित है। इतना ही नहीं बल्कि हरियाणा में तो 'ग्रामीण विकास प्राधिकरण' भी बनाया गया है। इसके क्रियाकलाप से पंचायत को एकदम अलग रखा गया है जबकि इसकी गतिविधियों में अधिकांश कार्य वही है जो ग्यारहवीं अनुसूची के 29 विषयों से जुड़ते हैं।

इस प्रकार हरियाणा में पंचायतें विकास की मुख्य धारा के किनारे पर खड़ी कर दी गई तथा जो थोड़ा बहुत कार्य उनके पास है वह कार्यदायी संस्था के रूप में ही है।

राजस्थान

राजस्थान में पंचायती राज का मौजूदा स्वरूप 1956 से अस्तित्व में आया है। चूँकि आजादी से पूर्व यहाँ रियासतों का प्रभाव अधिक था, जिनका 1947 से 1950 के बीच भारतीय राज्य में विलय हुआ। राजस्थान का पहला प्रमुख अधिनियम राजस्थान पंचायत अधिनियम 1953 था जो इन्हीं रियासतों द्वारा संचालित पंचायत व्यवस्था पर आधारित था। 1956 का अधिनियम इसी की पृष्ठभूमि पर तैयार हुआ। जैसा कि सर्वविदित है कि प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू की पहल से निर्मित एवं संचालित पंचायती राज की शुरुआत 2 अक्टूबर 1959 को राजस्थान के ही नागौर जिले से हुई थी और प्रारंभिक दौर में इस राज्य में पंचायत व्यवस्था का एक बेहतर स्वरूप भी विकसित हुआ था। जो बाद के वर्षों में धीरे-धीरे बिखरता गया।

73वें संविधान संशोधन के बाद राजस्थान का पंचायती राज अधिनियम 1994 में पारित हो गया और 23 अप्रैल 1994 से प्रभाव में भी आ गया। उसमें औपचारिक रूप से ग्यारहवीं अनुसूची के सभी 29 विषयों को पंचायतों को सौंपने का उल्लेख किया गया लेकिन विश्लेषण करने से पता चलता है कि वास्तविक रूप से वह पंचायतों को तब सौंपे ही नहीं गए। बाद में कार्य, कर्मी और कोष के संदर्भ में एक मंत्रिमंडलीय उपसमिति गठित की गई, जिसकी संस्तुतियों के आधार पर मुख्य सचिव द्वारा 19 जून 2003 को 18 विभागों के कार्यों के हस्तांतरण का आदेश जारी किया गया। इस आदेश में संबंधित अधिकारियों एवं कर्मचारियों के नियंत्रण का भी अधिकार दिया गया। लेकिन यह ज्यादा दिन तक चल नहीं पाया। सितम्बर 2003 से 2004 के बीच शिक्षा, पीडब्ल्यूडी, खाद्य आपूर्ति तथा पीएचईडी विभाग के हस्तांतरित कार्यों को वापस ले लिया गया। डीआरडीए (जिला ग्रामीण विकास अभिकरण) को वैसे तो जिला परिषद में कर दिया गया है लेकिन प्रकारांतर से उस पर अभी भी नौकरशाही का नियंत्रण है। इसी के साथ गाँव के स्तर पर शिक्षा, वन, स्वास्थ्य, जल एवं स्वच्छता जैसे विभाग की कई समांतर एजेंसियाँ कर रही है। जिन पर पंचायतों का कोई नियंत्रण नहीं है। इन सबके चलते ग्राम पंचायत भी राज्य सरकार की एजेंसी से आगे नहीं बढ़ पाई हैं।[17]

ग्यारहवीं अनुसूची के माध्यम से जिन 29 विषयों को पंचायती राज संस्थाओं को सौंपा गया है उसमें मानव विकास और सामाजिक विकास के विषय मुख्य रूप से शामिल किए हैं। संरचनागत विकास का कार्य भी उसे सौंपा गया है लेकिन यह दूसरे दर्जे पर है। यह अलग बात है कि पंचायतें ढाँचागत निर्माण के कार्यों में ही पूरी तरह से लग गई है। मानव और सामाजिक विकास के मुद्दे उनके लिए गौण हो गए है। वास्तव में संविधान संशोधन के बावजूद आज की तारीख में पंचायतें स्वयं एक सरकार के रूप में कार्य न करके केवल पहली तथा दूसरी सरकार की एजेंसी मात्र बनकर रह गई है। उसका सबसे बड़ा कारण यह है कि

राजस्थान में पंचायती राज का मौजूदा स्वरूप 1956 से अस्तित्व में आया है। चूँकि आजादी से पूर्व यहाँ रियासतों का प्रभाव अधिक था, जिनका 1947 से 1950 के बीच भारतीय राज्य में विलय हुआ। राजस्थान का पहला प्रमुख अधिनियम राजस्थान पंचायत अधिनियम 1953 था जो इन्हीं रियासतों द्वारा संचालित पंचायत व्यवस्था पर आधारित था। 1956 का अधिनियम इसी की पृष्ठभूमि पर तैयार हुआ। जैसा कि सर्वविदित है कि प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू की पहल से निर्मित एवं संचालित पंचायती राज की शुरुआत 2 अक्टूबर 1959 को राजस्थान के ही नागौर जिले से हुई थी

पंचायतों को संशोधन के द्वारा एक संवैधानिक ढाँचा तो मिल गया लेकिन सरकार के रूप में कार्य करने हेतु जो संवैधानिक अधिकार उसे प्राप्त होना चाहिए था उसे राज्य के विधानमंडलों के रहमोकरम पर छोड़ दिया गया। जिसके परिणामस्वरूप केरल और पश्चिम बंगाल जैसे कुछ राज्यों ने तो पर्याप्त अधिकार सौंपे लेकिन अधिकांश राज्यों ने इसमें बड़ी कोताही बरती है।

यह परिस्थिति इस कारण निर्मित हुई है कि आजादी के बाद संविधान निर्माण में 1935 के इंडिया एक्ट के एक बड़े हिस्से को यथावत स्वीकार कर लिया गया था। इसी में केंद्र और राज्य सरकार के बीच विषयों के वितरण का भी प्रावधान शामिल था। जिसे हम आज संविधान की 7वीं अनुसूची के रूप में जानते हैं। इस सातवीं अनुसूची में केंद्र और राज्य के बीच विषयों का बँटवारा किया गया है। स्थानीय शासन को एक विषय के रूप में राज्य की सूची में शामिल किया गया है। जबकि संविधान के अनुच्छेद 40 में ग्राम पंचायतों को सेल्फ गवर्नमेंट के रूप में दायित्व सौंपने की जिम्मेवारी राज्य को सौंपी है। जहाँ राज्य "भारत की सरकार और संसद तथा प्रत्येक राज्य की सरकार और विधान मंडल तथा भारत के राज्य क्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन सभी स्थानीय और अन्य प्राधिकारी के रूप में परिभाषित किया गया है।[18] परंतु संविधान की 7वीं अनुसूची में इस विषय को समवर्ती सूची की बजाय राज्य सूची में शामिल कर दिया गया है। इसी के चलते 1989 में नए पंचायतीराज का 64वां संविधान संशोधन विधेयक लोकसभा में पारित हो जाने के बावजूद राज्यसभा में पारित नहीं हो पाया था। क्योंकि उस समय पंचायतों को अधिकार सौंपने का स्पष्ट प्रावधान किया गया था, जिसका राज्यों ने पुरजोर विरोध करते हुए राज्यसभा में पारित नहीं होने दिया। 1992 में जब यह अधिकार पूरी तरह से राज्य के विधानमंडलों की इच्छा पर छोड़ दिया गया तब जाकर यह पारित हुआ।

यहाँ एक तथ्य और भी उल्लेखनीय है कि 73वें संविधान संशोधन में अनुच्छेद 243(छ) में पंचायतों को दो कार्य सौंपे गए है - प्रथम यह कि उसे आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की योजनाएँ तैयार करना है तथा दूसरा कि वह केंद्र और राज्य सरकार की ऐसी स्कीमों को भी क्रियान्वित करेगी जो उसके 29 विषयों से संबंधित है। इसमें से पहला कार्य सही अर्थों में उसके सरकार होने का कार्य है। दूसरा कार्य एजेंसी का कार्य है जो पहली और दूसरी सरकार के लिए करना है।[19]

आज की तारीख में पंचायतें सिर्फ एजेंसी का कार्य कर रही हैं। जबकि उन्हें सरकार के रूप में इसके लिए प्रतिष्ठित किया गया था कि जमीनी आवश्यकता और परिस्थिति के अनुसार जनभागीदारी के साथ स्थानीय स्तर पर योजना बनाई जा सके और उसे उसी स्तर पर क्रियान्वित किया जा सके। समावेशी और टिकाऊ विकास की यही पहली शर्त भी है। लेकिन लगभग तीन दशकों की इस यात्रा में अधिकांश राज्यों में पंचायतें अपने इस दायित्व के निर्वहन से कोसों दूर खड़ी हैं

आज की तारीख में पंचायतें सिर्फ एजेंसी का कार्य कर रही हैं। जबकि उन्हें सरकार के रूप में इसके लिए प्रतिष्ठित किया गया था कि जमीनी आवश्यकता और परिस्थिति के अनुसार जनभागीदारी के साथ स्थानीय स्तर पर योजना बनाई जा सके और उसे उसी स्तर पर क्रियान्वित किया जा सके। समावेशी और टिकाऊ विकास की यही पहली शर्त भी है। लेकिन लगभग तीन दशकों की इस यात्रा में अधिकांश राज्यों में पंचायतें अपने इस दायित्व के निर्वहन से कोसों दूर खड़ी हैं। उन्हें न तो इसके लायक बनाया गया और न तो उन्हें सही अवसर और पर्याप्त साधन मुहैया कराए गए।

नगरपालिकाओं को स्वसरकार के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए वर्ष 1992 में 74वाँ संविधान संशोधन भी संसद में पारित हुआ था। इस संविधान संशोधन के अनुच्छेद 243 के उपबंध य घ में 'जिला योजना समिति' का प्रावधान किया गया है। उसके अनुसार "प्रत्येक राज्य में जिला स्तर पर जिले में पंचायतों और नगरपालिकाओं द्वारा तैयार की गई योजनाओं का समेकन करने और संपूर्ण जिले के लिए एक विकास योजना प्रारूप तैयार करने के लिए एक जिला योजना समिति का गठन किया जाएगा"। इसकी संरचना, कार्य एवं उसकी पद्धति के प्रावधान का दायित्व राज्य के विधानमंडलों को सौंपा गया है।[20]

लगभग सभी राज्यों में जिला योजना समिति के लिए राज्य के अधिनियमों में प्रावधान किए गए हैं। इसके लिए अध्यक्ष, सचिव एवं सदस्यों का प्रावधान किया गया है। राज्यों ने अपने अपने तरीके से इसकी चयन प्रक्रिया को तय किया है। किसी राज्य में जिला पंचायत अध्यक्ष को इस समिति का अध्यक्ष बनाया गया है तो किसी राज्य में राज्य सरकार के प्रभारी मंत्री को। सचिव के रूप में ज्यादातर राज्यों में जिलाधिकारी या उपायुक्त को नामित किए जाने का प्रावधान है। सदस्यों के विधिवत चुनाव का प्रावधान है। लेकिन कई राज्यों में इसमें ग्राम पंचायतों को प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया है। इसे जिला पंचायत व नगर पालिका के स्तर तक समिति कर दिया गया है।

इसी समिति को जिला योजना बनाने का दायित्व सौंपा गया है। योजना बनाने की सामान्यत: यह रीति तय की गई है कि प्रथमत: ग्राम पंचायत स्तर पर योजना बनेगी फिर उसे समेकित करके ब्लॉक पंचायत की योजना बनेगी, ब्लॉक पंचायतों की योजना बनने के बाद उसे समेकित करके जिला पंचायत की योजना बनेगी। ठीक इसी तरह नगरपालिका क्षेत्र में पहले वार्ड क्षेत्रों की योजना बननी है फिर उसे समेकित करके नगरपालिका की योजना का प्रारूप तय किया जाना है। अंत में जिला पंचायत एवं नगरपालिका की योजनाओं को समेकित करके जिला योजना बनाई जानी है।

संविधान ने योजना बनाते समय जिस बात पर विशेष रूप से ध्यान देने का निर्देश दिया है उसमें पंचायतों एवं

नगरपालिकाओं के सामान्य हित के विषय, जिनके अंतर्गत स्थानिक योजना, जल तथा अन्य भौतिक एवं प्राकृतिक संसाधनों में हिस्सा बाँटना, अवसंरचना का एकीकृत विकास और पर्यावरण संरक्षण शामिल है।

योजना निर्माण का यह गुरुतर दायित्व जो पंचायत सरकार को सौंपा गया है उसकी भी स्थिति वही हो जो सत्ता हस्तांतरण की दृष्टि से ऊपर राज्यवार वर्णित है। अर्थात यह कार्य भी नौकरशाही एवं राज्य सरकार के दिशा निर्देशों पर आधारित है। इसमें ग्राम पंचायतों की भागीदारी तो न के बराबर है। इसी को ध्यान देते हुए 14वें वित्त आयोग द्वारा स्थानीय स्तर पर योजना निर्माण हेतु ग्राम पंचायतों को लगभग 2 लाख करोड़ रुपये का अनटाइड बजट आवंटित किया गया था। इसके माध्यम से ग्राम पंचायतों द्वारा पंचवर्षीय 'ग्राम पंचायत विकास योजना'(जीपीडीपी) बनाने का निर्देश था। इस संबंध में भारत सरकार द्वारा जारी गाइडलाइन में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि वर्तमान समय में ग्राम पंचायतों द्वारा सहभागी नियोजन एवं विभिन्न योजनाओं का अभिसरण कर वार्षिक कार्ययोजना बनाए जाने पर बल नहीं दिया जा रहा था। सहयोगी विभागों द्वारा ग्राम पंचायतों के विकास हेतु चलाए जा रहे कार्यक्रमों से पृथक-पृथक विभागीय लक्ष्यों की पूर्ति की जा रही थी, किंतु पंचायत स्तर पर आपसी समन्वय के अभाव में पंचायत का समग्र विकास नहीं हो पा रहा था।[21]

अत: ग्राम पंचायत विकास योजना के माध्यम से ग्राम पंचायतों द्वारा दीर्घकालिक विकास को ध्यान में रखते हुए पंचवर्षीय एवं वार्षिक ग्राम पंचायत विकास योजना तैयार की जाएगी जो कि सहभागी नियोजन एवं विभिन्न वित्तीय संसाधनों के अभिसरण (कनवर्जेस) पर आधारित होगी।

योजना निर्माण की इस प्रक्रिया को भारत के 15वें वित्त आयोग में भी जारी रखा गया है। साथ ही अब ब्लॉक एवं जिला पंचायत के स्तर पर भी इसी प्रकार की विकास योजना तैयार करने हेतु बजट एवं गाइडलाइन जारी की गई है।

इस प्रकार एक सरकार के रूप में संविधान ने पंचायतों को स्थानीय स्तर पर योजना निर्माण की जो जिम्मेवारी सौंपी है उस दिशा में अब जाकर एक सार्थक प्रयास शुरू हुआ है। लेकिन यह भी बहुत प्रारंभिक स्तर पर है। पिछले कुछ वर्षों का अनुभव बहुत उत्साहजनक नहीं है। जिन राज्यों में इस कार्य को लेकर व्यापक स्तर पर जनजागरूकता तथा क्षमता निर्माण का कार्य गंभीरता से किया गया वहाँ तो परिणाम संतोषजनक रहे लेकिन अधिकांश राज्यों में इस कार्य में जन भागीदारी का बड़े पैमाने पर अभाव देखा गया है। इस दिशा में अभी बहुत सघन एवं गंभीर प्रयास की आवश्यकता है।

पंचायतें सही अर्थों में तीसरी सरकार के रूप में प्रतिष्ठित हो सकें इसके लिए भारत सरकार के स्तर से निरंतर प्रयास किया जाता रहा है। लेकिन राज्य सरकारें बड़े पैमाने पर उदासीन रही हैं। इस दिशा में 1999 में भारत सरकार के तत्कालीन ग्रामीण विकास मंत्री बाबा गौड़ा पाटिल का वह पत्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है जो उन्होंने 17 मार्च 1999 को देश के सभी मुख्यमंत्रियों को भेजा था। उन्होंने पत्र की शुरुआत ही इससे की थी कि "ग्राम पंचायतों को स्वशासन की इकाई के रूप में गठित करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 40 के निर्देश के बावजूद अब तक हुई प्रगति पर्याप्त नहीं है। कथित विकास की धुन ने इन संस्थाओं को मूलत: राज्य सरकारों के शक्तिशाली तंत्र की पिछलग्गू के रूप में कार्य करने के लिए विवश कर दिया।" इसी पत्र में उन्होंने वास्तविक रूप से पंचायतों के सरकार के रूप में कार्य करने के लिए लिखा था कि वास्तविक स्वशासन के लिए पंचायतों के कार्यों और शक्तियों का दायरा काफी व्यापक होना चाहिए। नि:संदेह विकास कार्यक्रम महत्वपूर्ण है, परंतु वे स्वशासन के मर्म नहीं हो सकते। जब तक भूमि और अन्य संसाधनों के प्रबंधन और झगड़ों को निपटाने के अधिकार ग्रामसभाओं को नहीं सौंपे जाते, तब तक वास्तविक स्वशासन नहीं हो सकता।[22]

भारत सरकार के स्तर से पंचायतीराज व्यवस्था को संविधान की मंशा के अनुरूप तीसरे स्तर की सरकार के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए समय-समय पर आयोग एवं समूहों का गठन किया जाता रहा है। इसमें 'द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग' तथा इसी संबंध में वी रामचंद्रन की अध्यक्षता में बने कार्य समूह (वर्ष 2011) की संस्तुति एवं सुझाव महत्वपूर्ण हैं।

'द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग' ने तो भारत सरकार को प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से संविधान के अनुच्छेद 243 छ जो पंचायतों के प्राधिकार और दायित्व से संबंधित है को पुन: संशोधित करने का सुझाव देते हुए इसके नए प्रारूप को भी दिया है जो इस प्रकार है - "इस संविधान के प्रावधानों के अधीन, राज्य की विधान परिषद कानून द्वारा उपयुक्त स्तर की पंचायत को यथा आवश्यक अधिकार और प्राधिकार सौंपेगी ताकि वे ऐसे सभी कार्यों के संबंध में स्वशासन संस्थाओं के रूप में अपने कार्य को संपन्न कर सकें जो स्थानीय स्तर पर संपन्न किए जा सकते हैं जिसमें 11वीं अनुसूची में सूचीबद्ध मामलों से संबंधित कार्य शामिल है।[23]

पंचायतें सही अर्थों में तीसरी सरकार के रूप में प्रतिष्ठित हो सकें इसके लिए भारत सरकार के स्तर से निरंतर प्रयास किया जाता रहा है। लेकिन राज्य सरकारें बड़े पैमाने पर उदासीन रही हैं। इस दिशा में 1999 में भारत सरकार के तत्कालीन ग्रामीण विकास मंत्री बाबा गौड़ा पाटिल का वह पत्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है जो उन्होंने 17 मार्च 1999 को देश के सभी मुख्यमंत्रियों को भेजा था। उन्होंने पत्र की शुरुआत ही इससे की थी कि ग्राम पंचायतों को स्वशासन की इकाई के रूप में गठित करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 40 के निर्देश के बावजूद अब तक हुई प्रगति पर्याप्त नहीं है

इतना ही नहीं, उसने संघ एवं राज्य की सभी संगत कानूनों की तत्काल समीक्षा करने तथा उनको तदनुसार संशोधित करने का सुझाव दिया। उसने संविधान के अनुच्छेद 252 जिसमें दो या अधिक राज्यों के लिए संसद को विधि बनाने की शक्ति दी गई है, का हवाला देते हुए कहा है कि स्थानीय शासनों और समुदायों के अधिकारों, जिम्मेदारियों और कार्यों के हस्तांतरण का विस्तृत सिद्धांत विहित किया जाना चाहिए, जिसमें पूरकता का सिद्धांत, लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण, सही मायने में सत्ता का हस्तांतरण तथा नागरिक केंद्रित व्यवस्था को विशेष रूप से शामिल किया गया है।

राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों को कई राज्यों में जिस तरह अनदेखी की जा रही है उसको देखते हुए उसने एक ऐसे तंत्र की स्थापना की आवश्यकता जताई है जो निरंतर वित्त आयोग की सिफारिशो के क्रियान्वयन की समीक्षा करें।

जैसा कि सर्वविदित है कि पंचायत सरकार के चुने हुए प्रतिनिधियों को आए दिन जिलाधिकारियों द्वारा निलंबित किया जाता रहा है। इस भय के चलते प्रतिनिधिगण उच्च अधिकारियों के सभी गलत-सही निर्णयों को मानने के लिए मजबूर रहते हैं। सुधार आयोग ने इस सच्चाई को संज्ञान में लेते हुए लोकपाल की नियुक्ति का सुझाव दिया था। जिसके आधार पर जम्मू-कश्मीर जैसे कुछ ही राज्यों में इस तरह के लोकपालों की नियुक्ति के प्रावधान बनाए गए हैं। वह भी व्यवहार में अभी पूरी तरह से उतार नहीं पाया है। आयोग द्वारा यह सलाह दी गई है कि राज्य सरकारों के पास पंचायती राज संस्थाओं द्वारा पारित किसी संकल्प को स्थगित अथवा रद्द करने या पद के दुरुपयोग, भ्रष्टाचार आदि के आधार पर निर्वाचित प्रतिनिधियों के खिलाफ कार्यवाही करने अथवा पंचायतों को अधिक्रमित या भंग करने का अधिकार नहीं होना चाहिए। ऐसे सभी मामलों में छानबीन करने और कार्यवाही की सिफारिश करने का अधिकार स्थानीय लोकपाल के पास होना चाहिए जो लोकायुक्त के माध्यम से राज्यपाल को अपनी रिपोर्ट भेजेगा।[24]

जैसा कि सर्वविदित है कि पंचायत सरकार के चुने हुए प्रतिनिधियों को आए दिन जिलाधिकारियों द्वारा निलंबित किया जाता रहा है। इस भय के चलते प्रतिनिधिगण उच्च अधिकारियों के सभी गलत-सही निर्णयों को मानने के लिए मजबूर रहते हैं। सुधार आयोग ने इस सच्चाई को संज्ञान में लेते हुए लोकपाल की नियुक्ति का सुझाव दिया था। जिसके आधार पर जम्मू-कश्मीर जैसे कुछ ही राज्यों में इस तरह के लोकपालों की नियुक्ति के प्रावधान बनाए गए हैं। वह भी व्यवहार में अभी पूरी तरह से उतार नहीं पाया है

लगभग इसी प्रकार वी रामचंद्रन की अध्यक्षता वाले कार्य समूह ने स्थानीय सरकार के एक मजबूत सिस्टम के विकास को केंद्र में रखकर अपनी संस्तुतियाँ दी हैं। रिपोर्ट के दूसरे चैप्टर में कार्यसमूह की यह चिंता कि पंचायत 'स्थानीय सरकार' के रूप में दिखाई नहीं पड़ रही है, उसके कारणों का स्पष्ट उल्लेख किया है जिसमें अधिकारों के हस्तांतरण का न होना, केंद्र व राज्य सरकार की ओर से पंचायत के द्वारा समांतर अन्य संस्थाओं को खड़ा करना, नौकरशाही का नियंत्रण, सिर्फ केंद्र व राज्य की स्कीमों के लिए धन देना तथा राज्य के अधिनियमों में ग्रामसभा को पर्याप्त अधिकार न देना जैसे कारणों को चिन्हित किया है। इन कारणों से मुक्ति का रास्ता भी उसमें सुझाया है। इसके लिए उसमें अगले 6 वर्षों (2011 से 2017) तक के लिए एक रोडमैप भी तैयार किया था। पंचायत को संविधान के अनुसार सेल्फ गवर्नमेंट अर्थात अपनी सरकार के रूप में सशक्त, सक्षम तथा जवाबदेह बनाने के लिए कई महत्वपूर्ण सुझाव दिए है तथा ग्रामसभा को मजबूत व अधिकार सम्पन्न करके पंचायत को उसके प्रति उत्तरदायी बनाने के लिए संस्तुति की है। इसी के साथ पंचायत के लिए कर्मचारियों का अलग से कैडर बनाने, सामानांतर संस्थाओं को पंचायती व्यवस्था में विलय करने, 29 विषयों के समस्त कार्य, कर्मी, कोष पंचायतों को सौंपने तथा स्थानीय नियोजन को प्राथमिकता देने पर जोर देने के साथ ही चुने हुए प्रतिनिधियों की क्षमता और कुशलता के विकास तथा मतदाताओं (ग्रामसभा सदस्यों) की जागरूकता पर भी बल दिया है।[25]

वास्तव में 73वें संविधान संशोधन में कई ऐसी कमियाँ हैं जो सेल्फ गवर्नमेंट अर्थात अपनी सरकार को सही अर्थों में प्रभावी बनने में बड़ी बाधा के रूप में खड़ी है। इन्हें दूर किए बिना गांधी के ग्राम स्वराज्य का सपना अधूरा ही रहेगा। वैसे तो प्रशासनिक सुधार आयोग ने पंचायत के अधिकारों को लेकर अपनी एक सार्थक संस्तुति दी है जिसको पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है। लेकिन इसके अतिरिक्त कुछ और भी महत्वपूर्ण बिंदु है।

जैसा कि हम जानते हैं कि इस देश की आबादी का एक बड़ा हिस्सा हिंदीभाषी है। संविधान मूलत: अंग्रेजी में लिखा गया और बाद में उसका हिंदी अनुवाद हुआ। संविधान के अनुच्छेद 40 में ग्राम पंचायतों को स्वशासन की इकाई के रूप में प्रतिस्थापित किए जाने का निर्देश दिया गया है। जो बाद में 73वें संविधान संशोधन के द्वारा पूरा किया गया। संविधान के हिंदी अनुवाद में इस सेल्फ गवर्नमेंट को 'स्वायत्त शासन' कहा गया है।[26] जो स्पष्ट रूप से गलत अनुवाद है। गवर्नमेंट का हिंदी अनुवाद सरकार है न कि शासन। नौकरशाही के स्तर पर तो यह और अधिक भ्रमित करता है जब इसे स्थानीय स्वशासन कह कर संबोधित किया जाता है। जबकि इसका सही और लोकग्राही शब्द 'स्व-सरकार' अथवा 'अपनी सरकार' हो सकता है। यदि संविधान लागू होने के साथ ही पंचायतीराज व्यवस्था को 'अपनी सरकार' के रूप में संबोधित किया गया होता तो लोगों का झुकाव व लगाव इसके प्रति निश्चित रूप से बड़े पैमाने पर हुआ होता। लेकिन आज भी इसे 'स्थानीय स्वशासन' कह कर ही संबोधित किया जा रहा है। यहाँ एक

महत्वपूर्ण बात और यह है कि संविधान में 'सेल्फ गवर्नमेंट' को परिभाषित भी नहीं किया गया है जिसके चलते इसकी स्थिति आज तक स्पष्ट नहीं है।

इस समय संविधान में नए सिरे से जिन बिंदुओं पर संशोधन करने की आवश्यकता है उसमें अधिकार व दायित्व प्रदान करने का स्पष्ट प्रावधान, पंचायत के विषयों को सातवें अनुसूची का हिस्सा बनाने, राज्य वित्त आयोग की संस्तुतियों को प्रभावी बनाने, चुने हुए प्रतिनिधियों के विरुद्ध जाँच हेतु लोकपाल गठित करने, अलग से पंचायत कैडर बनाने, समानांतर संस्थाओं को समाप्त करने, स्थानीय स्तर पर सुलभ एवं सस्ता न्याय उपलब्ध कराने हेतु न्याय पंचायतों का प्रावधान करने तथा ग्रामसभाओं को अपनी गाँव सरकार की विधायिका के रूप में प्रतिष्ठित करने जैसे मुद्दे शामिल है। वैसे तो इनमें से कुछ मुद्दों पर संसद द्वारा अधिनियम भी बनाया जा सकता है। जिसमें 'न्याय पंचायत' की पुनर्स्थापना तथा 'ग्रामसभा' को विधायिका के रूप में प्रतिष्ठित करने का मुद्दा प्रमुख है। इससे यह लगता है कि बिना संसद के हस्तक्षेप के पंचायतों को सही अर्थों में तीसरी सरकार अर्थात जनता की 'अपनी सरकार' के रूप में विकसित करना पूरे देश में संभव नहीं रह गया।

'न्याय पंचायत' और 'ग्रामसभा' का विषय अत्यंत महत्वपूर्ण एवं परस्पर पूरक के रूप में है। जिन राष्ट्रनायकों ने भारत के स्वर्णिम भविष्य के लिए पंचायती राज व्यवस्था को एक अनिवार्य तत्व के रूप में अनुभव किया है उन सबने इन दोनों संस्थाओं की उपादेयता को शीर्ष पर रखा है। गांधी जी ने तो ग्राम स्वराज्य का आधार ही पंचायत को माना था और पंचायत को गाँव के झगड़ों को गाँव में निपटाने का प्रथम दायित्व सौंपा था। परस्पर सहयोग, स्वावलंब और सत्याग्रह जैसे तत्वों के लिए ग्रामसभा के रूप में ही वे पंचायत को चिन्हित करते थे।[27] लोकनायक जयप्रकाश ने तो ग्रामसभा को 'सहभागी लोकतंत्र' का आधार मानते हुए भारत के सामुदायिक समाज के संरक्षण और विकास के लिए इसी की मुख्य भूमिका तय की थी। वे सामुदायिकता के विकास में अंग्रेजी राज में बनाई गई कोर्ट कचहरियों को ही सबसे बड़ी बाधा के रूप में देखते थे। इसके लिए सर्वसहमति से चलने वाली पंचायत व्यवस्था को वे समाधान के रूप में देखते थे।[28] राजीव गांधी ने भी पंचायती राज विधेयक पर अपनी बात रखते हुए पंचायत को स्थानीय न्याय व्यवस्था की जिम्मेवारी सौंपने की बात की थी।[29] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पंचायत मूलत: एक न्याय संस्था के रूप में ही जानी जाती रही है। 1920 में पंचायत व्यवस्था को कानूनी स्वरूप देने के लिए विभिन्न प्रांतों में बनाए गए अधिनियमों में ग्राम पंचायत और न्याय पंचायत दोनों के प्रावधान किए गए थे। आजादी के बाद धीरे-धीरे न्याय पंचायतों को राज्य के अधिनियमों से हटाया जाता रहा। वर्तमान समय में आठ राज्यों के अधिनियम में आज भी न्याय पंचायतों का प्रावधान है। लेकिन जमीनी स्तर पर केवल बिहार राज्य में ग्राम कचहरी के रूप में पंचायती न्याय व्यवस्था बड़े ही प्रभावी तरीके से कार्य कर रही है। ग्राम कचहरी के पंच और सरपंच का चुनाव ग्राम पंचायत चुनाव के साथ राज्य निर्वाचन आयोग द्वारा ही कराया जाता है। ग्राम कचहरी को भारतीय दंड संहिता की 40 धाराओं के विवादों का निपटारा करने का अधिकार है।[30] विभिन्न अध्ययनों की रिपोर्ट यह बताती है कि बिहार के गाँवों में इन धाराओं में होने वाले अधिकांश विवादों का निपटारा ग्राम कचहरी के स्तर पर परस्पर समझौते के द्वारा हो जाता है।[31]

'लेकिन संकट यह भी है कि सरकार की नीतियों और उसके क्रियान्वयन का जो तंत्र अब तक विकसित हुआ है, उसमें आम आदमी को सबसे ज्यादा अविश्वसनीय माना गया है। लोकमत की अपेक्षा सामान्य सरकारी कर्मचारी का सुझाव ज्यादा महत्वपूर्ण एवं मान्य है। ऐसे में पंचायतों का महत्वहीन होना स्वाभाविक है। विश्वास की कमी की जो बात है, वह दोनों तरफ से है। एक तरफ सरकार और प्रशासन में बैठे लोग पहले से ही यह मानकर चल रहे हैं कि पंचायत और उनके प्रतिनिधि कुछ कर नहीं सकते। इनके पास समझ नहीं है। कौशल और जानकारी का अभाव है। उत्तरदायित्व के निर्वहन की क्षमता नहीं है। दूसरी तरफ पंचायत प्रतिनिधि भी अपने-आपको सक्षम साबित करने के लिए प्रयास नहीं कर रहे हैं। पंचायत प्रतिनिधियों में जानकारी, समझ तथा कार्यकौशल का बड़े पैमाने पर अभाव है। जिसके चलते पंचायती व्यवस्था के प्रति न तो उनमें अपनत्व का भाव आ पा रहा है और न ही वे उसे कुशलता के साथ संचालित कर पा रहे हैं। वास्तव में इसका सबसे बड़ा कारण पंचायत प्रतिनिधियों के प्रशिक्षण कार्यक्रम का प्रभावी तरीके से संचालित न होना है। भारत सरकार के स्तर से इसके लिए 'राष्ट्रीय ग्रामीण विकास एवं पंचायतीराज संस्थान' जैसा एक अभिकरण तो स्थापित किया गया है लेकिन प्रशिक्षण मूलत: राज्य सरकारों की जिम्मेदारी का हिस्सा है। इस विषय में अधिकांश राज्य गंभीर नहीं है। जिसके चलते पंचायत प्रतिनिधियों में जानकारी व कौशल का बेहद अभाव है। यह सही है कि वर्तमान समय 'राष्ट्रीय ग्राम स्वराज्य अभियान' के अंतर्गत पंचायत प्रतिनिधियों के प्रशिक्षण तथा क्षमता निर्माण पर सबसे अधिक जोर दिया गया है और उसके बजट का एक बड़ा हिस्सा इसी के लिए आवंटित है। लेकिन राज्य सरकारों के द्वारा आयोजित

एक तरफ सरकार और प्रशासन में बैठे लोग पहले से ही यह मानकर चल रहे हैं कि पंचायत और उनके प्रतिनिधि कुछ कर नहीं सकते। इनके पास समझ नहीं है। कौशल और जानकारी का अभाव है। उत्तरदायित्व के निर्वहन की क्षमता नहीं है। दूसरी तरफ पंचायत प्रतिनिधि भी अपने-आपको सक्षम साबित करने के लिए प्रयास नहीं कर रहे हैं। पंचायत प्रतिनिधियों में जानकारी, समझ तथा कार्यकौशल का बड़े पैमाने पर अभाव है। जिसके चलते पंचायती व्यवस्था के प्रति न तो उनमें अपनत्व का भाव आ पा रहा है और न ही वे उसे कुशलता के साथ संचालित कर पा रहे हैं

प्रशिक्षण कार्यक्रम औपचारिकता मात्र होकर रह जा रहे हैं।

इस सबके लिए यह भी जरूरी है कि ग्रामसभा को इस व्यवस्था में सर्वाधिक महत्व दिया जाए। वैसे तो भारत सरकार के स्तर पर ग्रामसभा को काफी महत्व दिया गया है। उसके द्वारा गाँव के विकास और शासन के लिए बनाए गए अधिनियमों तथा कार्यक्रमों में निर्णय का अधिकार सामान्यतया ग्रामसभा को दिया गया है। उदाहरण के लिए 'महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम' तथा 'ग्राम पंचायत विकास योजना' में निर्णय का पूरा अधिकार ग्रामसभा को दिया गया है। भारत सरकार की तो शुरुआती दौर से ही यह मंशा रही है कि नई पंचायतीराज व्यवस्था के अंतर्गत ग्रामसभाओं को वही स्थान व अधिकार प्राप्त हो जो देश की राज्य व्यवस्था में विधायिका को प्राप्त है। लेकिन दूसरी तरफ ग्रामसभा के प्रति लोगों की जागरूकता का स्तर बहुत कमजोर है। लोगों को ग्रामसभा और ग्राम पंचायत का अंतर स्पष्ट नहीं है। कई राज्यों में ग्राम पंचायत ग्रामसभा का सुझाव मानने को बाध्य नहीं है। इसलिए ग्रामसभा की बैठकों में उपस्थिति न के बराबर है। जिन राज्यों में पंचायतें प्रभावी तरीके से कार्य कर रही हैं उन राज्यों में ग्रामसभा पर विशेष रूप से फोकस किया गया है। इसी के साथ ग्रामसभा के विस्तृत क्षेत्र और जरूरत से ज्यादा सदस्य संख्या को देखते हुए ग्राम पंचायत क्षेत्र के निर्वाचक क्षेत्रों (वार्डों) में वार्ड सभा का प्रावधान करके लोक भागीदारी को सामुदायिकता के साथ जोड़कर प्रोत्साहित किया जा रहा है। जहाँ इस तरह की ईमानदार कोशिश हो रही है वहाँ उसके परिणाम भी बहुत उत्साहवर्धक हैं।

इस सबके लिए यह भी जरूरी है कि ग्रामसभा को इस व्यवस्था में सर्वाधिक महत्व दिया जाए। वैसे तो भारत सरकार के स्तर पर ग्रामसभा को काफी महत्व दिया गया है। उसके द्वारा गाँव के विकास और शासन के लिए बनाए गए अधिनियमों तथा कार्यक्रमों में निर्णय का अधिकार सामान्यतया ग्रामसभा को दिया गया है। उदाहरण के लिए 'महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम' तथा 'ग्राम पंचायत विकास योजना' में निर्णय का पूरा अधिकार ग्रामसभा को दिया गया है

संदर्भ

1. गांधियन कांस्टिट्यूशन ऑफ फ्री इंडिया, श्री मन्नारायण अग्रवाल 1946, पृष्ठ 15
2. भारत का संविधान, सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद, दशम संस्करण 2013, भाग-4 (राज्य की नीति के निदेशक तत्व) पृष्ठ-34
3. वही भाग-5 (संघ) तथा भाग-6 (राज्य) पृष्ठ- 37 तथा 83
4. वही - भाग-9 (पंचायत) पृष्ठ-134
5. पंचायत उपबंध (अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार) अधिनियम 1996, पेसा कानून, पॉपुलर एजुकेशन एण्ड एक्शन सेंटर, आस्था संस्थान - 2020
6. भारत का संविधान - वही - भाग-9 पृष्ठ-131
7. पंचायतों की स्थिति (2007-08): एक स्वतंत्र मूल्यांकन (द्वितीय खण्ड) (केरल) पंचायती राज मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ 240
8. वही - (केरल) 258 व 259
9. वही - (कर्नाटक) पृष्ठ 206
10. वही (पश्चिम बंगाल) 485-486
11. वही (पश्चिम बंगाल) 496
12. वही (पश्चिम बंगाल) - 514
13. भारत सरकार 2006, स्टेट प्रोफाइल, उत्तर प्रदेश, पंचायतीराज मंत्रालय, भारत सरकार
14. सत्ता के विकेंद्रीकरण से संबंधित : शासनादेशों का संकलन (प्रथम खण्ड) पंचायती राज विभाग, उत्तर प्रदेश शासन (अगस्त 1999) पृष्ठ - 47
15. पंचायतों की स्थिति - वही (हरियाणा) - 123
16. पंचायतों की स्थिति - वही (हरियाणा) - 122
17. पंचायतों की स्थिति - वही (राजस्थान) - 382
18. भारत का संविधान - वही - भाग 3 (मूल अधिकार) पृष्ठ 5
19. वही - भाग -9 (पंचायत) पृष्ठ 131
20. वही - भाग -9 क, (नगरपालिकाएँ), पृष्ठ 142
21. ग्राम पंचायत विकास योजना संबंधी भारत सरकार की गाइड लाइन - 2015, राष्ट्रीय ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज संस्थान, हैदराबाद 2015
22. राज्यमंत्री ग्रामीण विकास, भारत सरकार, बाबा गौड़ा पाटिल द्वारा 17 मार्च 1999 को राज्यों के मुख्यमंत्रियों को भेजे गए पत्र का अंश।
23. पंचायतों की स्थिति : 2007 - 08 (तृतीय खंड : अनुपूरक), अनुबंध II,
24. पंचायतों की स्थिति : 2007-08 (तृतीय खंड) वही 187
25. वी रामचंद्रन कार्य समूह की रिपोर्ट 2009
26. भारत का संविधान, वही - भाग 4 (राज्य की नीति के निदेशक तत्व), पृष्ठ 34
27. ग्राम स्वराज्य, महात्मा गांधी, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, सातवाँ संस्करण 2015 पृष्ठ -75
28. सामुदायिक समाज : रूप और चिंतन, जयप्रकाश नारायण, सर्व सेवा संघ प्रकाशन वाराणसी - पृष्ठ 32
29. पंचायती राज: संकल्प और संभावनाएँ, संपादक- जगदीश पीयूष, लोकसभा में राजीव गांधी का संबोधन (7अगस्त1989), संदर्भ-65वाँ संविधान संशोधन विधेयक- पृष्ठ-52
30. बिहार पंचायती राज अधिनियम 1993, अध्याय 6, ग्राम कचहरी धारा 103 दांडिक अधिकारिता, पृष्ठ 65
31. बिहार में ग्राम कचहरी: एक अध्ययन रिपोर्ट, कोशिश चौरिटेबल ट्रस्ट, 2015 पृष्ठ-105

स्वावलंबी गाँव के लिए सहकारिता

भारत में औपचारिक रूप से सहकारी और सहयोगपरक गतिविधियों का प्राचीनकाल से ही रिवाज रहा है। यहाँ के सामुदायिक समाज की यह स्वभावगत विशेषता थी। इन सहकारी सहयोगपरक गतिविधियों को देश के अलग-अलग क्षेत्रों में अलग अलग नामों से पुकार जाता रहा है। जिसमें वानराय, कुरी, भिशी, फड़ आदि प्रमुख नाम थे। मद्रास रेजीडेंसी ने इन पारंपरिक ऋण संघों को 'निधि' के नाम से संगठित करने का प्रयास शुरू कर दिया था। पंजाब में 1891 ई. में गाँव की सामान्य भूमि को नियंत्रित करने के लिए सहकारी तर्ज पर एक सोसाइटी की शुरुआत हो गई थी।

भारतीय अकाल आयोग ने 1901 में औपचारिक रूप से भारत में सहकारी समितियों की शुरुआत को प्रोत्साहित किया था। 1904 में पहला सहकारी ऋण समिति अधिनियम पारित हुआ। बाद में इसमें संशोधन करके 1912 में सहकारी समिति अधिनियम बनाया गया था।

जैसा कि सर्व विदित है कि वर्ष 1919 के 'भारत सरकार अधिनियम' में केंद्र और प्रांतीय सरकारों के विषयों का विधिवत विभाजन किया गया। इसके तहत सहकारिता प्रांतीय सरकार का विषय बन गई। जिसके चलते विभिन्न प्रांतों ने अपने-अपने अधिनियम पारित किए।

इसके उपरांत वर्ष 1937 में जब कई प्रांतों में कांग्रेस सत्ता में आई तो उसने सहकारिता के इस आंदोलन को आगे बढ़ाने में काफी रुचि दिखाई। दूसरी ओर महात्मा गांधी भी सहकारिता को प्रोत्साहित करने का प्रयास बराबर करते रहे। बापू ने वर्षों पूर्व दक्षिण अफ्रीका के 'फीनिक्स आश्रम' को सहकारी संस्था के रूप में ही स्थापित किया था। जिसमें उसके प्रत्येक सदस्य को तीन एकड़ भूमि खेती के लिए दी जाती थी। 'टॉल्सटॉय फार्म' को भी अफ्रीकी स्वतंत्रता आंदोलन से प्रभावित परिवारों के पुनर्वास की सहकारी बस्ती के रूप में विकसित किया गया था। इन्हीं अनुभवों के आधार पर भारत की परिस्थितियों को देखते हुए बापू सहकारिता को आधार बनाने पर काफी जोर देते थे।

वर्ष 1956 में 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम' की कमियों की समीक्षा के दौरान तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने एक बार फिर से 'पंचायत' के साथ 'सहकारिता' को नए सिरे से संगठित और प्रोत्साहित करने पर जोर दिया था। इसी क्रम में वर्ष 1958 में 'राष्ट्रीय विकास परिषद' ने सहकारी समितियों के लिए एक 'राष्ट्रीय नीति' की घोषणा की। वर्ष 1962 में 'राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम अधिनियम' पारित हुआ था। जिसके तहत 'राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम' (छब्क्ब्) की स्थापना हुई।इसके उपरान्त देश के सभी राज्यों में सहकारी समितियाँ बड़े स्तर पर संगठित और विकसित होती रही हैं। कहीं पर इन्होंने बड़ी सफलता के साथ अपनी भूमिका निभाई और कहीं बड़े पैमाने पर अनियमितताओं की शिकार हुई हैं। इनके हिस्से में गैर जिम्मेदारी और गैर जवाबदेही के अनेक प्रकरण भी सामने आए हैं। लेकिन गुजरात, महाराष्ट्र तथा पंजाब जैसे राज्यों में इनका इतिहास काफी उत्साहवर्धक एवं गौरवशाली रहा है।

सहकारिता आंदोलन के क्षेत्र में 2012 सबसे महत्वपूर्ण काल है। इस वर्ष के शुरुआती दिनों में ही 12 जनवरी को 97वें संविधान संशोधन के माध्यम से सहकारी समितियों को देश के विकास की मुख्यधारा में प्रभावी तरीके से जोड़ने हेतु संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई। संविधान के भाग 9 के 'ख' में अनुच्छेद 243 के अंतर्गत 'य ज' से लेकर 'य न' तक इस अनुच्छेद के 13 उपबंधों में इससे संबंधित, परिभाषाएँ, समामेलन, बोर्ड के सदस्यों का निर्वाचन, बोर्ड का प्रबंधन, लेखा अंकेक्षण, साधारण निकाय का संयोजन बहुराज्यीय सहकारी समितियाँ तथा इसके प्रभाव क्षेत्र आदि के प्रावधान किए गए हैं। इन सभी प्रावधानों के बारे में संविधान ने दिशा-निर्देश तो दिया है लेकिन इस संबंध में और अधिक स्पष्टता के लिए इसकी संरचना तथा प्राधिकार इत्यादि के बारे में राज्य की विधायिका को अधिकृत किया गया है। अनुच्छेद 243 य झ के अनुसार "राज्य की विधायिका इस भाग के उपबंधों के अध्यधीन रहते हुए स्वैच्छिक निर्माण, लोकतांत्रिक सदस्य-नियंत्रण, सदस्य-आर्थिक सहभागिता और स्वायत्त कार्यकरण के सिद्धांतों पर आधारित सहकारी समितियों के समामेलन, विनियमन एवं समापन के संबंध में विधि द्वारा उपबंध कर सकेगी"।

जैसा कि हम जानते हैं कि सहकारी समितियाँ मूलतः राज्य का विषय हैं। अनुच्छेद 246 की सातवीं अनुसूची के अंतर्गत राज्य सूची के क्रमांक 32 में निगमों, विश्वविद्यालयों एवं व्यापारिक, साहित्यिक, धार्मिक तथा अन्य समितियों के साथ इसे भी शामिल किया गया है। इसी नाते सामान्यतः राज्य सरकारों के स्तर से इसका संचालन होता रहा है। लेकिन 97 वें संशोधन के माध्यम से इसे संविधान की मुख्यधारा में शामिल करके देश के आर्थिक विकास को आगे बढ़ाने की एक नई पहल की गई थी। यह अलग बात है कि 9 वर्षों तक इस पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। लेकिन आज जब भारत सरकार की कार्यपालिका में सहकारिता का एक नया मंत्रालय बनाया गया है तब यह विषय शीर्ष पर आ गया है।

संविधान द्वारा ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में स्व-सरकार (सेल्फ गवर्नमेंट) के रूप में पंचायतों एवं नगरपालिका को आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की जो गुरुतर जिम्मेवारी सौंपी गई है, उसे सार्थक रूप से जमीन पर उतारने में यह नई पहल निश्चित रूप से काफी सहायक होगी। गांधी के ग्राम स्वराज्य के स्वदेशी, स्वावलंबन, सहयोग, ट्रस्टीशिप और विकेंद्रीकरण जैसे बुनियादी सिद्धांतों को भी इससे साकार करने में मदद मिलेगी।

संविधान सभा में कई प्रबुद्ध सदस्यों द्वारा गांधी के सिद्धांतों के आधार पर राजनीतिक तथा आर्थिक दोनों संदर्भों में सत्ता के विकेंद्रीकरण को लेकर जो गंभीर चिंता व्यक्त गई थी, उन दोनों के लिए क्रमशः पंचायत और सहकारिता ही सबसे बड़े आधार थे। गाँव के स्वराज्य और स्वावलंबन की प्राप्ति का भी यही एक मात्र मार्ग स्वीकार किया जाता रहा है। आज जब संविधान के भाग 9 में पंचायत और सहकारिता को साथ-साथ प्रतिष्ठित किया गया है तब यह विषय और भी अधिक प्रासंगिक हो उठा है। आने वाले समय में गाँवों के स्वशासन और खुशहाली का यही दोनों संवैधानिक संस्थायें सबसे अधिक सार्थक एवं प्रभावी माध्यम बनेंगे।

संविधान संशोधन की पूरक कार्यवाही

1. संविधान के अनुच्छेद 40 तथा 243(जी) में पंचायत को सेल्फ गवर्मेंट के रूप में प्राधिकार एवं दायित्व सौंपने की बात की गई है लेकिन इसका अर्थ अथवा ये किस टर्म में होगा इसे संविधान में परिभाषित नहीं किया गया है। अत: इसे संविधान में परिभाषित किया जाए।
2. अनुच्छेद 243(जी) में पंचायतों को शक्ति एवं दायित्व सौंपने की जिम्मेवारी राज्यों के विधानमंडल को सौंपते हुए उसे उसकी इच्छा पर छोड़ दिया गया है। अत: उसे द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की संस्तुति के अनुसार निम्नलिखित तरह से संशोधित किया जाना चाहिए -

"इस संविधान के प्रावधानों के अधीन राज्य का विधानमंडल कानून द्वारा उपयुक्त स्तर की पंचायत को यथा आवश्यक अधिकार और प्राधिकार सौंपेगा ताकि वे ऐसे सभी कार्यों के संबंध में स्वायत्त संस्थाओं के रूप में अपने कार्य को संपन्न कर सकें, जो स्थानीय स्तर पर संपन्न किए जा सकते हैं जिसमें 11वीं अनुसूची में सूचीबद्ध विषयों से संबंधित कार्य शामिल हैं।"

1. पंचायतों के विषयों के लिए बनाई गई 11वीं अनुसूची को संविधान की 7वीं अनुसूची में एक चौथी सूची जोड़कर सेल्फ गवर्मेंट के विषय का उल्लेख किया जाना चाहिए।
2. संविधान में संशोधन करके पंचायत निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन तथा आरक्षण का कार्य राज्य निर्वाचन आयोग को सौंपा जाना चाहिए।
3. राज्य निर्वाचन आयुक्त की नियुक्ति, मुख्यमंत्री, राज्य विधानसभा अध्यक्ष तथा प्रतिपक्ष के नेता से बने कलीजियम की सिफारिश पर राज्यपाल द्वारा किए जाने के लिए संविधान संशोधन किया जाना चाहिए।
4. राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों को लेकर संविधान के अंतर्गत एक ऐसा तंत्र स्थापित किया जाए जो राज्य वित्त आयोग की सभी सिफारिशों के क्रियान्वयन की समीक्षा करे तथा राज्य वित्त आयोग से संवाद और समन्वयन स्थापित कर सके, इसके लिए प्रयास करें।
5. संविधान में यह प्रावधान किया जाए कि राज्य सरकारों के पास पंचायती राज संस्थाओं द्वारा पारित किसी संकल्प को स्थगित अथवा रद्द करने या पद के दुरुपयोग भ्रष्टाचार आदि के आधार पर निर्वाचित प्रतिनिधियों के खिलाफ कार्यवाही करने अथवा पंचायतों को अधिक्रमित/भंग करने का अधिकार नहीं होना चाहिए। ऐसे सभी मामलों में छानबीन करने और कार्यवाही की सिफारिश करने का अधिकार इसके लिए नियुक्त लोकपाल के पास होना चाहिए जो लोकायुक्त के माध्यम से राज्यपाल को भेजेगा।
6. संविधान में ग्रामसभा के अधिकार दायित्व तथा कार्य-पद्धति के बारे में एक स्पष्ट प्रावधान किया जाना चाहिए जिससे सही अर्थों में गाँव के वयस्क नागरिकों को निर्णय का अधिकार प्राप्त हो सके।
7. केंद्र एवं राज्य सरकारों की समीक्षा हेतु गठित किए जा चुके आयोगों की तर्ज पर राज्य सरकार एवं सेल्फ गवर्मेंट (अपनी सरकार) के संबंधों की समीक्षा के लिए एक राष्ट्रीय आयोग गठित किया जाए।
8. जिस प्रकार संघ एवं राज्य सरकार के कर्मचारियों के कैडर के प्रावधान का उल्लेख संविधान में किया गया है, उसी तर्ज पर पंचायत कैडर के गठन का भी प्रावधान भी किया जाए।
9. संविधान के अनुच्छेद 39(ए) - जो नागरिकों को सरल और सर्वसुलभ न्यापय उपलब्धष कराने हेतु राज्यक को निर्देशित करता है तथा पंचायत मूलत: न्याय संस्था रही है अत: इस बात को ध्यान में रखते हुए ग्राम स्तर पर न्यातय पंचायतों के प्रावधान का दिशा-निर्देश संविधान में शामिल किया जाना चाहिए।

राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों को लेकर संविधान के अंतर्गत एक ऐसा तंत्र स्थापित किया जाए जो राज्य वित्त आयोग की सभी सिफारिशों के क्रियान्वयन की समीक्षा करे तथा राज्य वित्त आयोग से संवाद और समन्वयन स्थापित कर सके, इसके लिए प्रयास करें

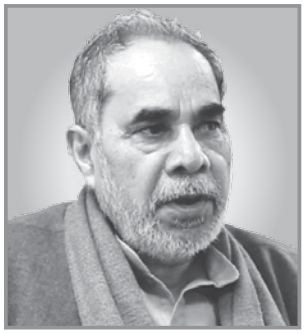

भारतीय संविधान सभा और ग्राम पंचायत

रामबहादुर राय

भारत की संस्कृति और अर्थव्यवस्था गाँव केंद्रित है। यह एक सर्वमान्य तथ्य है। लेकिन यह भी आश्चर्यजनक सत्य है कि स्वतंत्र भारत के संविधान के मूल मसौदे में गाँव का उल्लेख तक नहीं है। इसे लेकर संविधान सभा में हुए विमर्श का एक वृत्तांत

भारत के सौभाग्य का सूर्योदय जब भी हुआ, उसकी किरणें गाँवों से ही फूटीं। यह कोरी कल्पना नहीं, ऐतिहासिक सच्चाई है, जिसका अनुसंधान पुनः स्वाधीनता संग्राम में किया गया। श्री अरविंद, बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय और इसी क्रम में सबसे प्रमुख नाम है महात्मा गांधी का। इसकी किसी को कल्पना भी नहीं हो सकती थी कि भारत के भाग्योदय के लिए बन रहे संविधान के मूल मसौदे में गाँव का उल्लेख तक नहीं होगा, पर नियति का यह मजाक संविधान सभा में ही घटित हुआ। मूल मसौदे में राज्य व्यवस्था के अंग के रूप में गाँव का जिक्र तक नहीं था। वह जितना महत्त्वपूर्ण और आश्चर्यजनक तब था, उतना ही 72 साल बाद भी बना हुआ है।

अमेरिकी पत्रकार लुई फिशर ने 1942 में महात्मा गांधी के साथ एक सप्ताह (4 से 10 जून) बिताया। उनसे बातचीत कर भावी भारत का चित्र क्या होगा, इस प्रयोजन को पूरा किया। यह अवसर उन्हें पं. नेहरू ने सुलभ कराया था। अपनी बातचीत के आधार पर लुई फिशर ने एक पुस्तक बनाई, जो बहुचर्चित है। पुस्तक का नाम ही है, 'गांधी के साथ एक सप्ताह।' आज भी उसे लोग खोजकर पढ़ते हैं। उसका किंडल संस्करण भी है। उसी पुस्तक में महात्मा गांधी का यह कथन है- 'सत्ता का केंद्रबिंदु इस समय दिल्ली, कोलकाता, मुंबई अर्थात् बड़े नगरों में है। मैं उसे भारत के सात लाख गाँवों में बाँटना चाहूँगा।'[1] लुई फिशर का यह लिखा और गांधी जी का कहा हुआ संविधान सभा के सदस्यों को तो याद था। क्या पं. नेहरू इसे भूल गए थे? पं. नेहरू, सरदार पटेल और डॉ. राजेंद्र प्रसाद ही संविधान सभा का वास्तव में नेतृत्व कर रहे थे। इतिहास की बड़ी विडंबना ही इसे कहेंगे कि उनके नेतृत्व के बावजूद संविधान के मसौदे में गाँव का कोई स्थान राज्य व्यवस्था में नहीं रखा गया था।

अगस्त 1947 में संविधान सभा ने उन सिद्धांतों का निर्धारण कर दिया, जिन पर संविधान की रचना की जानी थी। बेनेगल नरसिंह राव ने संविधान सभा के सचिवालय की मदद से जो पहला मसौदा बनाया, वह भारत शासन अधिनियम-1935 पर मुख्यतः आधारित था। वे उस अधिनियम के विशेषज्ञ थे।

संविधान सभा ने मसौदा समिति का गठन 29 अगस्त, 1947 को किया था, जिसमें अलादि कृष्णस्वामी अय्यर, एन. गोपालस्वामी आयंगर, भीमराव अंबेडकर, के.एम. मुंशी, मोहम्मद सादुल्ला, बी.एल. मित्तर और डी.पी. खेतान थे। कुछ दिनों बाद बी.एल. मित्तर ने इस्तीफा दे दिया। उनके स्थान पर एन. माधवराव नए सदस्य बने। डी.पी. खेतान का 1948 में देहांत हो गया। उनके स्थान पर टी.टी. कृष्णमाचारी सदस्य बनाए गए। 30 अगस्त, 1947 को संविधान सभा स्थगित हो गई।

डॉ. भीमराव अंबेडकर ने 21 फरवरी, 1948 को वह मसौदा संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद को सौंप दिया, जिसे सुझावों के लिए भारत सरकार के मंत्रालयों, प्रदेश सरकारों, विधानसभाओं, सुप्रीम कोर्ट और हाईकोर्ट को भेजा गया।

नेतृत्व को जल्दी थी। इसलिए उसने यह निर्णय किया कि मसौदा समिति ने जो मसौदा फरवरी 1948 में बनाया, उसे ही संविधान सभा में प्रस्तुत किया जाए।

इसी दौरान सचमुच एक दिलचस्प घटना घटी। उसे जितना महत्त्व दिया जाना चाहिए था, अगर संविधान सभा का नेतृत्व देता तो संविधान के इतिहास की धारा बदल जाती। यह जरूरी है

कि पहले उस घटना को जानें। डॉ. राजेंद्र प्रसाद के कागजात में एक चिट्ठी है। उसे पढ़ने से मालूम होता है कि वह दूसरी चिट्ठी थी। संविधान के गहरे जानकार, बड़े वकील और दक्षिण भारत के ग्रामीण अंचल के जनजीवन पर लिखने के लिए जिनकी बड़ी ख्याति थी, वे थे-के.एस. वेंकटरमनी। उनका मात्र इतना ही परिचय नहीं है। रवींद्रनाथ ठाकुर की प्रेरणा से एक तमिल साप्ताहिक उन्होंने निकाला था। 'ए सर्च इन सीक्रेट इंडिया' के लेखक पाल ब्रंटन ने भी अपनी पुस्तक में वेंकटरमनी से भेंट का उल्लेख किया है।

उस के.एस. वेंकटरमनी ने डॉ. राजेंद्र प्रसाद को एक पत्र लिखा। वह राजेंद्र बाबू के कागजात में कहीं खो गया। जब उसका जवाब वेंकटरमनी को नहीं मिला तो उन्होंने दूसरा पत्र 9 मार्च, 1948 को लिखा। उस पत्र का जवाब डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने 22 मार्च, 1948 को दिया है। जो जवाब दिया है, उससे समझा जा सकता है कि वेंकटरमनी ने संविधान के मसौदे पर अपने सुझाव भेजे थे। जो लेख लिखा था, उसकी कतरन भी भेजी थी। डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने वेंकटरमनी को लिखा कि संविधान सभा की मसौदा समिति ने एक मसौदा बनाया है। वह मोटे तौर पर दूसरे देश के संविधान पर आधारित है। मैं यह दावा नहीं कर सकता कि वह गांधी जी के विचारों और शिक्षा पर आधारित है। इस समय के राजनीतिक प्रवाह के विपरीत जाना बहुत कठिन है। आज की विभिन्न प्रस्थापनाओं के विपरीत जाना उससे भी ज्यादा कठिन है। यह पत्र वर्धा से है। वे उन दिनों वहीं थे।

डॉ. राजेंद्र प्रसाद का दूसरा पत्र संविधान सभा के सलाहकार बेनेगल नरसिंह राव को है। 10 मई, 1948 को उन्होंने एक लंबा पत्र उन्हें भेजा। उसके साथ वेंकटरमनी का लेख भी संलग्न किया। अपने पत्र में उन्होंने लिखा कि इस लेख में अनेक बातें दिलचस्प हैं। कुछ बातें हैं, जो मुझे भी उचित लगती हैं। जैसे यह कि संविधान में यह व्यवस्था हो कि सत्ता गाँव से शुरू हो और केंद्र तक पहुँचे। इसके विपरीत भारत शासन अधिनियम -1935 का प्रावधान है। इसमें केंद्र से सत्ता प्रांतों को जाती है। गाँव प्रांतों पर छोड़ दिए गए हैं। यही प्रणाली अपने मसौदे में है। इस लेख में इसे पलट देने के सुझाव हैं। जहाँ तक मैं समझता हूँ, अगर इसे अपने संविधान में स्थान देना है तो कई अनुच्छेदों को फिर से लिखना होगा। उनका क्रम ठीक करना होगा। इसके अलावा एक सुझाव यह भी है कि बालिग मताधिकार से गाँव पंचायत का निर्वाचन हो। विधानसभा और लोकसभा के निर्वाचन के लिए गाँव पंचायत के प्रतिनिधि निर्वाचक मंडल माने जाएँ। उन्होंने लिखा है कि मैं इसे सर्वथा उचित समझता हूँ। यह कांग्रेस के संविधान के अनुरूप है। उन्होंने अपने पत्र में इसकी व्याख्या भी की है। विधायकों और सांसदों के लिए न्यूनतम योग्यता के बारे में भी उन्होंने अपना विचार विस्तार से लिखा है। वे न्यूनतम योग्यता निर्धारण के पक्षधर थे।

डॉ. राजेंद्र प्रसाद संविधान सभा के अध्यक्ष थे। वे मसौदा समिति के अध्यक्ष डॉ. अंबेडकर को भी यह पत्र भेज सकते थे, लेकिन उन्होंने विचार के लिए संवैधानिक सलाहकार को लिखा। ऐसे ऐतिहासिक पत्रों को पंक्तियों के बीच पढ़ना पड़ता है। इस तरह से उनका पत्र दो बातें स्पष्ट करता है- एक कि संविधान की पूरी परिकल्पना बेनेगल नरसिंह राव की थी। दो कि वे ही थे, जो नया मसौदा बना सकते थे। जिसमें राज्य व्यवस्था का पिरामिड वैसा हो जाता, जैसा गांधी जी चाहते थे। बेनेगल नरसिंह राव ने डॉ. राजेंद्र प्रसाद को जवाब देने में देर नहीं की। उन्होंने लिखा कि 'इस समय पंचायतों की अवधारणा को संविधान के मसौदे में सम्मिलित करने का कार्य कदाचित् सरल नहीं है। संविधान सभा द्वारा किए गए निर्णय के अनुसार लोकसभा और विधानसभा के लिए प्रत्यक्ष चुनाव का प्रावधान है। पंचायत योजना की आवश्यकता के अनुसार परोक्ष चुनाव का प्रावधान यदि करना है तो सबसे पहले मसौदे में परिवर्तन करना पड़ेगा। मैं नहीं जानता कि यह कितना व्यावहारिक है। विश्व के सभी देशों में निचले सदन का सीधा चुनाव होता है। अमेरिका के संयुक्त राज्यों में 'सीनेट' का चुनाव पहले परोक्ष रूप से होता था, परंतु 1939 से उसका चुनाव भी सीधा होता है।' संवैधानिक सलाहकार ने संविधान सभा के अध्यक्ष को अपने लंबे पत्र के अंत में उन्होंने पंचायत संबंधी विचार को 'अव्यावहारिक' बताया। इस विचार को संविधान की विश्वव्यापी प्रचलित अवधारणा के विपरीत ठहराया। इसके लिए विदेशी संविधानों के तथ्यों का हवाला दिया।'[2]

वह असाधारण घटना थी। सामान्य चर्चा में गाँव छाया रहा। संविधान के इतिहास में यह कलंक अमिट है कि गांधी जी ने पंचायत संबंधी जो सलाह दी थी, उसकी संविधान सभा के नेतृत्व ने उपेक्षा की।

डॉ. भीमराव अंबेडकर ने 4 नवंबर, 1948 के दिन संविधान सभा में संविधान का मूल मसौदा और सुझावों को प्रस्तुत किया, हालाँकि उस पर महीनों से बहस छिड़ी हुई थी, क्योंकि प्रतिक्रिया जानने के लिए उस मसौदे को सार्वजनिक कर दिया गया था। उस दिन तो मसौदा समिति के अध्यक्ष डॉ. भीमराव अंबेडकर ने संविधान सभा में उसे विधिवत् चर्चा के लिए प्रस्तुत किया। उससे पहले स्वाभाविक ही था कि मसौदा की खास-खास बातों को वे समझाते। ऐसा करते हुए, उन्होंने जो भाषण दिया, वह बेजोड़ था। मसौदे पर सामान्य चर्चा में सदस्यों ने उनके भाषण को विद्वतापूर्ण माना और फिर गाँव पर उनके कथन की जबरदस्त आलोचना की। जिसमें सदस्यों ने अपनी पीड़ा जिस तरह व्यक्त की, उसे पढ़कर अनुभव किया जा सकता है कि वे

डॉ. भीमराव अंबेडकर ने 4 नवंबर, 1948 के दिन संविधान सभा में संविधान का मूल मसौदा और सुझावों को प्रस्तुत किया, हालाँकि उस पर महीनों से बहस छिड़ी हुई थी, क्योंकि प्रतिक्रिया जानने के लिए उस मसौदे को सार्वजनिक कर दिया गया था। उस दिन तो मसौदा समिति के अध्यक्ष डॉ. भीमराव अंबेडकर ने संविधान सभा में उसे विधिवत् चर्चा के लिए प्रस्तुत किया। उससे पहले स्वाभाविक ही था कि मसौदा की खास-खास बातों को वे समझाते। ऐसा करते हुए, उन्होंने जो भाषण दिया, वह बेजोड़ था

मानो ठगे गए का भाव प्रकट कर रहे हैं। संविधान सभा की उस समय के हर दिन की कार्यवाही इन बातों की गवाही देती है।

आठ महीनों में देश भर में मसौदे पर जो विचार-मंथन चल रहा था, उसमें संविधान के मसौदे की आलोचना का मुख्य स्वर था कि मसौदे में कोई मौलिकता नहीं है। स्वाभाविक है कि डॉ. अंबेडकर मसौदे में सरकार की कल्पना और संविधान के स्वरूप को स्पष्ट करने के बाद आलोचनाओं का जवाब देते। जो उन्होंने दिया। उन्होंने कहा कि 'यह कहा गया है कि संविधान के इस मसौदे में कोई भी नई बात नहीं है। इसमें से करीब आधा तो भारत सरकार के 1935 के ऐक्ट से ही लेकर ज्यों-का-त्यों रख दिया गया है और शेष विभिन्न देशों के संविधान से लिया गया है। इसमें अपनी मौलिकता बहुत कम है।'[3]

उनका यह भी कहना था कि "इस अभियोग के संबंध में कि इस मसौदे में भारत सरकार के 1935 के ऐक्ट का ही एक वृहत् अंश रख दिया गया है, मुझे क्षमाप्रार्थी होने की कोई आवश्यकता नहीं। कहीं से भी कोई चीज ली जाए, इसमें लज्जित होने का कोई कारण नहीं है। यह कोई साहित्यिक चोरी नहीं है।"[4] ... "इस मसौदे के विरुद्ध दूसरी आलोचना यह की गई है कि इसमें कहीं भी भारत की प्राचीन राजनीति को कोई स्थान नहीं दिया गया है। यह कहा जाता है कि इस नवीन संविधान का निर्माण प्राचीन हिंदू राज्य परंपरा के आधार पर होना चाहिए था और इसमें पाश्चात्य राजनीतिक सिद्धांतों का समावेश न कर, ग्राम और जिला पंचायतों की भित्ति पर इसे खड़ा करना चाहिए था। कुछ ऐसे लोग भी हैं, जिनकी विचारधारा बहुत आगे अति की ओर चली गई है। वे कोई भी केंद्रीय या प्रांतीय शासन नहीं चाहते। वे चाहते हैं कि भारत में केवल ग्राम सरकारें हों। बुद्धिसंपन्न भारतीयों का ग्राम-समाज के प्रति जो प्रेम है, वह यदि कारुणिक नहीं तो असीम तो अवश्य ही है। (हँसी) इस मनोवृत्ति का बहुत कुछ कारण तो यह है कि मेटकाफ ने जो ग्राम-समाज का स्तुतिगान किया है, इससे वे प्रभावित हैं।'[5]

डॉ. अंबेडकर ने ग्राम पंचायतों के बारे में कहा कि "यह बात सच हो सकती है कि भयंकर उथल-पुथल के होते हुए भी यह जीवित रह गई। किंतु केवल जीवित रहने का क्या मूल्य है? प्रश्न तो यह है कि किस स्तर पर ये जीवित रहीं? निश्चय ही बड़े निम्न और स्वार्थपूर्ण स्तर पर ये जीवित रहीं। मेरा मत है कि ये ग्राम पंचायतें ही भारत की बरबादी का कारण रही हैं। इसलिए मुझे आश्चर्य होता है कि जो लोग प्रांतीयता की, सांप्रदायिकता की निंदा करते हैं, वही ग्रामों की इतनी प्रशंसा कर रहे हैं। हमारे ग्राम हैं क्या? ये कूपमंडूकता के परनाले हैं। अज्ञान, संकीर्णता एवं सांप्रदायिकता की काली कोठरियाँ हैं। मुझे तो प्रसन्नता है कि संविधान के मसौदे में ग्राम को अलग फेंक दिया गया है और व्यक्ति को राष्ट्र का अंग माना गया है।"[6]

उनके भाषण का समापन अंश है- "कोई भी संविधान सर्वथा पूर्ण नहीं हो सकता, लेकिन यह मसौदा इस देश के कार्यारंभ के लिए काफी अच्छा है। यह लचीला है और इतना सबल है कि युद्ध और शांति दोनों ही समयों में देश को एक सूत्र में बाँधे रख सकता है। मैं यह कहूँगा कि यदि नवीन संविधान के अंतर्गत कोई गड़बड़ी पैदा होती है तो इसका कारण यह नहीं होगा कि हमारा संविधान खराब था, बल्कि यह कहना चाहिए कि सत्तारूढ़ व्यक्ति ही अधम था, नीच था। अध्यक्ष महोदय, इन शब्दों के साथ मैं प्रस्ताव करता हूँ कि इस पर विचार किया जाए।"[7]

प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना ने सलाह दी कि संविधान सभा को ग्राम पंचायत के बारे में सावधानी से विचार करना चाहिए। जरूरी है कि उचित संशोधन कर मसौदे में इसे स्थान दें।

संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट में जिसे सामान्य चर्चा लिखा गया है, वह सही मायने में असामान्य थी। सदस्यों में उत्तेजना इतनी थी कि नेतृत्व पर भी आँच आई। बड़े-बड़े झुलसते नजर आए। आज भी अगर कोई उन भाषणों को पढ़े, जो एक सप्ताह के दौरान हुए, तो उसे अनुभव होगा कि संविधान सभा के सदस्य अपनी घनीभूत पीड़ा को शब्दों का आँसू देकर व्यक्त कर रहे हैं। राज्य-व्यवस्था में गाँव और ग्राम पंचायत का वह सवाल था, जो आजादी के सपने में पलता रहा। बहस की शुरुआत एच.वी. कामथ ने की। उन्होंने कहा, "मैंने बड़े आनंद से उनका भाषण सुना, पर लाभ कुछ भी नहीं हुआ। मैं उनसे यह आशा करता था कि वे हमें यह बताते कि हमारे राजनैतिक अतीत से भारतीय जनता की अपूर्व राजनैतिक तथा आध्यात्मिक प्रतिभा से क्या लिया गया है। इस बारे में संपूर्ण भाषण में एक भी शब्द नहीं था। हो सकता है कि यह सब आजकल की रीति हो। अभी उस दिन संयुक्त राष्ट्र की आम सभा में बोलते हुए विजयलक्ष्मी पंडित ने बड़े गौरव से यह विचार प्रकट किया कि हमने भारतवर्ष में स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व का नारा फ्रांस से लिया, इंग्लैंड से यह लिया और अमेरिका से वह लिया; पर उन्होंने यह नहीं कहा कि हमने अपने अतीत से अपने राजनैतिक तथा ऐतिहासिक अतीत से अपने दीर्घकालीन रंग-बिरंगे इतिहास से, जिसका हमें गौरव है, क्या लिया।"[8] कह सकते हैं कि उन्होंने विजयलक्ष्मी पंडित के हवाले से नेहरू परिवार के दृष्टिकोण में मूल दोष का प्रश्न उठाया।

एच.वी. कामथ को डॉ. अंबेडकर का भाषण मिल नहीं पाया था। उन्होंने अखबारों में जो पढ़ा, उसे ही अपने वक्तव्य का आधार

संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट में जिसे सामान्य चर्चा लिखा गया है, वह सही मायने में असामान्य थी। सदस्यों में उत्तेजना इतनी थी कि नेतृत्व पर भी आँच आई। बड़े-बड़े झुलसते नजर आए। आज भी अगर कोई उन भाषणों को पढ़े, जो एक सप्ताह के दौरान हुए, तो उसे अनुभव होगा कि संविधान सभा के सदस्य अपनी घनीभूत पीड़ा को शब्दों का आँसू देकर व्यक्त कर रहे हैं। राज्य-व्यवस्था में गाँव और ग्राम पंचायत का वह सवाल था, जो आजादी के सपने में पलता रहा

बनाया। गाँव के बारे में डॉ. अंबेडकर के कथन का हवाला देकर उन्होंने कहा कि "ग्रामीण जनता के लिए हमारे करुण विश्वास का श्रेय डॉ. अंबेडकर ने किसी मेटकाफ नाम के व्यक्ति को दिया है। मैं यह कहूँगा कि यह श्रेय मेटकाफ को नहीं है, वरन् उससे कहीं महान् व्यक्ति को है, जिसने अभी हमें हाल ही में स्वतंत्र कराया है। गाँवों के लिए जो प्रेम हमारे हृदय में लहरा रहा है, वह तो हमारे पथ-प्रदर्शक तथा राष्ट्रपिता के कारण पैदा हुआ था। उन्हीं के कारण ग्राम जनतंत्र में तथा अपनी देहाती जनता में हमारा विश्वास बढ़ा और हमने अपने संपूर्ण हृदय से उसका पोषण किया। यह महात्मा गांधी के कारण है कि हम अपने देहाती भाइयों को प्यार करने लगे हैं। डॉ. अंबेडकर के प्रति पूर्ण आदर भाव रखते हुए, मैं इस संबंध में उनसे मतभेद रखता हूँ। कल का उनका ढंग एक प्रतिभाशाली नगर निवासी के समान था और यदि ग्राम निवासियों की ओर हमारा यही रुख रहा तो मैं केवल यही कह सकता हूँ कि "ईश्वर ही हमारी रक्षा करें।"[9]

उनका यह भी कहना था कि "हमारे गाँवों के प्रति डॉ. अंबेडकर के इस प्रकार के, यदि घृणापूर्ण नहीं तो अनिच्छापूर्ण भाषण को सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ। कदाचित् मसौदा समिति बनाने में ही गलती हुई। उसकी समिति में केवल एक के.एम. मुंशी के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा सदस्य नहीं था, जिसने अपने देश की स्वतंत्रता के संघर्ष में प्रमुख रूप से भाग लिया हो। उनमें से कोई भी हमारे संघर्ष में प्रेरणा प्रदान करने वाले उत्साह को समझने की क्षमता नहीं रखता।"[10]

उन्होंने कहा कि "बरसों की सुदीर्घ प्रसव वेदना सहने के पश्चात् हुए हमारे राष्ट्र के पुनर्जन्म की बात ये हृदय से (मैं दिमाग, अर्थात् बुद्धि की बात नहीं करता, किसी भी बात को दिमाग से समझना सरल होता है) नहीं समझ पाएँगे। इसीलिए हमारे अत्यंत गरीब, पिछड़ी जाति, साधारण स्तर वाले उपेक्षित लोगों के लिए डॉ. अंबेडकर ने ऐसा कठोर स्वर व्यक्त किया। हमारे इतिहासविद् और शोधकर्ता विद्वानों ने भी इस संदर्भ में अनमोल जानकारी दी है। मैं नहीं जानता कि उन्होंने डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल की पुस्तक 'हिंदू पॉलिटी' (हिंदू राजतंत्र) पढ़ी है या नहीं। अन्य एक महापुरुष की पुस्तक- श्री अरविंद लिखित 'द स्पिरिट एंड फॉर्म ऑफ इंडियन पॉलिटी (भारतीय राजनीति तंत्र की भावना और स्वरूप) पुस्तक भी उन्होंने पढ़ी है या नहीं, इसका भी मुझे पता नहीं है। इन पुस्तकों में हमें जानकारी मिलती है कि प्राचीन भारत में हमारा राज्य-तंत्र किस प्रकार स्वायत्त एवं आत्मनिर्भर ग्राम समूहों के आधार पर रचा गया था और उनके कारण ही कैसे हमारी संस्कृति युगों से बनी हुई है। हम मूलभूत शक्ति की ओर से दृष्टि हटा लेंगे, तो और कुछ दिखेगा ही नहीं।'[11]

उन्होंने कहा कि "अपने परम विकास की हालत में और भारतीय सभ्यता के स्वर्ण युग में ऐसी प्रशंसनीय राज्य-व्यवस्था की झलक हमें मिलती है, जिसमें कार्य चलाने की अपरिमित योग्यता थी और जिसमें ग्राम तथा नागरिक स्वशासन के साथ-साथ शासन की स्थिरता तथा सुव्यवस्था भी पूर्ण मात्रा में वर्तमान थी। राज्य अपने प्रशासी, न्यायिक, वैत्तिक तथा रक्षात्मक कर्तव्यों की पूर्ति इस कौशल से करता था कि उसके किसी काम से भी उसकी जनता तथा उसी विभाग में कार्य करने की सुविधाओं का न तो पूर्णतया अपहरण होता था और न आंशिक अपहरण। राजधानी तथा देश के अन्य न्यायालय न्याय के सर्वोच्च प्राधिकारी थे, जो समस्त राज्य में न्याय-प्रशासन में सामंजस्य स्थापित करते थे।'[12]

उन्होंने संविधान संबंधी मुख्य प्रश्न पूछा और उसका इस प्रकार उत्तर दिया- "राज्य किसलिए है? राज्य की उपयोगिता का अनुमान इस बात से किया जाता है कि साधारण मनुष्यों के हितों पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है। तत्त्वतः जिस विवाद का निर्णय हमें करना है, वह यह है कि व्यक्ति राज्य के लिए है अथवा राज्य व्यक्ति के लिए। अपने जीवनकाल में महात्मा गांधी ने यह प्रयत्न किया कि इन दोनों के बीच का पथ निकाला जाए और द्वंद्व को सुलझाया जाए और इस प्रयत्न के कारण वे पंचायत राज के सिद्धांत पर पहुँचे।"[13] इस प्रसंग को एच.वी. कामथ एक के बाद दूसरे उदाहरणों से समझाया। उन सिद्धांतों की चर्चा छेड़ी, जिनका मसौदे में उल्लेख तक नहीं था। जब वे यह कह रहे थे कि "पाश्चात्य चमक-दमक का हमारे मन पर बड़ा प्रभाव है। सच तो यह है कि चमक-दमक का प्रभाव हमारी नस-नस में घुस गया है"[14] तो वे चेतावनी दे रहे थे कि यह समय भारत की अजेय चेतना से जुड़ने और उसे आत्मसात् करने का है, किसी की नकल करने का नहीं। डॉ. अंबेडकर के भाषण पर उनकी टिप्पणी थी कि "डॉ. अंबेडकर के भाषण में मेघों का घोर नाद था और थी उसमें चपला की चमक। किंतु उसमें न थी शक्ति प्रदायिनी, स्फूर्ति संचारिणी, जीवनदायिनी, अमर ज्योति।"[15]

जब टी.टी. कृष्णमाचारी बोलने के लिए खड़े हुए तो पूरी संविधान सभा में उत्सुकता के भाव का संचार हुआ। वे मसौदा समिति के सदस्य भी थे। उनके बोलने का सीधा अर्थ था- सत्य से साक्षात्कार। इसीलिए मसौदा और संविधान की जब भी और जो भी आलोचना करता है तो वह टी.टी. कृष्णमाचारी के कथन का हवाला अवश्य देता है। अपने भाषण के प्रारंभ में ही उन्होंने कहा कि "मेरा विश्वास है कि संविधान के इस मसौदे पर जितना ध्यान दिया जाना चाहिए था, उतना मसौदा समिति ने नहीं दिया है।"[16] इसे उन्होंने तथ्यों का सहारा इन शब्दों में दिया- "संविधान सभा को यह पता है कि मसौदा समिति के सात सदस्य थे।

जब टी.टी. कृष्णमाचारी बोलने के लिए खड़े हुए तो पूरी संविधान सभा में उत्सुकता के भाव का संचार हुआ। वे मसौदा समिति के सदस्य भी थे। उनके बोलने का सीधा अर्थ था- सत्य से साक्षात्कार। इसीलिए मसौदा और संविधान की जब भी और जो भी आलोचना करता है तो वह टी.टी. कृष्णमाचारी के कथन का हवाला अवश्य देता है। अपने भाषण के प्रारंभ में ही उन्होंने कहा कि मेरा विश्वास है कि संविधान के इस मसौदे पर जितना ध्यान दिया जाना चाहिए था, उतना मसौदा समिति ने नहीं दिया है

उनमें से एक ने त्याग-पत्र दे दिया। उनके स्थान पर अन्य सदस्य रखा गया था। एक सदस्य का देहांत हो गया, उनकी जगह कोई नहीं रखा गया। एक अमेरिका में थे। उनकी जगह खाली रही। एक सदस्य राज-काज में लगे हुए थे। एक या दो सदस्य दिल्ली से दूर थे। संभवत: अस्वस्थ होने के कारण मसौदा समिति की बैठकों में उपस्थित नहीं हो सके।"[17] फिर उन्होंने जो कहा, वह एक यथार्थ था। वह यह कि "संविधान का मसौदा बनाने का काम डॉ. अंबेडकर पर आ पड़ा।"[18]

उन्होंने डॉ. अंबेडकर की सराहना कर इसे रेखांकित किया कि "ऐसे विषय के लिए जितने ध्यान की आवश्यकता थी, उतना ध्यान पूरी समिति इस पर नहीं दे सकी। अप्रैल में किसी समय संविधान सभा के कार्यालय ने मुझे तथा अन्य सदस्यों को यह सूचित किया कि आपने यह निश्चित किया था कि संघाधिकार समिति, संघ संविधान समिति तथा प्रांतीय संविधान समिति के सदस्यगण और कुछ अन्य निर्वाचित सदस्य सम्मिलित होंगे और संविधान सभा के सदस्यों द्वारा तथा सामान्य जनता द्वारा सुझाए गए संशोधनों का पर्यालोचन करेंगे। अप्रैल के अंत में दो दिन तक बैठक हुई और मेरा विश्वास है कि कुछ मात्रा में अच्छा काम हुआ और मैं देखता हूँ कि डॉ. अंबेडकर ने समिति की कुछ सिफारिशों को स्वीकार किया, इसके पश्चात् इस समिति के संबंध में कुछ भी नहीं सुना गया।"[19] उन्होंने अपना निष्कर्ष फिर दोहराया, "हमारे संविधान के मसौदे पर उतना दत्तचित्त होकर ध्यान नहीं दिया गया, जितने की आवश्यकता थी, और यदि गोपालस्वामी आयंगर या के.एम. मुंशी या उन जैसे कुछ अन्य व्यक्ति समस्त बैठकों में उपस्थित होते तो ध्यान उस पर दिया जा सकता था।"[20]

उड़ीसा से थे विश्वनाथ दास। उनकी शिकायत संविधान सभा के अध्यक्ष से भी थी। उन्होंने कहा कि मसौदा समिति ने सुझाव रखने के लिए सदस्यों को बहुत कम समय दिया। "मैं तो यहाँ तक विश्वास करता हूँ कि मसौदा समिति के सदस्यों के बहुमत ने भी अपना संयुक्त विचार प्रकट नहीं किया है। अत: मसौदा समिति का निर्णय थोड़े से माननीय सदस्यों का निर्णय रह जाता है। वे अपने कार्य में बड़े निपुण हो सकते हैं, परंतु हम इस विषय पर अधिक विचार-विमर्श चाहते थे। मैं दावा करता हूँ कि जो कुछ हुआ, वह पर्याप्त न था। एक वर्ष व्यतीत हो गया और कुछ ज्यादा काम नहीं हुआ। इस काल में बहुत काम हो सकता था। अगर यह हुआ होता तो संविधान सभा के सदस्यों के विचारों को मसौदा समिति के समक्ष रखने की कोई भी शिकायत आज नहीं हो सकती थी।"[21] उन्होंने इस कथन से एक नया आयाम जोड़ा, "यदि 1948 के मई माह में संविधान सभा का अधिवेशन होता और अगर एक सप्ताह की बैठक होती तथा विचार-विमर्श होता, तो इस विषय को एक समिति के सुपुर्द कर दिया जाता, जो सिलेक्ट कमेटी का स्थान ग्रहण कर लेती और भिन्न-भिन्न संस्थाओं के विचारों पर सोचकर अब तक वह समिति विभिन्न धाराओं का पूर्ण परीक्षण कर लेती। मैं महसूस करता हूँ कि मसौदा समिति के सदस्यों ने उचित रूप से परीक्षण नहीं किया है, न इस सभा ने संपूर्ण प्रश्न पर विचार-विमर्श करने के लिए आवश्यक समय दिया है और न सदस्यों को उचित तथा पूर्ण रूप से अपने विचार सिलेक्ट कमेटी या इस सभा के समक्ष रखने का ही अवसर दिया है। मैं फिर यह कहूँगा कि एक ही स्थान पर 9 या 10 अप्रैल, 1948 को चार समितियों- मसौदा समिति, संघाधिकार समिति, संघ शक्ति समिति तथा प्रांतीय संविधान समिति की संयुक्त बैठक हुई। मैं यह स्पष्ट कहूँगा कि जो निर्णय किए गए हैं, उनको मसौदा समिति ने स्वीकार नहीं किया। मैं यह पूछ सकता हूँ कि यह मसौदा समिति है या सिलेक्ट कमेटी है या सर्वशक्तिसंपन्न संविधान सभा है? इन परिस्थितियों में इस कार्य से मैं किंचित् मात्र भी प्रसन्न नहीं हूँ।"[22]

डॉ. अंबेडकर के भाषण का सूक्ष्म परीक्षण करने के लिए मैं और अधिक समय लेता। मैं उनके ज्ञान के सामने तो सिर झुकाता हूँ। मैं उनकी भाषण स्पष्टता की तारीफ करता हूँ। मैं उनके साहस का आदर करता हूँ, परंतु मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि इतना बड़ा विद्वान्, भारत का इतना यशस्वी पुत्र भारत के बारे में इतना अल्प ज्ञान रखता है। संविधान के मसौदे की वह आत्मा है और उसने ही मसौदे में ऐसी बातें दी हैं, जो अभारतीय हैं

उड़ीसा से ही लोकनाथ मिश्र थे। उन्होंने अपने भाषण की शुरुआत में ही टिप्पणी की कि संविधान का उद्देश्य संकल्प हमारे परिश्रम का सुंदर फल था, लेकिन संविधान का मसौदा उसके विपरीत है। उनका कहना था कि "डॉ. अंबेडकर ने चाहे जो कुछ कहा हो और हमारे गाँवों से घृणा करने वाले अपने जैसे व्यक्ति को अधिकार देने के लिए उन्होंने चाहे जो कुछ सोचा हो, मैं यह कहूँगा कि यह संविधान व्यक्ति को, कुटुंब को, ग्राम को, जिले को और प्रांत को कुछ भी अधिकार नहीं देता है। डॉ. अंबेडकर ने तो प्रत्येक अधिकार केंद्र को दे दिया है।"[23] अंत में उन्होंने कहा, "डॉ. अंबेडकर के भाषण का सूक्ष्म परीक्षण करने के लिए मैं और अधिक समय लेता। मैं उनके ज्ञान के सामने तो सिर झुकाता हूँ। मैं उनकी भाषण स्पष्टता की तारीफ करता हूँ। मैं उनके साहस का आदर करता हूँ, परंतु मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि इतना बड़ा विद्वान्, भारत का इतना यशस्वी पुत्र भारत के बारे में इतना अल्प ज्ञान रखता है। संविधान के मसौदे की वह आत्मा है और उसने ही मसौदे में ऐसी बातें दी हैं, जो अभारतीय हैं। अभारतीय से मेरा आशय यह है कि चाहे वे इस बात का कितना ही खंडन करें, पर है यह वास्तव में पश्चिम का दासतापूर्ण अनुकरण। इतना ही नहीं है, वरन् इससे भी अधिक पश्चिम के समक्ष दासवत अर्पण है।"[24]

रामनारायण सिंह की पीड़ा एक राजनीतिक कार्यकर्ता की भावना को व्यक्त कर रही थी। उन्होंने कहा कि "राजनीतिक कार्यकर्ताओं के रूप में हम स्वराज शब्द का सदैव प्रयोग करते थे और हम समझते थे कि अंग्रेजों के हाथ से सत्ता सीधे गाँववालों के हाथ में चली जाएगी, परंतु मेरे विचार से यह प्रस्तावित संविधान उन लोगों को यह

अधिकार नहीं देगा।"[25]

पी.एस. देशमुख ने मसौदे की परिभाषा इस तरह की। "अंग्रेज जो शासन व्यवस्था इस देश में छोड़ गए हैं, उसमें यह ठीक-ठीक बैठ जाए, इसी अभिप्राय से इसकी रचना हुई है। यही कारण है कि इसमें कोई नई बात नहीं है, कोई असर डालने वाली और उत्साहजनक बात नहीं है।" उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि "मैं इस विचारधारा से सहमत नहीं हूँ कि हमारा अतीत या हमारी प्राचीन सभ्यता इस योग्य नहीं है कि हम भारतीय राष्ट्र के भावी निर्माण के लिए उसका उपयोग करें।"[26] लेकिन उन्होंने संविधान के मसौदे में जो कमी रह गई थी, उसे दूर करने के लिए सुझाव दिया। यह उम्मीद की कि इसे माना जाएगा। उन्होंने कहा कि "डॉ. अंबेडकर ऐसा संविधान तो नहीं बना पाए, जो भारतीय जनता की संस्कृति के अधिक निकट हो, किंतु आशा है कि ऐसे संशोधनों के संबंध में वे अनुकूल रुख रखेंगे।"[27]

अगले दिन भी चर्चा जारी रही। अरुणचंद्र गुहा ने जो कहा, वह आरोप है- "मेरी यह धारणा है कि मसौदा समिति अपने निर्देश पदों से परे चली गई है। मेरे विचार से सारे संविधान में ऐसी बातें हैं, जो उन मुख्य सिद्धांतों के परे हैं, जिन्हें कि संविधान सभा ने निश्चित किया था। संविधान के सारे मसौदे में कहीं भी कांग्रेस के दृष्टिकोण का, गांधीवादी सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोण का पता नहीं है। विद्वान् डॉ. अंबेडकर ने अपने लंबे और विद्वत्तापूर्ण भाषण में कहीं भी गांधी जी या कांग्रेस का उल्लेख नहीं किया है, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि मेरे विचार से सारे संविधान में कांग्रेस के आदर्श की तथा कांग्रेस की विचारधारा की उपेक्षा है। संविधान हम केवल इस उद्देश्य से नहीं बना रहे हैं कि एक राजनीतिक ढाँचा तैयार किया जाए या केवल शासन प्रबंध की व्यवस्था की जाए, बल्कि इसलिए कि वह राष्ट्र के भविष्य के लिए सामाजिक तथा आर्थिक आधार प्रमाणित हो।"[28] इस भूमिका के बाद कहा कि 'डॉ. अंबेडकर ने गाँवों के संबंध में कुछ बातें कही हैं। हम वर्षों से कांग्रेस में रहे हैं। हमने ग्राम पंचायतों को भविष्य के शासन प्रबंध का आधार मानने की सीख पाई है। गांधी जी तथा कांग्रेस का दृष्टिकोण यह रहा है कि भावी भारत का संविधान पिरामिड के आकार का हो और वह ग्राम पंचायतों पर आधारित हो। डॉ. अंबेडकर के कथनानुसार भारत के विनाश के कारण गाँव ही रहे हैं और वे अज्ञान के अंधकार में पड़े हैं। यदि यह सत्य है तो इसके उत्तरदायी हम नगर निवासी ही हैं, जो विदेशी नौकरशाही और विदेशी सरकार के प्रकाश में चमकते रहे हैं। हमारे गाँवों को भूखा मारा गया, विदेशी सरकार ने जान-बूझकर हमारे गाँवों का गला घोंटा और इस अपावन कार्य में नगर निवासी उसके हाथ की कठपुतली बने रहे। मेरे विचार से स्वतंत्र भावी भारत का प्रथम कार्य गाँवों का पुनरुत्थान ही होना चाहिए।"[29]

टी. प्रकाशम ने भी स्पष्ट शब्दों में कहा कि "संविधान का मसौदा गलत दिशा में चला गया है। उसमें संशोधन करने की बहुत आवश्यकता है।"[30] डॉ. अंबेडकर के कथन का उत्तर और अपना सुझाव देते हुए उन्होंने ये शब्द कहे, "निस्संदेह जब इस देश में बाहर से आए हुए कई शासकों के अत्याचार से ग्राम पंचायतें निष्प्राण हो गई थीं, तो हम इस गति को प्राप्त हो गए थे, किंतु उनका अनेक प्रकार से दमन होते हुए भी वे जीवित रहीं। मेटकाफ दुनिया को और हमें, जो इसकी उपेक्षा कर रहे हैं, यही बताना चाहते थे। इसलिए इस आधार पर ग्राम पंचायतों की निंदा नहीं की जा सकती। आज मैं एक क्षण के लिए भी इसका समर्थन नहीं कर सकता कि ग्राम पंचायतों का वह रूप हो, जिसका वर्णन मेटकाफ ने अपने समय की स्थिति के अनुसार किया है। ग्राम पंचायतें समयोचित होनी चाहिए और उनमें ग्रामवासियों को वास्तविक शक्ति प्रदान करने, उन पर शासन करने, धन प्राप्त करने और उसे व्यय करने की क्षमता होनी चाहिए। मैं यह जानना चाहता हूँ कि संविधान के इस मसौदे के अंतर्गत यह कैसी सरकार बनाई जा रही है! यह किसके लाभ के लिए है?"[31]

अंग्रेज जो शासन व्यवस्था इस देश में छोड़ गए हैं, उसमें यह ठीक-ठीक बैठ जाए, इसी अभिप्राय से इसकी रचना हुई है। यही कारण है कि इसमें कोई नई बात नहीं है, कोई असर डालने वाली और उत्साहजनक बात नहीं है। उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि मैं इस विचारधारा से सहमत नहीं हूँ कि हमारा अतीत या हमारी प्राचीन सभ्यता इस योग्य नहीं है कि हम भारतीय राष्ट्र के भावी निर्माण के लिए उसका उपयोग करें

के. संथानम ने कहा कि "मुझे खेद है कि डॉ. अंबेडकर ग्राम पंचायतों के संबंध में बोलते समय बहक गए और उनका यह कथन उचित नहीं है कि वे आधुनिक संविधान के लिए उचित पृष्ठभूमि नहीं प्रदान करते।"[32] आर.के. सिधवा का कहना था कि "इस देश में लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए यह संविधान बनाया गया है। लेकिन डॉ. अंबेडकर ने पंचायतों और गाँवों की उपेक्षा करके लोकतंत्र को त्रिशंकु बना दिया है। इसलिए यह संविधान विचार करने के योग्य ही नहीं है।"[33] लेकिन बालकृष्ण शर्मा का मत था कि "संविधान में ग्राम पंचायतों की उन्नति के लिए कोई बाधा नहीं है।"[34] पं. ठाकुरदास भार्गव का कहना था कि "यह संविधान भारत की आत्मा का प्रतीक नहीं है। (संविधान की प्रति को दिखाते हुए उन्होंने कहा) इस कैमरे में गाँवों का स्वायत्त शासन प्रतिबिंबित नहीं है और यह भारत के उस चित्र का सच्चा चित्रण नहीं कर सकता, जिसे कई लोग चाहते हैं। मसौदा समिति के सदस्यों की बुद्धि गांधी जी की बुद्धि और उन लोगों की बुद्धि के समान नहीं थी, जिनका यह विचार है कि भारत के असंख्य लोग इसमें प्रतिबिंबित हों।"[35]

शिब्बन लाल सक्सेना उत्तर प्रदेश के जाने-माने नेता थे। उन्होंने कहा कि "डॉ. अंबेडकर ने ग्राम पंचायत संबंधी प्रथा की निंदा की है, जो भारत में प्रचलित थी। जिसे हमारे बुजुर्गों ने अपने संविधान के लिए एक आदर्श आधार माना था।"[36] उन्होंने यह भी कहा कि "मैं अभी-अभी महात्मा गांधी का वह भाषण पढ़ रहा था, जिसे उन्होंने सन् 1931 में लंदन की गोलमेज सभा में दिया

था। तब उन्होंने कहा था कि निर्वाचन के लिए गाँव को ही इकाई माना जाए। वस्तुत: उन्होंने ग्राम पंचायतों को ही आधारभूत महत्त्व दिया था। उन्होंने कहा था कि भारत की वास्तविक आत्मा ग्रामों में ही वास करती है।"[37] उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर डॉ. अंबेडकर के कथन को चुनौती दी। कहा कि "मैंने ग्रामों में काम किया है और ग्राम पंचायतों की कार्यशैली का मुझे गत पच्चीस वर्षों से अनुभव है और इस नाते मैं कह सकता हूँ कि उन्होंने इस संबंध में जो चित्र खींचा है, वह बिल्कुल ही काल्पनिक है।"[38]

चर्चा के दौरान एच.वी. कामथ ने देखा कि डॉ. अंबेडकर संविधान सभा में नहीं हैं। उन्होंने औचित्य का प्रश्न खड़ा किया। 8 नवंबर, 1948 की चर्चा में बेगम एजाज रसूल ने डॉ. अंबेडकर से सहमति जताई और कहा कि मसौदे में नागरिक को महत्त्व दिया गया है, यह उचित ही है। वी.आई. मुनिस्वामी पिल्लै ने कहा कि "किसी भी संविधान सभा का यह सर्वप्रथम कर्तव्य है कि वह ऐसा प्रावधान बनाए, जिससे ग्रामों को शासन व्यवस्था में समुचित स्थान प्राप्त हो।"[39] गोकुलभाई भट्ट के भाषण से उनकी आहत भावना प्रकट हुई। उन्होंने कहा कि "इस संविधान में ग्राम पंचायती तंत्र होना चाहिए। उसकी बुनियाद इसमें नहीं है। तो मैं कहता हूँ कि वह भारत का संविधान कभी हो ही नहीं सकता है। जिस ग्राम पंचायत की प्रथा ने हमको उठाया है और जिस ग्राम पंचायत की प्रथा ने हमको आज तक जिंदा रखा है, उस चीज को हम भूल जाते हैं।"[40] इस पर उनको बड़ा अफसोस था कि इस भूल को क्षमायाचना के साथ स्वीकार क्यों नहीं किया गया, इसलिए उन्होंने व्यंग्य में यह टिप्पणी की कि "बड़ी हिम्मत के साथ यह दावा किया जा रहा है कि हमने जान-बूझकर उस चीज (गाँव) को ठुकरा दिया है।"[41] इस पर वे बोले, "मैं अपना विरोध दर्ज कराता हूँ।"[42]

चर्चा के चौथे दिन पं. जवाहरलाल नेहरू ने हस्तक्षेप किया। वे जब बोलने के लिए खड़े हुए तो सभा में स्वाभाविक रूप से हर्षध्वनि हुई। लेकिन यह प्रश्न भी सदस्यों के मन में रहा होगा कि वे क्या कहते हैं? अपने लंबे भाषण में जवाहरलाल नेहरू ने संविधान की परिभाषा समझाई। उन्होंने शुरुआत प्रश्न से की। "आखिर संविधान क्या है?"[43] इसका उत्तर दिया, "यह एक प्रकार की विधि-पुस्तिका है, जिसके अनुसार शासन व्यवस्था संचालित की जाती है और जिसके आधार पर देश का जीवन क्रम चलता है।"[44] इसके बाद वे सदस्यों की चिंता पर बोले, लेकिन उनकी उलझन भी स्पष्ट थी। जो उत्तेजना संविधान सभा में थी, उसकी वे आलोचना नहीं कर सकते थे। लेकिन उसे उतना महत्त्व भी वे देना नहीं चाहते थे, जितना सदस्यों की समझ में महत्त्व था। उनके शब्द हैं- "मेरा मतलब यह नहीं है कि जिन बातों को लेकर यहाँ उत्तेजना पैदा हुई है, वह महत्त्वशून्य है।"[45] उन्होंने सदस्यों को उद्देश्य संकल्प की याद दिलाई। उसके एक अंश को पढ़कर सुनाया। फिर कहा कि "मैं ऐसा नहीं समझता कि यह प्रश्न कुछ ऐसा महत्त्वपूर्ण है कि इसको आज अभी तय कर लेना हमारे लिए आवश्यक है।...इसको लेकर यहाँ बहुत उत्तेजना पैदा हो गई है।...इस पर उत्तेजना की अवस्था में, जल्दबाजी में हम विचार न करें, इस पर तो उपयुक्त समय आने पर ही विचार किया जा सकता है।"[46] जवाहरलाल नेहरू का यह कथन स्पष्ट करता है कि संविधान के मसौदे से वे परिचित थे। उनकी योजना में ही गाँव और पंचायत को दरकिनार कर दिया गया था, लेकिन उन्हें इसका अनुमान नहीं था कि संविधान सभा इस पर उबल पड़ेगी। यही वह उलझन थी, जो उनके भाषण में प्रकट हुई और वह संविधान सभा के दस्तावेज का अंग भी बन गई, जिसे आज भी पढ़ा जा सकता है।

अलादि कृष्णास्वामी ने डॉ. अंबेडकर से दो बातों पर अपनी असहमति जताई। उनकी असहमति का अधिक महत्त्व इसलिए भी था, क्योंकि वे मसौदा समिति के सदस्य भी थे। पहला गाँव, समाज और दूसरा यह कि "भारतीय भूमि पर लोकतंत्र केवल एक बाहरी आवरण है।"[47] उन्होंने कहा कि "भारतीय इतिहास के आदि काल से ही यहाँ की विभिन्न संस्थाओं में लोकतंत्रीय सिद्धांतों का समावेश पाया जाता है। लोगों ने इन सिद्धांतों को यहाँ तभी से अपना रखा है। लोकतंत्र का आधुनिक स्वरूप यूरोपीय इतिहास में अपेक्षाकृत नया है। अभी हाल का है।"[48] उन्होंने संविधान के मसौदे पर हुई चर्चा को पाँच प्रकारों में बाँटा और कहा कि मसौदे की पाँच तरह की आलोचना हुई है- एक कि यह विदेशों की नकल है। दो, राज्यों को दुर्बल बनाने का प्रावधान है। तीन, समवर्ती विषयों की सूची बड़ी है। चार, ग्राम पंचायतों को महत्त्व नहीं दिया गया है। पाँच, मौलिक अधिकारों पर अनेक प्रतिबंध हैं।

सामान्य चर्चा का वह अंतिम दिन था। 9 नवंबर, 1948 की तारीख थी। प्रो. एन. जी. रंगा ने अपनी पीड़ा इन शब्दों में व्यक्त की। उन्होंने कहा, "डॉ. अंबेडकर ने ग्राम पंचायतों के बारे में जो कुछ कहा, उसे सुनकर मुझे बहुत दु:ख हुआ। उन्होंने हमारे देश की लोकतांत्रिक परंपरा की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। यदि वे पिछले एक हजार वर्ष से अधिक काल में दक्षिण भारत में ग्राम पंचायतों ने जो उन्नति की है, उससे परिचित होते तो वे ऐसी बातें न कहते। यदि उन्होंने भारत के इतिहास को उतनी ही सावधानी से पढ़ा होता, जितनी सावधानी से उन्होंने अन्य देशों के इतिहास पढ़े हैं, तो वे ऐसी बातें कदापि न कहते। मैं इस सभा के ध्यान में यह बात लाना चाहता हूँ कि इस संविधान में अधिक-से-अधिक राजनीतिक संस्थाओं को प्रवाहित किया जाए, ताकि हमारी ग्रामीण जनता लोकतांत्रिक संस्थाओं से अधिक-से-अधिक परिचय प्राप्त कर सके, जिससे वह लोकतंत्र के नवीन युग में प्रौढ़ मताधिकार द्वारा अपने उत्तरदायित्वों को पूरा कर सके। हमारे देश में इन ग्राम पंचायतों के अभाव में हमारे जन साधारण के लिए यह कैसे संभव होगा कि वे लोकतांत्रिक व्यवस्था में यथोचित भाग ले सकें?"[49]

एम. अनंतशयनम आयंगर का कहना था, "मैं इसे स्वीकार करता हूँ कि इस संविधान में हमारी प्राचीन संस्कृति तथा परंपरा का कहीं भी प्रतिबिंब नहीं है। यह सच है कि पश्चिम के प्राचीन संविधानों के अंशों को लेकर उनको बेमेल ढंग से इसमें स्थान दिया गया है और यहाँ तक कि वहाँ के कुछ नवीन संविधानों की उपेक्षा भी की गई है। और साथ ही, 1935 के भारत सरकार के अधिनियम की नकल की गई है। यह सच है कि इन सबके अंशों को लेकर उन्हें एक साथ रखा गया है। इसके लिए डॉ. अंबेडकर उत्तरदायी नहीं हैं। इस प्रकार के संविधान का उत्तरदायित्व हम ही लोगों पर है।"[50]

उन्होंने अपना मत बताया और कहा कि "यह संविधान स्वतंत्र ग्राम पंचायतों पर आधारित होना चाहिए।"[51] ... "हमें इसका ध्यान रखना चाहिए कि जिस सामाजिक व्यवस्था को हम स्थापित करने जा रहे हैं, उसकी इकाइयाँ ग्राम ही हों। ग्रामों में भी मैं चाहता हूँ कि परिवार को ही इकाई समझा जाए, यद्यपि संपूर्ण भारत के लिए हम जो कार्य करें, उनके लिए व्यक्ति को ही इकाई समझा जाए और वही मतदान दें। गाँवों का इस आधार पर पुनर्निर्माण होना चाहिए, अन्यथा वे केवल व्यक्तियों के समूह मात्र रह जाएँगे और उनका कुछ भी सार्वजनिक उद्देश्य नहीं रह जाएगा। इस दशा में वे यदा-कदा ही एकत्र होंगे और उन्हें अपनी यथोचित आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्था करने का अवसर प्राप्त नहीं होगा।"[52] उनके इस कथन में यथार्थ और भविष्य दृष्टि है। "अपनी वर्तमान परिस्थिति में क्या हमारे लिए यह संभव है कि हम तुरंत ही अपने संविधान को ग्राम पंचायतों पर आधारित करें? मैं इसे स्वीकार करता हूँ कि हमारा लक्ष्य यही होना चाहिए। परंतु ये ग्राम पंचायतें हैं कहाँ? हमें उन्हें स्थापित करना है। वर्तमान परिस्थिति में पश्चिमी संविधानों पर आधारित जो संविधान हमारे सामने रखा गया है, उससे अच्छा संविधान हम बना ही नहीं सकते। इसलिए मेरी यह राय है कि हमें अपने निदेशक सिद्धांतों के साथ एक खंड इस बात पर जोर देने के लिए जोड़ना चाहिए कि भविष्य में जो सरकारें अस्तित्व में आएँ, वे ग्राम पंचायतों को स्थापित करें और उन्हें राजनीतिक स्वायत्त शासन तथा आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान करें, ताकि वे अपने प्रश्नों को स्वयं अपने ढंग से हल कर सकें। भविष्य में एक समय ऐसा आएगा, जब हम इन स्वतंत्र पंचायतों के आधार पर एक संविधान बना सकेंगे।"[53]

महावीर त्यागी ने कहा कि "मुझे इस संविधान को देखकर बहुत निराशा हुई। मुझे इसमें गांधीवाद की एक भी झलक दिखाई नहीं देती।"[54] ..."जब हमने इस संविधान के सिद्धांतों का निश्चय किया तो हमने उस समय की परिस्थिति का जो तकाजा था, उसे ध्यान में रखा। हमने इसे भी ध्यान में रखा कि हमारे निश्चय की पाकिस्तान में क्या प्रतिक्रिया होगी।"[55] ...'अब हमारे बीच में केवल वे मुसलमान, सिख और अन्य लोग रह गए हैं, जो भारत को अखंड देखना चाहते हैं। इसलिए हमारा संविधान वर्तमान परिस्थिति के अनुरूप होना चाहिए।"[56] जिस प्रश्न पर चर्चा मुख्यत: चल रही थी, उसके बारे में उन्होंने इन शब्दों में अपनी भावना प्रकट की। "गाँवों के विरुद्ध डॉ. अंबेडकर ने जो कुछ कहा है, उसके विरुद्ध जब तक मैं अपनी आवाज नहीं उठाता हूँ, तब तक मैं अपने गाँवों के लोगों के सामने जाकर मुँह नहीं दिखा सकता। डॉ. अंबेडकर को यह पता नहीं है कि स्वतंत्रता संग्राम में गाँवों ने कितना बलिदान किया है। मेरा यह निवेदन है कि देश के शासन कार्य में गाँववालों का यथोचित भाग होना चाहिए।"[57] उनके इस कथन पर संविधान सभा में हर्षध्वनि हुई।

एल. कृष्णास्वामी भारती का कहना था कि "डॉ. अंबेडकर ने जिस विद्वत्ता और तेजस्विता से संविधान के मसौदे की व्याख्या की है, उसके लिए वे इस सभा के धन्यवाद के पात्र हैं। उन्हें इस मसौदे के प्रावधानों के लिए इसलिए धन्यवाद नहीं दिया जा सकता कि उन्होंने इनकी रचना नहीं की है।"[58] उन्होंने संविधान सभा को याद दिलाया कि "संविधान के मसौदे के अधिकांश खंडों पर इसी सभा में विचार-विमर्श हुआ और उनके संबंध में यही निर्णय किया गया। केवल कुछ विषयों के समावेश का कार्य मसौदा समिति पर छोड़ दिया गया, परंतु उन्हें व्यवस्थित रूप देने के लिए वे इस सभा के धन्यवाद के पात्र हैं।"[59] उन्होंने यह कहा कि "मुझे इस बात का खेद है कि डॉ. अंबेडकर ने ऐसे कुछ कथन कहने की छूट ली, जो इस सदन की इच्छा या भावनाओं के साथ सुसंगत न हों... अनेक सदस्यों ने गाँवों का प्रश्न उठाया ही है। मैं उसमें कुछ जोड़ना चाहता हूँ। वे (डॉ. अंबेडकर) कहते हैं कि मसौदे में गाँवों को किनारे धकेलकर व्यक्ति को इकाई के रूप में अपनाया गया, इसकी मुझे प्रसन्नता है। मैं उनसे पूछना चाहता हूँ कि गाँवों को छोड़कर ऐसा व्यक्ति है कहाँ? गाँवों की उपेक्षा कर व्यक्ति पर ध्यान दिया गया है, ऐसा बताते समय वे सरलता से भूल जाते हैं कि व्यक्ति ही गाँवों का निर्माण करते हैं, जनसंख्या का नब्बे प्रतिशत भाग गाँवों में है और वे मतदाता भी हैं।"[60]

किशोरी मोहन त्रिपाठी का कहना था कि डॉ. अंबेडकर के गाँव संबंधी कथन की आलोचना सदन की प्रामाणिक संवेदनशीलता के कारण हुई है। हम चाहते हैं कि राष्ट्र के पुनर्निर्माण में गाँवों की महत्त्वपूर्ण भूमिका हो। विश्वंभर दयाल त्रिपाठी का कहना था कि भारत लोकतंत्र की जननी रहा है। डॉ. अंबेडकर का कथन ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित नहीं है। मोटरू सत्यनारायण ने कहा कि मसौदे में ग्रामवासियों का दृष्टिकोण आना चाहिए। सुरेश चंद्र मजुमदार का कहना था कि अगर संविधान में ग्रामीण समाज को प्राणवान बनाने का प्रावधान हो तो राज्य की शक्ति के गाँव मुख्य स्रोत बन सकने की क्षमता रखते हैं। एन. माधवराव मसौदा समिति के सदस्य थे। उन्होंने कहा कि "संविधान के मसौदे में कोई भी ऐसी बात नहीं है, जिससे यथासंभव प्रगति और शीघ्रता से ग्राम पंचायतों का विकास करने में प्रांतीय सरकारों को बाधा का अनुभव हो। इस समय विचाराधीन विषय यह है कि निर्वाचन प्रक्रिया पंचायतों की नींव पर बनाई जानी चाहिए या नहीं। अगर ऐसा सदन का निर्णय होता है तो संविधान के मसौदे में दो अनुच्छेदों में संशोधन करना होगा।"[61] उनके इस कथन से स्पष्ट है कि मसौदा समिति ने विचारपूर्वक गाँव और पंचायत को राज्य व्यवस्था में हाशिए पर रखा था।

ग्राम पंचायत केंद्रित चर्चा पाँच दिन चली। फिर भी अनेक सदस्य बोलने का अवसर नहीं पा सके। अंतिम दिन चर्चा का उत्तर सैयद मुहम्मद सादुल्ला ने दिया। वे

वे (डॉ. अंबेडकर) कहते हैं कि मसौदे में गाँवों को किनारे धकेलकर व्यक्ति को इकाई के रूप में अपनाया गया, इसकी मुझे प्रसन्नता है। मैं उनसे पूछना चाहता हूँ कि गाँवों को छोड़कर ऐसा व्यक्ति है कहाँ? गाँवों की उपेक्षा कर व्यक्ति पर ध्यान दिया गया है, ऐसा बताते समय वे सरलता से भूल जाते हैं कि व्यक्ति ही गाँवों का निर्माण करते हैं, जनसंख्या का नब्बे प्रतिशत भाग गाँवों में है और वे मतदाता भी हैं

मसौदा समिति के सदस्य थे। डॉ. अंबेडकर की अनुपस्थिति का जब प्रश्न खड़ा हुआ था तो उसी समय यह संकेत मिल गया था कि मुसलिम लीग के नेता और असम के पूर्व प्रधानमंत्री ही चर्चा का समापन करेंगे। उन्होंने माना कि संविधान सभा ने मसौदा समिति को बताया था कि उसे उद्देश्य संकल्प के दायरे में ही मसौदा बनाना चाहिए। इस आधार पर जब सदस्यों ने आलोचना की कि मसौदा समिति ने सीमा का उल्लंघन किया है, इसे सादुल्ला ने स्वाभाविक आलोचना कहा। इसके अलावा, उन्होंने अपने भाषण में मसौदे को उचित ठहराया। इस चर्चा के बाद ही संविधान के मसौदे पर अनुच्छेदवार विचार प्रारंभ हो सका।

उसी क्रम में जब नीति-निदेशक तत्त्व के अनुच्छेद पर विचार का समय आया, तब फिर एक बार ग्राम पंचायत का विषय चर्चा के केंद्र में आ गया। 22 नवंबर, 1948 की तारीख थी। दो सदस्यों ने संशोधन का प्रस्ताव भेजा था। एम. अनंतशयनम आयंगर और दूसरे सदस्य थे के. संथानम। एम. अनंतशयनम आयंगर ने अनुभव किया कि संथानम के संशोधन की भाषा उनसे साफ-सुथरी है, इसलिए उनके सुझाव पर उपाध्यक्ष ने के. संथानम को संशोधन प्रस्तुत करने का अवसर दिया। उनका संशोधन था कि "अनुच्छेद 31 में नया अनुच्छेद 31ए जोड़ा जाए।"[62] "राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कार्रवाई करेगा और उन्हें स्वशासन के अंगों के रूप में कार्य करने देने के लिए यथावश्यक शक्ति एवं प्राधिकार प्रदान करेगा।"[63] डॉ. भीमराव अंबेडकर ने उस समय अचानक लचीला रुख अपनाकर पूरी संविधान सभा को चकित कर दिया। किसी को दूर-दूर तक इसकी संभावना नहीं दिख रही थी कि वे कोई संशोधन स्वीकार करेंगे। जैसे ही के. संथानम अपने भाषण का अंतिम वाक्य पूरा कर अपनी सीट पर बैठे कि डॉ. अंबेडकर खड़े हुए। वे बोले, "मैं संशोधन को स्वीकार करता हूँ।"[64] इससे सदन में संतोष का भाव पैदा हुआ। प्रसन्नता की लहर चल पड़ी। इस कारण एक के बाद दूसरे उन सदस्यों ने अपनी प्रसन्नता व्यक्त की। उसमें टी. प्रकाशम, सुरेंद्र मोहन घोष, सेठ गोविंद दास, डॉ. सुब्रमण्यन, एल. कृष्णस्वामी भारती थे। उस समय जो नया अनुच्छेद स्वीकार हुआ, वह संविधान के नीति-निदेशक तत्त्व का अंग बन गया। लेकिन इससे संविधान का मौलिक रूपांतरण नहीं हो सका। संविधान की औपनिवेशिक निरंतरता ही बनी रही। जिस तरह कोई माँ अपनी संतान को बुरी नजर से बचाने के लिए उसके माथे पर काला टीका लगा देती है, वैसे ही संविधान सभा ने नीति-निदेशक तत्त्व में ग्राम पंचायत को जगह देकर एक टोटका किया। बेनेगल नरसिंह राव ने जो संवैधानिक स्वरूप निर्धारित किया था, वह यथावत बना रहा।

संदर्भ

1. ए वीक विद गांधी, लुई फिशर, 4-10 जून, 1942, उद्धरण 7 जून, किंडल संस्करण, पृ. 82
2. पंचायत राज एवं भारतीय राजनीति तंत्र, धर्मपाल, पृ. 85
3. भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट (हिंदी संस्करण), अंक-7, संख्या-1, 4 नवंबर, 1948, पृ. 73
4. वही, पृ. 74
5. वही, पृ. 76
6. वही, पृ. 77
7. वही, पृ. 88
8. भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट (हिंदी संस्करण), अंक-7, संख्या-2, 5 नवंबर, 1948, पृ. 116-117
9. वही, पृ. 117
10. वही, पृ. 118
11. वही, पृ. 118
12. वही, पृ. 118
13. वही, पृ. 122
14. वही, पृ. 122
15. वही, पृ. 119
16. वही, पृ. 139
17. वही, पृ. 139
18. वही, पृ. 139
19. वही, पृ. 139-140
20. वही, पृ. 140
21. वही, पृ. 150-151
22. वही, पृ. 151-152
23. वही, पृ. 157
24. वही, पृ. 159
25. वही, पृ. 177
26. वही, पृ. 179
27. वही, पृ. 180
28. भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट (हिंदी संस्करण), अंक-7, संख्या-3, 6 नवंबर, 1948, पृ. 185-186
29. वही, पृ. 187
30. वही, पृ. 192
31. वही, पृ. 190
32. वही, पृ. 201
33. वही, पृ. 203
34. वही, पृ. 221
35. वही, पृ. 222
36. वही, पृ. 239
37. वही, पृ. 239
38. वही, पृ. 240
39. वही, संख्या-4, 8 नवंबर, 1948, पृ. 288
40. वही, पृ. 300
41. वही, पृ. 300
42. वही, पृ. 300
43. वही, पृ. 303
44. वही, पृ. 303
45. वही, पृ. 304
46. वही, पृ. 310
47. वही, पृ. 337
48. वही, पृ. 338
49. वही, संख्या-5, 9 नवंबर, 1948, पृ. 366
50. वही, पृ. 370
51. वही, पृ. 370
52. वही, पृ. 371
53. वही, पृ. 371
54. वही, पृ. 385
55. वही, पृ. 385
56. वही, पृ. 385
57. वही, पृ. 388
58. वही, पृ. 393
59. वही, पृ. 393
60. वही, पृ. 394
61. वही, पृ. 433
62. वही, संख्या-10, 22 नवंबर, 1948, पृ. 695
63. वही, पृ. 695
64. वही, पृ. 696

विधान के मसौदे में ग्राम अनुपस्थित

4 नवंबर 1948 को प्रारूपण समिति के अध्यक्ष डा. भीमराव रामजी अंबेडकर ने संविधान सभा में 'विधान के मसौदे पर प्रस्ताव' प्रस्तुत किया। इस प्रस्ताव के समर्थन में उनका जो भाषण हुआ वह अद्‌भुत विद्वता एवं अनुपम वक्तृता का उदाहरण था। अतः सभी ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा भी की, लेकिन ग्राम पंचायतों के विषय में उनके वक्तव्य के एक अंश पर तीव्र प्रतिक्रिया भी हुई। वह अंश है :

"इसमें (मसौदे में) कहीं भी भारत की प्राचीन राजनीति को कोई स्थान नहीं दिया गया है। पाश्चात्य राजनीतिक सिद्धांतों का समावेश न कर ग्राम और पंचायतों की भित्ति पर इसे खड़ा करना चाहिए था।..... इसमें कोई संदेह नहीं कि जहाँ और सभी कुछ विनष्ट हो गए, हमारा ग्राम समुदाय आज भी वर्तमान है। किंतु जो लोग इन ग्रामों पर गर्व करते हैं, वे इस बात का विचार नहीं करते कि आखिर देश के भाग्य निर्माण में तथा उसके कार्यकलाप में इन ग्रामों ने कितना हाथ बँटाया है और क्यों? ..... मेरा यह मत है कि ये ग्राम पंचायतें ही भारत कि बर्बादी का कारण रही हैं। इसलिए मुझे आश्चर्य होता है कि जो लोग प्रांतीयता की, सांप्रदायिकता की निंदा करते हैं, वही ग्रामों की इतनी प्रशंसा कर रहे हैं। हमारे ग्राम हैं क्या? ये कूपमंडूकता के परनाले हैं, अज्ञान, संकीर्णता एवं सांप्रदायिकता की काली कोठरियाँ हैं। मुझे तो प्रसन्नता है कि विधान के मसविदे में ग्राम को अलग फेंक दिया गया है और व्यक्ति को राष्ट्र का अंग माना गया है।"

डॉ. बी. आर. अंबेडकर,
4-5 नवंबर, 1948, पृ. 76-77

इस अंश पर संविधान सभा के अधिकतर सदस्यों ने अपनी असहमति व आक्रोश का इजहार किया। इसके चुनिंदा उद्धरण यहाँ प्रस्तुत हैं :

".....हमारे मुल्क में सात लाख गाँव हैं और गाँव हमारे मुल्क का सबसे बड़ा यूनिट है। महात्मा गांधी जी की कृपा से हमारी आजादी की लड़ाई गाँव तक पहुँच गई थी। और गाँव के आधार और बल पर ही आज हिंदुस्तान आजाद हुआ है। उसमें (मसौदे में) कहीं भी गाँव का कोई जिक्र है और कहीं उसकी कोई तस्वीर है? नहीं, कहीं नहीं।..... आज हिंदुस्तान के आजाद होने के बाद मुझे आपको यह बतलाने की जरूरत नहीं है कि दुनिया की आँखें हिंदुस्तान की तरफ लगी हुई हैं। वह तो हिंदुस्तान से कोई नई चीज चाहती है। ऐसे वक्त में जरूरत इस बात की थी कि जो हमारा ड्राफ्ट कांस्टीट्यूशन होता, वह इस तरह का कांस्टीट्यूशन होता, जिसको कि हम दुनिया के सामने एक आदर्श की शक्ल में रख सकते। बजाय इसके कि हमने दूसरे मुल्कों के कांस्टीट्यूशनों की नकल करके दूसरे मुल्कों के कांस्टीट्यूशनों का कुछ हिस्सा लेकर अपने मुल्क का एक कांस्टीट्यूशन खड़ा कर दिया, और जैसा कि मैंने पहले कहा था, वह कांस्टीट्यूशन का ढाँचा भी हमने इस तरह का खड़ा किया है, जो मालूम होता है कि ऊपर से खड़ा किया गया है, नीचे से नहीं खड़ा किया गया है। हिंदुस्तान के हजारों लाखों, गाँवों का इसमें कोई हिस्सा नहीं है और इसमें उनकी कोई आवाज नहीं है। और मुझे यह कहने में जरा भी संकोच नहीं है कि अगर हिंदुस्तान में लाखों गाँवों को एडल्ट फ्रेंचाइज के आधार पर हिस्सा मिला होता, इस कांस्टीट्यूशन के ड्राफ्ट करने में, तो इसकी शक्ल शायद आज की शक्ल से बिलकुल मुख्तलिफ हुई होती।"

श्री दामोदर स्वरूप सेठ,
5 नवंबर, 1948, पृ. 104-106

"महात्मा गांधी जी का विधान, जिसकी रूपरेखा श्री एस. एन. अग्रवाल ने दी थी, ग्राम-स्वराज्य अथवा ग्राम पंचायत पर आश्रित था; और मेरे विचार से विधान के उस अंग पर हमें सावधानी से विचार करना होगा। डॉ. अंबेडकर से यह सुनकर मुझे दु:ख हुआ कि वे उस प्रणाली से घृणा करते हैं, जिसमें ग्रामों की इच्छा सर्वोपरि मानी जाती है। मेरे विचार से हमें उस भाग का उचित संशोधन करना पड़ेगा।.... मेरे विचार से केवल सेठ जी के ही ऐसे विचार नहीं हैं। हमें इन बातों को यों ही नहीं टाल देना चाहिए जैसा कि मेरे पूर्व वक्ता ने किया है।"

श्री बाल कृष्ण शर्मा,
5 नवंबर, 1948, पृ. 111

"कदाचित मसौदा समिति बनाने में ही गलती हुई। उसकी समिति में केवल एक श्री मुंशी के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा सदस्य नहीं था, जिसने अपने देश की स्वतंत्रता के संघर्ष में प्रमुख भाग लिया हो।.....मुझे नहीं मालूम कि उन्होंने डॉ. जायसवाल कृत 'इंडियन पोलिटी' नामक पुस्तक को पढ़ा है या नहीं। मैं नहीं जानता हूँ कि उन्होंने एक और महानतर व्यक्ति श्री अरविंद कृत 'The Spirit and Form of Indian Polity' नामक पुस्तक को पढ़ा है या नहीं। इन पुस्तकों से हमें पता चलता है कि किस प्रकार सर्वसंपन्न तथा स्वायत्तशासी ग्राम समुदायों पर हमारी राज्य-व्यवस्था सुदृढ़ रूप से ठहरी हुई थी। यही कारण है कि हमारी सभ्यता सब युगों में जीवित रही। यदि हम अपनी 'राज्य-व्यवस्था' की शक्ति को भूल जाएंगे, तो हम सब कुछ भूल जाएंगे।..... मेरा विश्वास है कि वह दिन अब दूर नहीं है, जबकि केवल भारत को ही नहीं, वरन् समस्त संसार को, यदि वह शांति, सुरक्षा, सुख तथा संपन्नता चाहता है तो विकेंद्रीकरण करना होगा और ग्राम जनतंत्र तथा नगर जनतंत्र स्थापित करने पड़ेंगे और इसी आधार पर उनको अपने राज्य का निर्माण करना पड़ेगा, अन्यथा संसार और विपत्ति के शिकंजे में फँस जाएगा।.....तत्वत: जिस विवाद का निर्णय हमें करना है वह यह है कि व्यक्ति राज्य के लिए है, अथवा राज्य व्यक्ति के लिए है। अपने जीवनकाल में यह प्रयत्न किया कि इन दोनों के बीच का पथ निकाला जाए और इस द्वंद को सुलझाया जाए और इस प्रयत्न के कारण वे (महात्मा गांधी) पंचायत राज्य के सिद्धांत पर पहुँचे। ....(यह) हमारे पूर्वजों की अपूर्व आध्यात्मिक तथा राजनैतिक देन हमें प्राप्त हुई है।..... यदि हमने ऐसा न किया तो इस सभा के प्रयत्नों का जो कुछ भी फल होगा उससे भारतीय जनता की राजनैतिक अलौकिक बुद्धि की लेशमात्र भी गंध न आएगी।"

श्री एच बी कामत,
5 नवंबर, 1948, पृ. 118, 119-122

"मैं वास्तव में अपने मित्र श्री कामत से सहमत हूँ कि मसौदा-समिति में कांग्रेसी विचारधारा के और अधिक सदस्य होने चाहिए थे, जिससे कि वे उन लोगों के सिद्धांत तथा विचारों का प्रतिनिधान करते, जिनके फलस्वरूप वह विधान-परिषद् बनी और जिनकी आकांक्षाएँ इस मसौदे में प्रतिबिंबित होनी चाहिए।"

श्री बी दास,
5 नवंबर, 1948, पृ. 155

"डॉ. अंबेडकर ने चाहे जो कुछ कहा हो और हमारे गाँवों से घृणा करने वाले अपने जैसे व्यक्ति को अधिकार देने के लिए उन्होंने चाहे जो कुछ सोचा हो, मैं यह कहूँगा कि यह विधान व्यक्ति को, कुटुंब को, ग्राम को, जिले को और प्रांत को कुछ भी अधिकार नहीं देता है। डॉ. अंबेडकर ने तो प्रत्येक अधिकार केंद्र को दिया है। .....मुझे पूरा विश्वास है कि यदि हम भावी भारत का निर्माण भारत के भूतकाल के सुदृढ़ आधार पर करें और यह आधार तो भारत की आत्मा अथवा आंतरिक दृष्टि अथवा आत्मदर्शन के दृष्टिकोण के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं; और यदि हम भौतिक उद्देश्यों को दृष्टि में न रखकर भारत की अमर आत्मा की बात को ही सोचें और उसी की बातों को शब्द दें, तो मुझे पूरा विश्वास है कि हम पूर्णरूपेण अखंड, पूर्णतया शक्तिशाली और जगत के लिए आदर्श सम, भारत का निर्माण करने में सफल होंगे।.....डॉ. अंबेडकर के भाषण का सूक्ष्म परीक्षण करने के लिए मैं और अधिक समय लेता। मैं उनके ज्ञान के सामने तो सिर झुकाता हूँ। मैं उनकी भाषण-स्पष्टता की तारीफ करता हूँ। मैं उनके साहस का आदर करता हूँ। परंतु मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि इतना बड़ा विद्वान, भारत का इतना यशस्वी पुत्र भारत के बारे में इतना अल्प ज्ञान रखता है। विधान के मसौदे की वह आत्मा है और उसने ही मसौदे में कुछ ऐसी बातें दी हैं, जो अभारतीय हैं।"

श्री लोकनाथ मिश्रा,
5 नवंबर, 1948, पृ. 157-159

"राजनैतिक कार्यकर्ताओं के रूप में हम स्वराज शब्द का सदैव प्रयोग करते थे और हम समझते थे कि अंग्रेजों के हाथ से सत्ता सीधी गाँव वालों के हाथ में चली जाएगी। परंतु मेरे विचार से यह प्रस्तावित विधान उन लोगों को ये अधिकार नहीं देगा। पूर्वानुसार पाँच या सात वर्ष में एक बार वे अपना वोट देंगे और वहीं उनके अधिकार समाप्त हो जाएंगे। इसके पश्चात ब्रिटिश समयानुसार ही उन पर शासन किया जाएगा।"

श्री रामनारायण सिंह,
4 नवंबर, 1948, पृ. 173-74

"मा. डॉ. अंबेडकर ऐसा विधान तो नहीं बना पाए जो भारतीय जनता की संस्कृति के अधिक निकट हो किंतु आशा है कि ऐसे संशोधनों के संबंध में वे अनुकूल रुख रखेंगे जो इस उद्देश्य से उपस्थित किए गए हों कि साधारण नागरिक को और उत्साह मिले तथा किसान और मजदूरों के मन में यह भावना पैदा हो कि उसका राज अब आने वाला है। यही आशीर्वाद महात्मा गांधी ने उन्हें दिया था।"

श्री पी.एस. देशमुख,
5 नवंबर, 1948, पृ. 180

"इसके अतिरिक्त श्रीमान् डॉ. अंबेडकर ने गाँवों के संबंध में कुछ बातें कही हैं। हम वर्षों से कांग्रेस में रहे हैं। हमने ग्राम पंचायतों को भविष्य के शासनप्रबंध का आधार मानने की सीख पाई है। गांधी जी तथा कांग्रेस का दृष्टिकोण यह रहा है कि भावी भारत का विधान पिरेमिड के आकार का हो और वह आधृत हो ग्राम-पंचायतों पर। डॉ. अंबेडकर के कथनानुसार भारत के विनाश के कारण गाँव ही रहे हैं और वे अज्ञान के अंधकार में पड़े रहे हैं। यदि यह सत्य है तो इसके उत्तरदायी हम नगर निवासी ही हैं, जो विदेशी नौकरशाही और विदेशी शासन के प्रकाश में चमकते रहे हैं। हमारे गाँवों को भूखा मारा गया, विदेशी सरकार ने जान-बूझकर हमारे गाँवों का गला घोटा और इस अपावन कार्य में नगर निवासी उसके हाथ की कठपुतली बने रहे। मेरे विचार से स्वतंत्र भावी भारत का प्रथम कार्य गाँवों का पुनरुत्थान ही होना चाहिए। श्रीमान्, मैं आपसे कह चुका हूँ कि गांधीवादी तथा कांग्रेसी विचारधारा से हमने यह शिक्षा ग्रहण की है कि भारत का भावी विधान एक पिरेमिड के आकार का हो, जिसकी आधारशिला हो, ग्राम पंचायतें।.....हम सारे ढाँचे को ग्राम-पंचायतों, लोगों के सहर्ष सहयोग की आधारशिला पर खड़ा करेंगे, तो मेरे विचार से केंद्र स्वतः सशक्त हो जाएगा। मैं इस सभा से अब भी प्रार्थना करता हूँ कि कुछ ऐसे खंड सम्मिलित कर लिए जाएँ, जिनसे ग्राम-पंचायतें देश के भावी शासन में प्रभावपूर्ण भाग ले सकें।.....शासन-तंत्र का वास्तविक आधार ग्राम ही होना चाहिए। व्यक्ति सारे विधान का प्राण है, परंतु ग्राम उसके ढाँचे का आधार होना चाहिए।"

श्री अरुणचंद्र गुहा,
6 नवंबर, 1948, पृ. 187-188

"मा. डॉ. अंबेडकर के प्रति सब प्रकार से आदर-भाव रखते हुए भी मुझे यह कहना ही चाहिए कि वे अपने को उन लोगों की स्थिति में नहीं रख सके हैं, जो तीस वर्ष तक इस देश की स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ते रहे हैं। उन्होंने एक ही वाक्य लिखकर ग्राम-पंचायत-प्रणाली को निंदित घोषित कर दिया है। ..... अंबेडकर को इस विषय पर इस प्रकार विचार न करना चाहिए था। निस्संदेह जब इस देश में बाहर से आए हुए कई शासकों के अत्याचार से ग्राम-पंचायतें निष्प्राण हो गई थी, तो हम इस गति को प्राप्त हो गए थे। किंतु उनका अनेक प्रकार से दमन होते हुए भी वे जीवित रहीं।.....ग्राम पंचायतें समयोचित होनी चाहिए और उनमें ग्रामवासियों को वास्तविक शक्ति प्रदान करने, उन पर शासन करने, धन प्राप्त करने और उसे व्यय करने की क्षमता होनी चाहिए। मैं यह जानना चाहता हूँ कि विधान के इस मसौदे के अंतर्गत यह कैसी सरकार बनाई जा रही है।"

श्री टी. प्रकाशम्,
6 नवंबर, 1948, पृ. 189-190

"श्रीमान् मुझे खेद है कि डॉ. अंबेडकर, ग्राम-पंचायतों के संबंध में बोलते समय बहक गए और उनका यह कथन उचित नहीं है कि वे आधुनिक विधान के लिए उचित पृष्ठभूमि नहीं प्रदान करते।.....मेरी तो इच्छा यह थी कि ग्रामीण स्वायत्त शासन के संबंध में उचित सीमाओं के अन्दर वैधानिक व्यवस्था की जाती।.....उनके अस्तित्व को विधान में स्वीकार करना आवश्यक हो जाएगा, क्योंकि भविष्य में प्रत्येक ग्राम का स्थानीय स्वायत्त शासन ही इस देश की स्वतंत्रता की बुनियाद प्रमाणित होगा।"

श्री के. संतानम्,
6 नवंबर, 1948, पृ. 201-202

"यह विधान इस देश में जनतंत्रात्मक व्यवस्था स्थापित करने के लिए बनाया गया है, और डॉ. अंबेडकर ने स्थानीय अधिकारियों और ग्रामों की उपेक्षा करके जनतंत्रात्मक विचारधारा का ही शून्यन कर दिया है। श्रीमान्, स्थानीय अधिकारी ही देश के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन के आधारस्तंभ हैं और यदि विधान में उनके लिए कोई स्थान नहीं है, तो वह विधान विचार करने के योग्य ही नहीं है।.....उन्होंने भी अपनी शक्ति के मद में अंधे होकर स्थानीय निकायों के अधिकार छीन लिए हैं।"

श्री आर. के. सिंधवा,
6 नवंबर, 1948, पृ. 203

"यह विधान भारत की आत्मा का प्रतीक नहीं है। इस कैमरे में गाँवों का स्वायत्त शासन प्रतिबिंबित नहीं है और यह भारत के उस चित्र का सच्चा चित्रण नहीं कर सकता, जैसा कि कई लोग चाहते हैं।..... मुझे इस सभा से एक और निवेदन करना है और वह यह है। हमने ग्राम-पंचायतों के बारे में बहुत-कुछ सुना है। इन ग्राम-पंचायतों का कार्य-संचालन किस प्रकार होगा, यह मैं नहीं जानता। हमारी एक कल्पना है और उस कल्पना को हम व्यवहार में लाना चाहते हैं।"

पं. ठाकुरदास भार्गव,
6 नवंबर, 1948, पृ. 222, 227-228

"उपाध्यक्ष महोदय, डॉ. अंबेडकर ने ग्राम-पंचायत संबंधी प्रथा की निंदा की है, जो भारत में पहले प्रचलित थी और जिसे हमारे बुजुर्गों ने अपने विधान के लिए एक आदर्श आधार माना था। मैं अभी-अभी महात्मा गांधी की वह वक्तृता पढ़ रहा था, जिसे उन्होंने सन् 1931 में लंदन की गोलमेज सभा में दिया था। संघीय विधान -मंडल की निर्वाचन पद्धति के संबंध में वह बोल रहे थे। इस प्रसंग में उन्होंने इस बात की सिफारिश की थी कि निर्वाचन के लिए गाँवों को ही इकाई माना जाए। वस्तुत: उन्होंने ग्राम-पंचायतों को ही आधारभूत महत्व दिया था। उन्होंने कहा था कि भारत की वास्तविक आत्मा ग्रामों में ही वास करती है। मुझे आंतरिक दुख हुआ कि डॉ. अंबेडकर ने ग्राम-पंचायतों के संबंध में ऐसा मत व्यक्त किया। .....मुझे इस बात का निश्चय है कि सभा के बहुसंख्यक सदस्य ग्राम-पंचायतों के संबंध में उनकी राय से सहमत नहीं हैं। मैंने ग्रामों में काम किया है और कांग्रेस-ग्राम-पंचायतों की कार्यशैली का मुझे गत 25 वर्षों से अनुभव है और इस नाते मैं कह सकता हूँ कि उन्होंने इस संबंध में जो चित्र रखा है, वह बिलकुल ही काल्पनिक है। उन्होंने बिलकुल ही गलत तस्वीर आपके सामने रखी है।.....मैं समझता हूँ कि विधान में ग्राम-पंचायतों की स्थापना की व्यवस्था होनी चाहिए।.... जब तक हम गाँवों को और अधिक दायित्व नहीं प्रदान करते, तब तक उनकी समस्याओं का वास्तविक समाधान नहीं हो सकता।"

प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना,
6 नवंबर, 1948, पृ. 239-241

"मुझे तो इस बात पर आश्चर्य होता है कि इस सभा का एक माननीय सदस्य, हमारी राष्ट्रीय सरकार का एक माननीय मंत्री हमारे ग्रामों के संबंध में ऐसी हेय धारणा रखता है। मैं तो कहूँगा कि हमारे कॉलेज और स्कूलों में पाश्चात्य शिक्षा का प्रसार होने से ग्रामों से हमारा संपर्क ही जाता रहा था। किंतु लगभग तीस वर्ष हुए कि हमारे नेता ने ...पूज्य महात्मा गांधी ने.....देश के बुद्धि संपन्न व्यक्तियों को गाँवों को वापस जाने की सलाह दी। गत तीस वर्षों से हम गाँवों में जाने लगे हैं और हमने अपने को ग्रामीणों में मिला सा दिया है। डॉ. अंबेडकर की आलोचना के उत्तर में मैं कहूँगा, हमारे ग्रामों में कूपमंडूकता नहीं है।.....जहाँ तक प्रकृतिज्ञान का संबंध है, शास्त्रों और पुराणों से प्राप्त होने वाले नीतिज्ञान का संबंध है, मैं कहूँगा कि हमारे आधुनिक शहरों से कहीं अधिक ज्ञान और बुद्धि हमारे गाँवों में वर्तमान है। ....इसीलिए मैं डॉ. अंबेडकर से अपील करता हूँ कि इस मसले पर वह पुनर्विचार करें और ग्रामों को वही स्थान दें जो उनको मिलना चाहिए, क्योंकि निकट भविष्य में हमारे ग्राम वही महत्व प्राप्त करने वाले हैं, जो पूर्वकाल में उन्हें प्राप्त था।"

श्री सारंगधर दास,
6 नवंबर, 1948, पृ. 242-243

"मैं यह समझता हूँ कि इस देश के अंदर उसके निर्माण करने में जितना बड़ा हक देहातियों का होना चाहिए, उतना उनको मिलना चाहिए और हर एक चीज के अंदर देहात का प्रभुत्व होना चाहिए।"

चौधरी रणवीर सिंह,
6 नवंबर, 1948, पृ. 247

"डॉ. अंबेडकर से पूर्णत: सहमत हूँ। आधुनिक प्रवृत्ति यही है कि नागरिक का अधिकार प्रधान माना जाए, न कि किसी निकाय का या ग्राम-पंचायतों का, क्योंकि ये निकाय बहुत निरंकुश हो सकते हैं।"

बेगम ऐजाज रसूले,
8 नवंबर, 1948, पृ. 279

"मैं देखता हूँ कि इस विधान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है कि गाँवों को एक इकाई समझा जाए। अवश्य ही शोषण तथा अन्य कई बातों के कारण गाँवों की दशा आज दयनीय है और वे प्राय: बर्बाद से ही हैं। किसी भी विधान-निर्मातृ-सभा का यह सर्वप्रथम कर्तव्य है कि वह ऐसा प्रावधान बनाए जिससे ग्रामों को शासन-व्यवस्था में समुचित स्थान प्राप्त हो।.....मैं ऐसा ख्याल करता हूँ कि ग्राम्य-इकाई बनाने पर हमें विचार करना ही चाहिए।"

श्री बी. एल. मुनिस्वामी पिल्ले,
8 नवंबर, 1948, पृ. 288

"मेरा खयाल है कि चाहने पर भी वह उन मुख्य-मुख्य सिद्धांतों के बाहर नहीं जा सकते थे, जिसके आधार पर सत्ता हस्तांतरित हुई है। इसलिए मेरी समझ से जो भी आलोचना इस संबंध में उनके विरुद्ध की गई है, वह सर्वथा अशोभनीय और अनुचित है।..... एक महती संस्कृति है, जिसको विश्व के वर्तमान सर्वश्रेष्ठ महापुरुष के सिद्धांत और उपदेश प्राप्त हैं, किंतु विधान हम बना पाए ऐसा जो हमारे लिए बिलकुल ही विदेशी हैं।"

श्रीमती दाक्षायणी वेलायुदन,
8 नवंबर, 1948, पृ. 289-291

"जब से मैंने इस विधान को देखा है, तब से मुझे पता लगा है कि इसमें सही बात है ही नहीं। सही बात यह है कि अगर सही हिस्सा, अच्छा हिस्सा दूसरे विधानों में से हमको मिलता है, तो हमको उसे अपने रिटिन कांस्टीट्यूशन में लेना चाहिए।.....दूसरों से तो हिस्से ले लिए जाते हैं, लेकिन हमारे जो पड़े हुए हैं, हमारी आर्यावर्त की भूमि में जो चीजें रहती हैं हमारे लहू में जो चीज आई है, हमारे में जो सत्व है, वह सत्व की बात हमने इसमें से उड़ा दी है। यह विधान का एक मसविदा बनाया गया है, लेकिन इस समविदे में जो प्राण जो सात्विकता है, उसमें भारत का हृदय नहीं है। इस विधान में अपनापन नहीं है। इस विधान में सजावट है; वह सजावट फूलों की सजावट है, कई दूसरी चीजों की सजावट है। लेकिन उसमें जो महक आनी चाहिए, उसमें जो सौरभ, सुगंध आनी चाहिए, वह सुगंध इस विधान में नहीं पाई जाती है। .....भारतवर्ष का एक पंचायती राज्य, या तो ग्राम-पंचायती तंत्र आना चाहिए, उसकी बुनियाद इसमें नहीं है। उसकी बुनियाद नहीं है, तो मैं कहता हूँ कि वह भारत का विधान हो ही नहीं सकता है। जिस ग्राम-पंचायत की प्रथा ने हमको उठाया है और जिस ग्राम-पंचायत की प्रथा ने हमको आज तक जिंदा रखा है, उस चीज को हम भूल जाते हैं, या तो उस चीज को ठुकरा देते हैं और वह कहते हैं बड़ी हिम्मत के साथ कि हमने जान बूझकर उस चीज को ठुकरा दिया है।.....विलेज के यही मानी है कि "It is to be discarded" तो उसी तरह कोई हिम्मत के साथ यह भी कह सकता है कि "This Constitution must be discarded" .....आखिर इतना ही में डाक्टर साहब मैं अर्ज करना चाहता हूँ। वह बड़े पंडित हैं, लेकिन पंडित हैं तो हिंदुस्तान को पंडित बनाएँ। भारतवर्ष का विधान जो बन रहा है, उसमें भारत का अपनापन दाखिल करें, यही मेरी अर्ज है।"

श्री गोकुलभाई दौलतराम भट्ट,
8 नवंबर, 1948, पृ. 299, 300, 302-03

"मेरे माननीय मित्र ने भारतीय ग्राम-समाज की आम तौर पर जो निंदा की है, उससे मैं सहमत नहीं हूँ। मैं उनके इस कथन से भी अपना प्रबल मतभेद प्रकट करता हूँ कि "भारतीय भूमि पर प्रजातंत्र केवल एक ऊपरी आवरण है।" ..... हमारी ग्राम-पंचायतें भारत के सामाजिक और राजनैतिक जीवन की विशेष अंग है, पर विधान में उन्हें यथेष्ट महत्व नहीं दिया गया है। स्थानीय स्वशासन एवं अन्य मामलों के बारे में प्रांतीय और रियासती राज्यों की विधानमंडलों को विस्तृत शक्ति प्रदान की गई है, इसलिए प्रांतीय विधानमंडल उन कई प्रकार्यों को पूरा करने के लिए, जो प्रादेशिक राज्यों को सौंपे गए हैं, चाहे तो स्वयं शासन के लिए ग्राम इकाइयों का निर्माण स्वयं कर सकती है।"

श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर,
8 नवंबर, 1948, पृ. 337, 340

"श्रीमान्, एक शब्द मैं गावों के संबंध में कहना चाहता हूँ। डॉ. अंबेडकर ने यह कहा कि उन्हें इसका हर्ष है कि "मसौदा-समिति ने ग्रामों को कोई स्थान नहीं दिया है"। उन्होंने उनका कूपमंडूकता के गड्ढे और सांप्रदायिकता के अड्डे कहकर वर्णन किया है। दासत्व के इन्हीं गड्ढों में स्वतंत्रता-संग्राम के दिनों में दमन-चक्र चल रहा था। जब चिमूर में दासत्व के इन गड्ढों में उत्पीड़न हो रहा था और अग्नि प्रज्ज्वलित हो रही थी, तो स्वतंत्रता के ये स्तूप अंग्रेजों की पीठ पर मालिश कर रहे थे। (वाह-वाह) गाँवों के विरूद्ध डॉ. अंबेडकर ने जो कुछ कहा है, उसके विरूद्ध जब तक मैं अपनी आवाज नहीं उठाता हूँ, तब तक मैं अपने गाँवों के लोगों के सामने जाकर मुँह नहीं दिखा सकता। डॉ. अंबेडकर को यह पता नहीं है कि स्वतंत्रता-संग्राम में गाँवों ने कितना बलिदान किया है। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि देश के शासनकार्य में गाँव वालों का यथोचित भाग होना चाहिए। यदि उन्हें उनका यथोचित भाग न दिया गया, तो मैं यह कहूँगा कि इसकी प्रक्रिया अवश्य होगी। श्रीमान्, मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।" (हर्षध्वनि)

श्री महाबीर त्यागी,
9 नवंबर, 1948, पृ. 388

"श्रीमान्, मुझे इसका खेद है कि गाँवों के संबंध में तथा बहुसंख्यकों के प्रकार और 'वैधानिक नैतिकता' के संबंध में डॉ. अंबेडकर ने जो बातें कहीं और जो सम्मति प्रकट की, उसमें वे बहुत आगे बढ़ गए और उन्होंने इस सभा की इच्छाओं और भावनाओं का कुछ भी विचार नहीं किया। गाँवों के प्रश्न के संबंध में माननीय सदस्यों ने बहुत कुछ कहा है। मैं केवल इतना और कहना चाहता हूँ। वे कहते हैं - "मुझे इसकी प्रसन्नता है कि मसौदे में गाँव का परित्याग कर दिया है और व्यक्ति को इकाई के रूप में स्वीकार किया गया है और व्यक्ति पर विचार किया गया है, तो वे इसे अपनी सुविधा के लिए भूल गए हैं कि व्यक्तियों को ही लेकर तो गाँव बनते हैं और ऐसे ग्रामीणों की संख्या, जो हमारे मतदाता हैं, लगभग 90 प्रतिशत हैं।"

श्री एल. कृष्णास्वामी भारती,
9 नवंबर, 1948, पृ. 394

मसौदे पर यह बहस संविधान सभा में दिनांक 4 से 9 नवंबर 1948 तक अर्थात् 6 दिन चली। संविधान सभा के वाद विवाद की सरकारी रिपोर्ट (हिंदी संस्करण) खंड VII-क, पुस्तक संख्या 3 से ये उद्धरण लिए गए हैं।

एस. एस. मीनाक्षीसुंदरम

राजीव गांधी, भारतीय राज्य व्यवस्था और पंचायती राज संशोधन

भारत में प्रजातांत्रिक पंचायतों की एक सुदीर्घ परंपरा रही है। विदेशी दासता के दौर में यह परंपरा प्रभावित तो हुई, लेकिन नष्ट नहीं की जा सकी। संविधान में 73वें संशोधन के जरिये इसे पुनर्जीवन दिया गया। इस परंपरा के नए सिरे से विकास पर एक दृष्टि

भारत में पंचायतों का इतिहास सदियों पुराना है। भारत के प्राचीनतम धर्मग्रंथों में से एक ऋग्वेद में समूचे प्रायद्वीप में ग्राम समुदायों का उल्लेख है, जो शताब्दियों से स्वशासी भूमिका में ग्रामीण कृषि अर्थव्यवस्थाओं और उच्चाधिकारियों के बीच कड़ी का काम करते थे। 'सभा' कहलाने वाली इन परिषदों और सभाओं को रीति और परंपरा ने इनका उत्थान कर उच्च प्राधिकार का स्थान दिलाया। धीरे-धीरे उन्होंने पंचायत (पाँच सम्मान्य वरिष्ठ व्यक्तियों की एक सभा) का रूप ले लिया। उत्तर भारत में ये पंचायतें प्रशासन की धुरी, सामाजिक एकजुटता का केंद्रबिंदु और न्याय वितरण तथा स्थानीय विवादों के समाधान का मुख्य मंच बन गईं। मध्य और मुगलकालीन युगों के दौरान ग्राम पंचायतों की ये विशेषताएँ पहले जैसी बनी रहीं। हालाँकि मुगलों के अधीन उनकी न्यायिक शक्तियाँ कम कर दी गईं, किंतु स्थानीय मामले ऊपर से अनियमित रहे और ग्राम पदाधिकारी तथा सेवक मुख्य रूप से पंचायतों के प्रति उत्तरदायी बने रहे। उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान भारत में ब्रिटिश गवर्नर रहे सर चार्ल्स मेटकाफ के अनुसार वे "लघु गणराज्य थे, जिन्हें उनके अपने भीतर हर वह चीज प्राप्त थी, जो वे चाहते थे और वे विदेशी संबंधों से प्रायः मुक्त होते थे। उनका अंत होगा ऐसा प्रतीत नहीं होता है।"

भारत में ब्रिटिश शासन के अंतर्गत, इन पंचायतों की स्वायत्तता धीरे-धीरे गायब हो गई, जिसके कई कारण रहे, जैसे स्थानीय दीवानी (सिविल) और फौजदारी न्यायालयों, राजस्व और पुलिस संस्थाओं की स्थापना, आवागमन में वृद्धि, व्यक्तिवाद का विकास और व्यक्तिगत रैयतवारी प्रथा का आरंभ होना। किंतु, अंग्रेजों ने भारत में स्थानीय स्वशासन की एक वैकल्पिक प्रथा की स्थापना का प्रयास किया। जनसाधारण की चुनी संस्थाओं की स्थापना हेतु सन् 1882 में लॉर्ड रिपन ने प्रांतीय सरकारों के क्षेत्रों में उन्हें दिए जाने वाले विशिष्ट कार्यों की देखरेख के लिए एक गैरसरकारी अध्यक्ष की अध्यक्षता में इस दिशा में पहल की। किंतु, इन संस्थाओं को स्वायत्तता के साथ-साथ संसाधनों का भी अभाव था।

पहली बार गांधी जी ने 20वीं शताब्दी में पंचायतों को उनके प्रजातांत्रिक आधारों के साथ पुनर्जीवित करना और उन्हें पर्याप्त शक्तियाँ देना चाहा ताकि ग्रामीणों को सही अर्थों में 'स्वराज' अथवा स्वशासन मिल सके। वह समस्त राज्य-व्यवस्था का गठन ग्राम स्वराज के आधार पर करना चाहते थे। हरिजन के 26 जुलाई, 1942 अंक में उन्होंने लिखा, "ग्राम स्वराज का मेरा विचार यह है कि यह एक संपूर्ण गणराज्य हो, अपनी जरूरी आवश्यकताओं के लिए अपने पड़ोसियों से मुक्त, किंतु कई अन्य के लिए परस्पर निर्भर जिसमें निर्भरता एक आवश्यकता हो। इस प्रकार प्रत्येक गाँव का पहला सरोकार अपने भोजन के लिए खाद्यान्न और कपड़े के लिए कपास स्वयं उगाना होगा... व्यक्ति अपनी सरकार का रचयिता स्वयं हो। उस पर और उसकी सरकार पर नियंत्रण अहिंसा के कानून का हो।"

दुर्भाग्यवश, राष्ट्रपिता के इन विचारों को कई लोगों ने स्वीकार नहीं किया, विशेष रूप से डॉ. अंबेडकर ने जिनका कहना था, "गाँव क्या है, स्थानीयता का एक गर्त, अज्ञानता, संकीर्ण विचारों और सांप्रदायिकता का एक अड्डा?"

वह मानते थे कि ये ग्राम गणराज्य भारत की बर्बादी का कारण रहे हैं। उस समय गाँव की जातिगत सोच की प्रधानता वाली यह स्थिति ऐसी थी कि कोई आसानी से समझ सकता है कि अंबेडकर ऐसा क्यों सोचते थे। प्रशासन की बुनियादी इकाई के रूप में गाँव की इस अवधारणा के प्रति उनके प्रबल विरोध के फलस्वरूप पंचायतों का कोई उल्लेख भारत के संविधान के पहले मसौदे में नहीं किया गया।

गांधी जी ने उस कदम का विरोध किया। कई सलाह-मशविरों के बाद, इस बात पर सहमति बनी कि पंचायतों को राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में शामिल किया जाए। संविधान के अनुच्छेद 40 में, जिस पर संविधान सभा ने अनिच्छापूर्वक सहमति जताई, केवल इतना उल्लेख है कि "राज्य ग्राम पंचायतों का संयोजन करने और उन्हें आवश्यक शक्तियाँ एवं अधिकार देने का प्रयास करेगा ताकि वे स्व-शासन की इकाइयों के रूप में कार्य कर सकें।" इससे स्वतंत्र भारत में ग्रामीण स्थानीय शासनों की किसी भी प्रणाली को लागू करने का दायित्व बहुत कम रह गया। सन् 1959 तक इस विषय पर कोई कानून नहीं था। यह कानून सामुदायिक परियोजना एवं राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्यक्रम का अध्ययन करने हेतु गठित बलवंत राय समिति की इस अनुशंसा के बाद ही बना कि जन भागीदारी सुनिश्चित किए बिना विकास के कार्यक्रम लागू नहीं किए जा सकते। इस अनुशंसा के बाद, साठ के दशक के पूर्वार्ध में एक त्रि-स्तरीय पंचायतीराज प्रथा पूरे देश में अस्तित्व में आई। भारत में पंचायती राज के इतिहास में उत्थान का काल सन् 1964 तक बना रहा, जिसके बाद (1965 से 69 तक) इसमें स्थिरता आई और फिर इसके पतन का काल शुरू हुआ, जो सन् 1969 से 1977 तक चलता रहा, जिसका मुख्य कारण तत्कालीन सरकार में लोकतांत्रिक मूल्यों का कमजोर होना था।

पंचायतीराज के प्रति झुकाव सन् 1977 में राष्ट्र स्तर पर एक नई सरकार (मोरारजी देसाई के नेतृत्व में) के सत्ता में आने के बाद बढ़ा। इस सरकार द्वारा अशोक मेहता के नेतृत्व में गठित एक समिति ने देश में एक दो-स्तरीय पंचायतीराज प्रथा की अनुशंसा के साथ सन् 1978 में अपनी रिपोर्ट सौंपी। दुर्भाग्यवश उस रिपोर्ट पर कोई कार्रवाई की जाती, इसके पहले ही वह सरकार सत्ता खो बैठी। किंतु, रामकृष्ण हेगड़े के नेतृत्व में कर्नाटक सरकार ने अशोक मेहता समिति की अनुशंसाओं को अपनाते हुए, सन् 1983 में एक कानून लागू किया, जिसमें लगभग 20,000 की आबादी वाली मंडल पंचायतों और प्रत्येक जिले में जिला परिषदों के गठन का प्रस्ताव रखा गया।

कर्नाटक में जिस दो-स्तरीय प्रथा की स्थापना हुई, उसने कई लोगों समेत तत्कालीन प्रधानमंत्री (पीएम) राजीव गांधी का ध्यान आकृष्ट किया, जिन्होंने राज्य सरकार के पदाधिकारियों से विवरण प्रस्तुत करने की अपील की। हालाँकि प्रधानमंत्री के समक्ष हेगड़े स्वयं विवरण प्रस्तुत करना चाहते थे, किंतु राजनीतिक कारणों से ऐसा नहीं हो सका। सन् 1986 में गठित एल. एम. सिंघवी समिति की अनुशंसा पर संविधान में संशोधन कर समस्त देश में पंचायतीराज प्रथा लागू करने के ध्येय से राजीव गांधी ने देश भर के जिला समाहर्ताओं के साथ कई सम्मेलनों का आयोजन किया। इसलिए राजीव गांधी द्वारा शुरू की गई पंचायतीराज पहल केवल एक विकेंद्रीकरण प्रक्रिया का पुनरारंभ भर नहीं, बल्कि परिवर्तन को गति देने का प्रयास है। ग्राम, मध्यवर्ती और जिला स्तरों पर मुख्यतः क्षेत्रीय विधानसभा क्षेत्रों के चुने गए प्रतिनिधियों को लेकर पंचायतों की स्थापना के ध्येय से 15 मई, 1989 को राजीव ने लोकसभा में 64वाँ संविधान संशोधन विधेयक पेश किया। एक माह के भीतर, पदाधिकारियों के एक परिसंवाद, बेंगलुरु में तीन क्षेत्रीय सम्मेलनों, सभी मुख्य सचिवों की एक बैठक, स्थानीय स्व-शासन के सभी राज्य मंत्रियों की एक बैठक और संसदीय सलाहकार समिति की एक बैठक का आयोजन किया गया, जिनमें से अधिकांश में राजीव ने भाग लिया।

इन बैठकों में राजीव गांधी को लगा कि विधेयक को पास कराने के लिए जरूरी राजनीतिक समर्थन जुटाना आसान नहीं है। उनके अपने दल ने देखा कि प्रस्तावित कदम बहुत व्यापक हैं, बहुत सारे हैं और उस समय प्रभावी राजनीतिक संगठनों को स्वीकार्य नहीं होंगे। विपक्षी दलों, मुख्य रूप से डीएमके, सीपीएम और तेलुगुदेशम पार्टी,

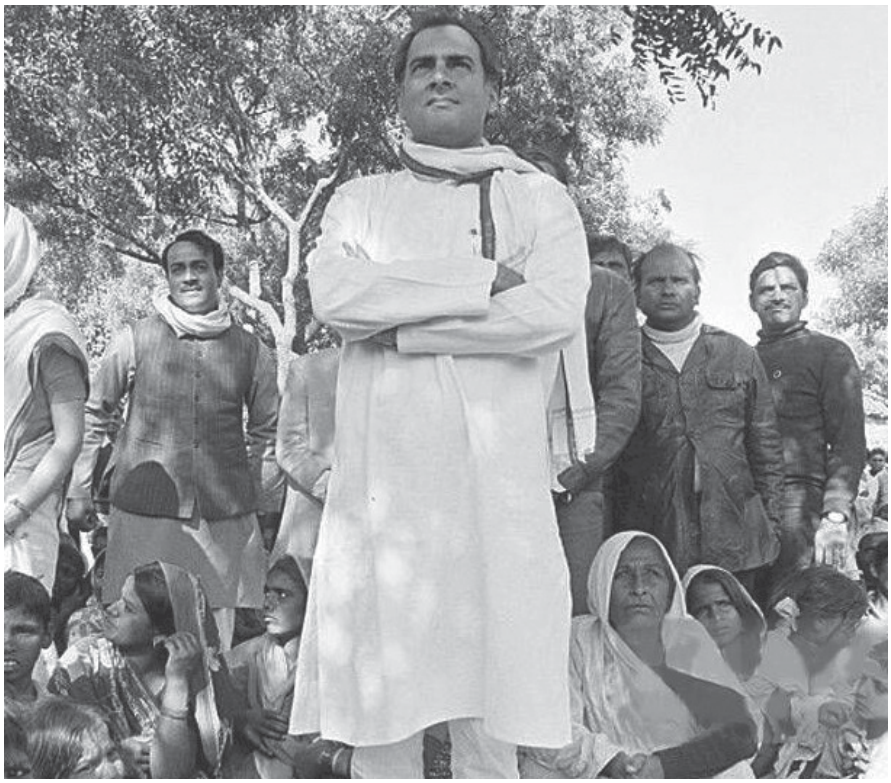

ने घोषणा की कि उन विषयों पर कानून बनाने का प्रयास कर राजीव संविधान की आत्मा की उपेक्षा कर रहे हैं, जो राज्य सरकारों के अधीन आते हैं। जब संसद ने दोबारा मानसून सत्र बुलाया, तब राजीव ने नगरपालिका विधेयक पेश किया, जिसे शहरी क्षेत्रों में भी विकेंद्रीकरण को संभव बनाने के लिए पंचायत विधेयक के एक सहयोगी अंश के रूप में बतौर 65वाँ संशोधन प्रस्तुत किया गया।

दुर्भाग्यवश कुछ ही महीनों के भीतर, वर्ष 1989 में मई और अगस्त के बीच, सदन का स्वभाव और मनोदशा बदली। अगले वर्ष के आरंभ में आम चुनाव होने की संभावना थी, इसलिए विपक्षी दल इस बात पर अड़े थे कि कांग्रेस को विकेंद्रीकरण के प्रयास का कोई भी राजनीतिक लाभ नहीं लेने देंगे। इस बीच बोफोर्स का विवाद बढ़ गया और लगभग सौ विपक्षी सांसदों ने इस्तीफा दे दिया। हालाँकि अध्यक्ष ने औपचारिक तौर पर इस्तीफे स्वीकार नहीं किए, किंतु ये सांसद सदन से दूर रहे और वस्तुतः शहाबुद्दीन तथा बनातवाला जैसे गिनती के विपक्षी सांसद लोकसभा आते रहे। विधेयक के उनके अपने विरोध को दबा दिया गया और व्यक्तिगत प्रावधानों में अधिक से अधिक ध्यान दिया गया। 8 अगस्त, 1989 को 64वें और 65वें दोनों संशोधन विधेयकों को विचारार्थ प्रस्तुत किया गया। लगभग अस्सी सदस्यों ने भाग लिया, किंतु विपक्षी समर्थकों की अनुपस्थिति में, चर्चा अधिकांशतः एकपक्षीय रही। कांग्रेस की ओर से, कुछ लोगों को छोड़कर, वक्ताओं ने हमेशा की तरह राजीव गांधी की प्रशंसा और विपक्षी सदस्यों की कटु आलोचना की। वैधानिक क्षमता और संवैधानिकता को लेकर शहाबुद्दीन का कहना था कि संविधान के पहले ही अनुच्छेद में भारत का उल्लेख 'राज्यों, नगरपालिकाओं और पंचायतों के संघ' के रूप में नहीं 'राज्यों के एक संघ' के रूप में किया गया है। इसलिए, संशोधनों से मूलभूत संरचना बदल जाएगी। उन्होंने यह भी कहा कि स्थानीय संस्थाओं को प्रभावशील व उत्तरदायी बनाने पर देश में कोई विवाद नहीं है, इसलिए संविधान संशोधन विधेयक की कल्पना की गई और उसे तत्काल प्रस्तुत कर दिया गया।

शहाबुद्दीन और कुछ अन्य सदस्यों ने जिन संशोधनों का प्रस्ताव दिया था, उनमें से कुछ में 'राज्यपाल' के स्थान पर 'राज्य सरकार' करने, प्रस्तावित संशोधन के तहत राज्य विधानमंडलों को अधिक से अधिक दायित्व देने, और सांसदों का प्रतिनिधित्व केवल जिला पंचायतों में सीमित करने के प्रावधान की माँग की गई थी। सुल्तान ओवैसी ने हैदराबाद के कटु अनुभव की याद दिलाई, जहाँ चुनाव बाईस वर्षों के बाद कराए गए

शहाबुद्दीन और कुछ अन्य सदस्यों ने जिन संशोधनों का प्रस्ताव दिया था, उनमें से कुछ में 'राज्यपाल' के स्थान पर 'राज्य सरकार' करने, प्रस्तावित संशोधन के तहत राज्य विधानमंडलों को अधिक से अधिक दायित्व देने, और सांसदों का प्रतिनिधित्व केवल जिला पंचायतों में सीमित करने के प्रावधान की माँग की गई थी। सुल्तान ओवैसी ने हैदराबाद के कटु अनुभव की याद दिलाई, जहाँ चुनाव बाईस वर्षों के बाद कराए गए। संबद्ध मंत्रियों - भजनलाल और मोहसिना किदवई - के उत्तर के बाद, लोकसभा ने कांग्रेस से इतर सदस्यों के संशोधनों को खारिज कर दिया और 10 अगस्त, 1989 की देर शाम विधेयकों को पारित कर राज्यसभा को भेज दिया।

अगले दिन, यह प्रकरण राज्यसभा पहुँचा। चर्चा 14 अगस्त को शुरू की गई। प्रहार शुरू करते हुए, गुरुपादस्वामी ने पूछा इन चालीस वर्षों तक सरकार कहाँ थी जब आंध्र प्रदेश, कनार्टक और केरल जैसे राज्यों में स्वशासन एक ठोस यथार्थ का रूप ले चुका था। विपक्षी दलों के शासन वाले इन राज्यों ने यह साबित कर दिया था कि विकेंद्रीकरण के लिए यदि जरूरत थी तो किसी संविधान संशोधन की नहीं बल्कि राजनीतिक इच्छाशक्ति और राजनीतिक नेतृत्व की। उपेंद्र ने कहा कि सरकार विधेयकों के पारित होने की प्रक्रिया के समय से इतनी जल्दबाजी में इसलिए थी कि राज्यों का अनुसमर्थन और राष्ट्रपति की स्वीकृति वर्ष 1991 के बाद मिलती जब राजीव गांधी की सरकार सत्ता में नहीं रह जाती। कुछ सदस्यों ने यह कहते हुए कांग्रेस सरकार के दोहरेपन पर भी आक्रमण किया कि वर्ष 1983 में राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए जब कर्नाटक सरकार ने पंचायती राज पर एक व्यापक कानून भेजा, तब केंद्र सरकार ने उसे वर्ष 1985 तक लंबित रखा। कर्नाटक पंचायत मंत्री नजीर साब ने तब भूख हड़ताल पर जाने की धमकी दी थी और प्रबल राजनीतिक दबाव के बाद राष्ट्रपति की स्वीकृति मिली।

16 अगस्त को जब राज्यसभा दोबारा बुलाई गई तब इस बात पर जोर देते हुए उपेंद्र ने अपना आक्रमण जारी रखा कि स्थानीय निकायों को हस्तांतरण अलग से नहीं हो सकता, बल्कि केंद्र से राज्यों को हस्तांतरण से पहले या उसके साथ ही होना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि प्रधानमंत्री ने स्वयं कहा था कि आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु और पश्चिम बंगाल ने पंचायतीराज संस्थाओं के प्रति बहुत कुछ किया था। यदि ऐसा था, तो वह राज्य सरकारों के अविश्वास को समझ नहीं सके, जिन्होंने संभवतः केंद्र को विधेयक लाने के लिए प्रेरित किया था। विपक्ष के एक और प्रतिष्ठित नेता एल. के. आडवाणी ने भी बहस में हिस्सा लिया। उन्होंने देखा कि विधेयक का समर्थन करने वालों ने उसे ऐतिहासिक मानते हुए उसका स्वागत किया जबकि विरोध करने वालों ने उसे राज्यों के अधिकार छीनने का क्रूर तिकड़म माना। उन्होंने विधेयक तैयार करने और आवश्यक बिंदुओं पर सर्वसम्मति के बिना उसे संसद में प्रस्तुत करने में सरकार के असंगत प्रबंधन को इस विवाद का दोष दिया। आडवाणी ने महसूस किया कि यदि सरकार चाहती तो विधेयक की कुछ अनिवार्य विशेषताओं पर सर्वसम्मति मिल सकती थी। उनका अपना दल पंचायत निकायों को एक संवैधानिक दर्जा दिलाने का लंबे समय से पुरजोर समर्थन करता

रहा था। उनका मानना था कि वह संशोधन विधेयक प्रधानमंत्री की बिगड़ती छवि को सही करने का एक प्रयास था और एक चुनावी तिकड़म से अधिक कुछ नहीं था।

राज्यसभा में बहस जारी नहीं रह सकी क्योंकि सदन 18 अगस्त को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया। 11 अक्तूबर को जब यह दोबारा बुलाया गया, तब राज्यसभा में हंगामे के दृश्य उभरे क्योंकि विपक्ष ने बोफोर्स विवाद पर सरकार से तत्काल इस्तीफे की माँग की। फिर भी, संसद की कुछ कार्यवाही चलती रही और पंचायत व नगरपालिका पर बहस जारी रही। मुरासोली मारन ने दोनों विधेयकों को राज्यों पर एक 'आभासी युद्ध' माना। उन्हें लगा कि ये विधेयक केवल समस्या का एक छोटा हिस्सा भर थे, जिनमें अनेकानेक गलतियाँ छिपी थीं, और राज्यों से अनावश्यक एकरूपता में केंद्र की हाँ में हाँ मिलाने की अपेक्षा की गई थी। राम जेठमलानी ने गरजते हुए कहा कि कार्यवाहियों के पीछे का समस्त नजरिया और दर्शन अवांछित, समय और अभिप्रेरण ा निहायत आपत्तिजनक, और विधेयक तैयार करने तथा भारत के लोगों के समक्ष प्रस्तुत करने का तरीका सब लगभग भ्रष्ट थे। उनकी दृष्टि में, राजीव गांधी की सरकार एक कमजोर सरकार थी और उसे संविधान से छेड़छाड़ करने का कोई नैतिक अधिकार नहीं था। फॉरवर्ड ब्लॉक के अनुभवी नेता चित्त बसु ने सैद्धांतिक रूप से विधेयकों का विरोध किया क्योंकि उनमें कर्तव्य सारे राज्यों पर थोप दिए गए थे किंतु उनके अधिकारों में कमी कर दी गई थी। उन्होंने सरकार पर अशोक मेहता और सरकारिया समिति की अनुशंसाओं को नजरअंदाज करने का आरोप लगाया। चतुरानन मिश्र का मानना था कि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लिए नियमित चुनावों और आरक्षणों के प्रावधान उचित थे, किंतु भारत की संचित निधि से हस्तांतरण के किसी प्रावधान के बिना राज्य वित्त आयोगों का गठन करने का कोई औचित्य नहीं था।

राज्यसभा में हुई बहस में किसी यूनानी दुखांत नाटक की सारी विशेषताएँ थीं। विधेयकों पर विचार के प्रस्ताव के आरंभ से ही, प्रत्येक अवस्था में, कार्रवाई के विषय दोनों संवैधानिक विधेयक थे, इसलिए, उन्हें पारित करने हेतु उपस्थित और मतदान करने वाले दो-तिहाई सदस्यों के मतों की आवश्यकता थी। राजीव गांधी को लगा कि वह किसी न किसी तरह इन्हें पास करा लेंगे। दूसरी तरफ, विपक्षी सदस्य विधेयकों को हर हाल में पास होने से रोकने पर आमादा थे। हर व्यक्ति को पता था कि नौवीं लोकसभा का काल उस वर्ष के अंत तक पूरा हो जाएगा। हालांकि विपक्ष ने सरकार पर चुनावों से पूर्व जोड़-तोड़ करने का आरोप लगाया, पर उनके अपने व्यवहार में भी आगामी चुनावों पर पैनी नजर थी। जब बहस की तिथि बढ़ाकर 13 अक्तूबर की गई, तब लोगों को आशा थी कि यह कार्यवाही का अंतिम चरण होगा और तदनंतर सदन अनिश्चितकाल के लिए स्थगित कर दिया जाएगा।

किंतु, राजीव गांधी ने विधेयकों के समर्थन में अपने सारे दाँव लगा देने का निर्णय लिया। जब राज्यसभा ने देर शाम तक बहस जारी रखने का निर्णय किया, तब रात 11 बजे राजीव गांधी के जवाब देने का समय आया। लोकसभा में तो कांग्रेस को पर्याप्त बहुमत प्राप्त था, पर राज्यसभा में भी राजीव गांधी के लिए बहुमत जुटाना आवश्यक था। उन्हें अपने तर्कों को सुव्यवस्थित ढंग से सावधानीपूर्वक प्रस्तुत करना और अपने संबोधन भाषण को संयमित व संतुलित रखना था। यह देखते हुए कि बहस में ज्यादा से ज्यादा लोग हस्तांतरण के पक्ष में थे, उन्होंने अधिकार क्षेत्र, क्षमता, मूल तत्व और राजनीतिक औचित्य पर विवादों पर चर्चा शुरू की। उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि विधेयकों में राज्यों के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप करने अथवा उसे सीमित करने का किसी भी तरह का कोई प्रयास नहीं किया गया है, न ही राज्य सूची में किसी प्रकार का कोई बदलाव करने का प्रयास किया गया है। उन्होंने इस आधार पर पंचायतों और नगरपालिकाओं के एक एकरूप गठन को उचित ठहराया कि प्रजातंत्र की संरचना और सीमा समस्त देश में एक होनी चाहिए।

औचित्य के प्रश्न पर, विशेष रूप से इस शिकायत पर कि प्रधान मंत्री ने सीधे जिला दंडाधिकारियों से बातचीत का साहस किया, राजीव गांधी ने पूछा, "यदि प्रधानमंत्री को देश के किसी हिस्से के किसी व्यक्ति से बात करने का अधिकार नहीं, तो फिर प्रधानमंत्री बने रहने के लिए उसके क्या अधिकार हैं?" इस विचार पर प्रहार करते हुए कि ये प्रयास चुनावों के अत्यंत करीब थे, राजीव ने याद दिलाया कि "हमारा चुनाव पाँच वर्षों के लिए किया गया और 1985 में जब हमने सत्ता सँभाली तभी से विकेंद्रीकरण कार्यक्रम सरकार का मुद्दा रहा...व्यापक स्तर पर विचार-विमर्श के बाद पेश किए गए पंचायती राज और नगरपालिका विधेयकों को संविधान के अस्तित्व में आने के समय से भारतीय राज्य-व्यवस्था के शासन में अति तात्विक, सर्वांगी सुधार के उपायों के रूप में देखा जाना चाहिए।" राजीव गांधी ने इस बात पर पुनः जोर दिया कि प्रस्तावित संशोधनों से चुने गए प्रतिनिधियों की संख्या में वृद्धि होगी और उस अंतर में कमी आएगी जो आज मतदाताओं को उनके प्रतिनिधियों से अलग करता है। उन्होंने घोषणा की कि "ये विधेयक सत्ता के दलालों और बिचौलियों के शासन को खत्म करेंगे।"

दोनों विधेयकों में योजना के प्रावधानों

राजीव गांधी ने विधेयकों के समर्थन में अपने सारे दाँव लगा देने का निर्णय लिया। जब राज्यसभा ने देर शाम तक बहस जारी रखने का निर्णय किया, तब रात 11 बजे राजीव गांधी के जवाब देने का समय आया। लोकसभा में तो कांग्रेस को पर्याप्त बहुमत प्राप्त था, पर राज्यसभा में भी राजीव गांधी के लिए बहुमत जुटाना आवश्यक था। उन्हें अपने तर्कों को सुव्यवस्थित ढंग से सावधानीपूर्वक प्रस्तुत करना और अपने संबोधन भाषण को संयमित व संतुलित रखना था

के प्रति ध्यान आकृष्ट कराते हुए, राजीव गांधी ने कहा, "आश्चर्यजनक रूप से सदन में इन प्रावधानों पर बहुत कम चर्चा हुई, जो संशोधनों के मर्म थे। संविधान संशोधन में योजना के एक सर्वथा नए युग की संभावना पर विचार किया गया। विकेंद्रीकृत योजना पर लंबे समय से चर्चा चलती रही है, किंतु संशोधनों से यह अनिवार्य हो जाएगी। सामाजिक न्याय एक अभिन्न तत्व होगा। जिला योजना और महानगर योजना महत्वपूर्ण हो जाएंगी और भारत राज्यों व केंद्रीय सत्ताओं के बीच बातचीत का एक मंच प्रदान करने वाला विश्व भर के पहले विकासशील देशों में से एक होगा।" अपना भाषण समाप्त करते हुए राजीव गांधी ने कहा, "हम उस दमनात्मक दु:स्वप्न को समाप्त कर रहे हैं, जिसे जमीनी स्तर के लोग भोग रहे हैं। उनकी समस्याओं का निदान अब उनके घर पर हो सकता है, जवाबदेही गाँव के भीतर होगी और उत्तरदायित्व पंचायतों का होगा।"

सदन जब विधेयकों के प्रस्ताव पर विचार करने के लिए मतदान कराने पर तैयार हुआ, तब एक नया विवाद पैदा हो गया। सदन में उपस्थित कुछ मंत्रियों, हालाँकि वे राज्यसभा के सदस्य नहीं थे, का जिक्र करते हुए आडवाणी ने कहा कि यदि मतदान के समय वे हट जाएँ, तो यह बुद्धिमानी होगी। सत्ता पक्ष ने इसे एक अपमान के रूप में लिया। शोर और विरोध के कारण सदन में विघ्न का संकट फिर पैदा हो गया। अंतत:, 64वें और 65वें संविधान संशोधन विधेयक पर विचार का प्रस्ताव मतदान के लिए प्रस्तुत किया गया। इसके विरोध में 83 जबकि पक्ष में 157 मत पड़े - उपस्थित और मतदान करने वाले कुल 240 सदस्यों में से आवश्यक दो-तिहाई बहुमत से तीन कम।

13 अक्तूबर, 1989 को आधी रात के बाद 12 बजकर 31 मिनट पर प्रस्ताव को परास्त घोषित कर दिया गया। इस प्रकार भारत में शासन के विकेंद्रीकरण के राजीव गांधी के प्रयासों का पटाक्षेप हो गया और फिर सदन अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया।

वर्ष 1989 में जिसे एक जल्दबाजी में उठाया गया कदम कहा गया था उसे ही 1993 में देश की सरकार की संरचना में एक महत्वपूर्ण सर्वांगी परिवर्तन के रूप में देखा गया। यदि राजीव गांधी ने आडवाणी की सलाह के अनुरूप महत्वपूर्ण बिंदुओं पर राजनीतिक सर्वसम्मति हासिल करने का प्रयास किया होता, तो संभव था कि उन्होंने स्वयं यह साहसिक कार्य पूरा कर लिया होता। राजीव गांधी के असफल प्रयास के बावजूद, भारत के राजनीतिक एजेंडे में विकेंद्रीकरण को महत्वपूर्ण तत्व के रूप में महज एक प्रशासनिक कार्य के ऊपर उठाने का श्रेय उन्हें ही जाता है

निस्संदेह विकेंद्रीकरण के प्रति राजीव गांधी की सोच साफ थी। लोकसभा में पंचायत विधेयक प्रस्तुत करते समय, उन्होंने कहा, "एक व्यापक विन्यास ने मतदाताओं के एक विशाल निकाय को उसके छोटी संख्या में चुने गए प्रतिनिधियों से अलग कर दिया। इस अंतर पर सत्ता के दलालों, बिचौलियों और निहित स्वार्थों ने कब्जा कर लिया है। नगरपालिका के छोटे से छोटे कार्य के लिए, सही संपर्क वाले व्यक्तियों की खोज में लोगों को दौड़-धूप करनी पड़ती है... इस विधेयक के पास हो जाने पर पंचायतें प्रशासन और विकास के एक सशक्त घटक के रूप में उभर कर सामने आतीं।" उनका विधेयक अपने सत्व के कारण नहीं बल्कि इसलिए निरस्त हुआ कि सत्ता पक्ष और विपक्ष दोनों ने एक राजनीतिक मोरचा अपना लिया था; कोई भी पक्ष दूसरे पक्ष को कोई भी छूट देने को तैयार नहीं था। चार वर्षों के बाद, उसी विधेयक को संविधान के 73वें संशोधन की नई संख्या देते हुए (नरसिंह राव की सरकार में) प्रस्तुत किया गया, किंतु उसमें कोई खास फेर-बदल नहीं की गई थी, और वह कानून बन गया। वर्ष 1989 में जिसे एक जल्दबाजी में उठाया गया कदम कहा गया था उसे ही 1993 में देश की सरकार की संरचना में एक महत्वपूर्ण सर्वांगी परिवर्तन के रूप में देखा गया। यदि राजीव गांधी ने आडवाणी की सलाह के अनुरूप महत्वपूर्ण बिंदुओं पर राजनीतिक सर्वसम्मति हासिल करने का प्रयास किया होता, तो संभव था कि उन्होंने स्वयं यह साहसिक कार्य पूरा कर लिया होता। राजीव गांधी के असफल प्रयास के बावजूद, भारत के राजनीतिक एजेंडे में विकेंद्रीकरण को महत्वपूर्ण तत्व के रूप में महज एक प्रशासनिक कार्य के ऊपर उठाने का श्रेय उन्हें ही जाता है।

किसी देश के इतिहास में तीस वर्ष का समय कोई लंबा काल नहीं होता। राजीव गांधी के प्रयासों के परिणाम सामने आ चुके हैं - देश के कुछ राज्यों में पंचायतीराज प्रथा में ये परिणाम स्पष्ट दिखाई देते हैं। हम आशा करें कि आने वाले समय में देश के शेष राज्य भी इनका अनुसरण करेंगे।

संदर्भ

1. हरि के. नागराजन, हंस पी. बिनस्वांगर-मखीज एवं एस. एस. मीनाक्षीसुंदरम 'डीसेंट्रलाइजेशन एंड एंपावरमेंट फॉर रूरल डिवलेपमेंट', प्रकाशन : फाउंडेशन बुक्स, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, भारत, 2015।
2. के. सी. शिवरामकृष्णन, 'पावर टु दि पीपल?', प्रकाशन : कोणार्क पब्लिशर्स प्रा. लि., 2000।
3. एस. एस. मीनाक्षसुंदरम, 'डीसेंट्रेलाइजेशन इन डिवेलपिंग कंट्रीज', प्रकाशन : कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, 1994।
4. भारत सरकार, 'दि कंस्टिट्यूशन ऑफ इंडिया', 1950।
5. कर्नाटक सरकार, 'दि कर्नाटक जिला परिषद, तालुका पंचायत समितिज, मंडल पंचायत्स एंड न्याय पंचायत्स एक्ट 1983'।
6. लोकसभा प्रॉसीडिंग्स, मे एंड अगस्त, 1989।
7. राज्यसभा डिबेट्स, अगस्त एंड अक्टूबर, 1989।

भीमराव रासकर

ग्रामसभा : सहभागी लोकतंत्र का आधार

लोकतंत्र की वास्तविक अर्थवत्ता उसके बिलकुल जमीनी स्तर तक पहुँचने और वहीं से प्रभावी भूमिका निभाने में ही सन्निहित है। वह जमीनी स्तर है गाँव और गाँव की भाग्य विधाता हैं ग्रामसभाएँ। ग्रामसभाओं की वस्तुस्थिति का एक यथार्थ विश्लेषण

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने देश के विकास में ग्रामीणजनों की सहभागिता की आवश्यकता को रेखांकित करते हुए कहा था, 'सच्ची लोकशाही केंद्र में बैठे 20 आदमी नहीं चला सकते। वो तो नीचे हर गाँव के लोगों द्वारा चलाई जानी चाहिए ताकि सत्ता के केंद्रबिंदु, जो इस समय दिल्ली, कोलकाता या बंबई जैसे बड़े शहरों में हैं, मैं उसे भारत के साढ़े सात लाख गाँवों में बाँटना चाहूँगा'।[1]

गांधी जी का मानना था कि शासन के कामकाज में 'जनसहभागिता' जितनी अधिक होगी, लोकतंत्र उतना ही अधिक विकसित होगा। इसका आशय ऐसी गतिविधि से है जिसके अंतर्गत कोई व्यक्ति सार्वजनिक नीतियों के निर्माण और क्रियान्वयन की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेता है। इस प्रकार यह लोकतांत्रिक प्रक्रिया में नागरिकों की सहभागिता पर बल देता है। लोकतांत्रिक सहभागिता सरकार व नागरिकों के बीच परस्पर-क्रिया की माँग करता है। अर्थात यह दोतरफा गतिविधि है जिसमें एक पक्ष क्रिया व दूसरा प्रतिक्रिया यानि प्रत्युत्तर देता है और इस हेतु पहल नागरिक या सरकार दोनों तरफ से हो सकती है। इसी पृष्ठभूमि को लेकर सहभागी लोकतंत्र की परिकल्पना की गई है।

ग्रामसभा की संरचना सहभागी लोकतंत्र का एक आदर्श प्रतिरूप है। लोकनायक जयप्रकाश ने ग्रामसभा के रूप में पंचायत व्यवस्था को सहभागी लोकतंत्र का आधार माना था।[2] वर्तमान समय में प्रतिनिधित्व लोकतंत्र की सीमाएँ और विसंगतियाँ काफी उभरकर सामने आ गई हैं। अतः अब इस बात पर भी जोर दिया जाने लगा है कि प्रतिनिधिमूलक और सहभागी तरीकों को एक साथ जोड़कर लोकतंत्र को और अधिक कारगर बनाया जा सकता है। 73वाँ संविधान संशोधन इस दिशा में की गई एक बहुत ही सार्थक पहल है।

ग्रामसभा की संरचना

ग्रामसभा संबंधित ग्राम पंचायत क्षेत्र के मतदाता सूची में शामिल वयस्क नागरिकों से मिलकर बनी संस्था है। गतिशील, सक्रिय और प्रबुद्ध ग्रामसभा पंचायती राज की सफलता के केंद्र में होती है। किसी ग्राम की निर्वाचन नामावली में जो नाम दर्ज होते हैं, इन व्यक्तियों को सामूहिक रूप से ग्रामसभा कहा जाता है।

संविधान के अनुच्छेद 243 में पहली बार ग्राम पंचायत और ग्रामसभा के स्वतंत्र अस्तित्व को संवैधानिक मान्यता देते हुए उसकी अलग-अलग परिभाषा दी गई है। परंतु ग्रामसभा के अधिकारों को संविधान में न देकर उन्हें पूरी तरह राज्यों के विधानमंडल के ऊपर छोड़ दिया गया है।[3]

भारतीय लोकतांत्रिक संरचना में सरकार के तीसरे स्थानीय स्तर पर विद्यमान पंचायती राज-प्रणाली में ग्रामसभा प्रत्यक्ष लोकतंत्र का प्रतीक है जिसमें अपेक्षा की गई थी कि स्थानीय जन-सहभागिता से गाँवों का विकास किया जाएगा। ग्राम पंचायतों और ग्रामसभा के मध्य वही संबंध होगा जो मंत्रिमंडल और विधानसभा के मध्य होता है। 73वें संशोधन ने ग्रामसभा को सशक्त और सार्थक स्थिति प्रदान की जिससे विकास योजनाओं, मुख्यतः गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों में जनसाधारण की सहभागिता हो सके तथा ग्रामीण विकास के अंतिम लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके।

सही मायने में देखा जाए तो भले हम पंचायतों को त्रि-स्तरीय कहते हैं, लेकिन यह असल में चार स्तरीय है। चौथा स्तर ग्रामसभा का है। ग्रामसभा निर्वाचित नहीं है, बल्कि गाँव

के मतदाताओं की एक स्थायी सभा है और संवैधानिक तौर पर यह पंचायतों को नियंत्रित और निर्देशित करने वाली संस्था है।

सामान्य क्षेत्र में जहाँ सामान्यत: ग्राम पंचायत क्षेत्र के स्तर पर ग्रामसभा का प्रावधान किया गया है वहीं अनुसूचित क्षेत्र में ग्रामसभा के सदस्य यदि ऐसा चाहें, तो किसी ग्राम में एक से अधिक ग्रामसभा का गठन ऐसी रीति से किया जा सकेगा, जैसा कि विहित किया जाए और ऐसी प्रत्येक ग्रामसभा के क्षेत्र में आवास या आवासों का समूह अथवा छोटे गाँव या गाँवों/टोलों का समूह होगा जिसमें समुदाय समाविष्ट हो।[4]

विभिन्न राज्यों में ग्रामसभा की स्थिति

जैसा कि पूर्व में उल्लिखित किया गया है कि 73वें संविधान संशोधन के अंतर्गत अनुच्छेद 243 क में यह प्रावधान किया गया है कि ग्रामसभा ग्राम स्तर पर ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कृतियों का पालन कर सकेगी जो किसी राज्य के विधानमंडल द्वारा कानून बनाकर उपबंधित किए जाएंगे। इसके अनुसार राज्यों ने अपने-अपने तरीके से ग्रामसभा को शक्ति और कृत्य निर्धारित किए गए हैं। राज्यों के प्रावधानों पर यदि दृष्टि डालें तो सभी राज्यों में कुछ शक्ति व कृत्य समान रूप से हैं, इसमें बजट पास करना, लाभार्थियों की पहचान करना तथा आय-व्यय को संस्तुति करना जैसे प्रावधान मुख्य हैं। लेकिन यदि तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो इसके तीन प्रकार दिखाई पड़ते हैं। पहला वे राज्य जिन्होंने ग्रामसभा को मात्र सलाह और सुझाव तक ही सीमित कर रखा है, दूसरे वे राज्य हैं जिन्होंने ग्रामसभा को निगरानी, सतर्कता और सोशल ऑडिट जैसे प्राधिकार तो दिए हैं लेकिन वे व्यवहार में नहीं हैं। तीसरे वे राज्य हैं जिन्होंने ग्रामसभा को सही अर्थों में सार्वजनिक हित के महत्वपूर्ण निर्णय तथा विकास योजनाओं के क्रियान्वयन की मॉनिटरिंग तथा जाँच का अधिकार दिया है। इसमें पहले प्रकार में उत्तर प्रदेश, पंजाब और कर्नाटक तो दूसरे प्रकार में राजस्थान, हिमाचल प्रदेश और बिहार तथा तीसरे प्रकार में केरल, मध्य प्रदेश तथा झारखंड जैसे राज्य शामिल हैं।

पहले प्रकार के राज्यों में तो ग्रामसभा एक औपचारिकता मात्र होकर रह गई है, उधर दूसरे प्रकार के राज्यों में अधिनियम के अंतर्गत निगरानी व सतर्कता की शक्ति तो दी गई है लेकिन यह व्यवहार में बहुत कम है। इन दोनों के पीछे ग्रामसभा के प्रति लोगों में जागरूकता की कमी एक बड़ा कारण तो है ही साथ ही समुचित प्रावधानों के अभाव में उसमें सामान्य मतदाता के लिए निर्णय के भागीदार के रूप में कोई विशेष अवसर नहीं है। जो थोड़ी-बहुत भागीदारी होती है वह लाभार्थी की शक्ल में अधिक है।

तीसरे प्रकार के राज्यों (केरल, मध्य प्रदेश तथा झारखंड) के अधिनियम में विधायिका के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास है। ग्रामसभा के निर्णय अथवा सुझाव को मानना ग्राम पंचायत के लिए अनिवार्य तो किया ही गया है साथ ही उसकी गतिविधियों एवं क्रियाकलाप पर नियंत्रण का भी अधिकार दिया है। इन राज्यों में ग्रामसभा की स्थाई समितियों का प्रावधान कर विकास योजनाओं के नियोजन एवं क्रियान्वयन में भी उसके हस्तक्षेप को बढ़ाया है।[5] लेकिन इन तीनों को भी तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो जहाँ एक ओर केरल जैसे राज्य में व्यापक स्तर पर जनजागरूकता पैदा करके ग्रामसभा को सक्रिय व प्रभावी बनाने का कार्य किया गया वहीं दूसरी ओर झारखंड में जागरूकता के स्तर पर कोई विशेष पहल न होने से एक बेहतर प्रावधान आज तक जमीन पर नहीं उतर पाया है। मध्य प्रदेश में 21वीं शताब्दी के शुरुआती दौर में जागरूकता का प्रयास तो शुरू हुआ लेकिन वह बहुत दूर तक नहीं जा सका, इस नाते इसका जो प्रभाव आना था वह नहीं आ पाया है।

नए पंचायती राज के प्रारंभिक वर्षों में केरल में भी ग्रामसभा के प्रति लोगों की अच्छी धारणा नहीं थी। केरल की ग्राम पंचायतों का आकार काफी बड़ा है जिससे संविधान के अनुसार पंचायत क्षेत्र के स्तर पर ग्रामसभा का प्रावधान उसके लिए पूरी तरह से अव्यावहारिक हो गया था। अत: वहाँ सबसे पहले वार्ड स्तर पर ग्रामसभाओं का प्रावधान किया गया फिर 'जनाधिकार कला जत्था' के माध्यम से व्यापक स्तर पर जनजागरूकता के कार्यक्रम आयोजित किए गए। एक हजार कलाकारों के सौ जत्थों ने पूरे केरल में घूम-घूम कर बड़े पैमाने पर जागरूकता कार्यक्रम का आयोजन किया। जिसके चलते लोगों में एक विशेष तरह का उत्साह और कौतूहल पैदा हुआ जिसका प्रभाव ग्रामसभाओं की बैठक में दिखाई पड़ने लगा। इसके अलावा छुट्टियों के दिन दोपहर बाद ग्रामसभा का आयोजन, बैठक का आयोजन स्कूल परिसर तथा बैठक की सूचना प्रसारण हेतु जत्थों का उपयोग जैसे अन्य तरीके भी अपनाए गए। इतना ही नहीं, बल्कि बैठक में सदस्यों को छोटे-छोटे समूहों में बाँटकर सार्थक चर्चा का अवसर भी दिया जाने लगा। इससे ग्रामसभा में भाग लेने वालों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई तथा उसे व्यवस्थित व प्रभावी तरीके से संचालित करने का अवसर भी मिलने लगा। इस प्रकार केरल राज्य में ग्रामसभाओं की स्थिति पंचायत सरकार की विधायिका के रूप में धीरे-धीरे विकसित होती गई।[6]

नए पंचायती राज के प्रारंभिक वर्षों में केरल में भी ग्रामसभा के प्रति लोगों की अच्छी धारणा नहीं थी। केरल की ग्राम पंचायतों का आकार काफी बड़ा है जिससे संविधान के अनुसार पंचायत क्षेत्र के स्तर पर ग्रामसभा का प्रावधान उसके लिए पूरी तरह से अव्यावहारिक हो गया था। अत: वहाँ सबसे पहले वार्ड स्तर पर ग्रामसभाओं का प्रावधान किया गया फिर 'जनाधिकार कला जत्था' के माध्यम से व्यापक स्तर पर जनजागरूकता के कार्यक्रम आयोजित किए गए। एक हजार कलाकारों के सौ जत्थों ने पूरे केरल में घूम-घूम कर बड़े पैमाने पर जागरूकता कार्यक्रम का आयोजन किया

वार्ड सभा का गठन

देश के कुछ राज्यों में ग्रामसभा के साथ-साथ वार्ड सभा का भी प्रावधान है। ग्राम पंचायत

के लिए चुने जाने वाले सदस्य के निर्वाचन क्षेत्र के आधार पर प्रत्येक क्षेत्र के लिए वार्ड सभा के गठन का प्रावधान किया गया है। संबंधित वार्ड के समस्त मतदाताओं को मिलाकर वार्ड सभा बनती है। हिमाचल तथा राजस्थान जैसे राज्य में इसका प्रावधान 1994 में ही कर दिया गया था। लेकिन वह आज तक अपना कोई विशेष प्रभाव नहीं छोड़ पाया है। हिमाचल प्रदेश में वार्ड सभा को उप ग्रामसभा के नाम से संबोधित किया जाता है।[7] पश्चिम बंगाल में 73वें संविधान संशोधन के पहले से ही वार्ड सभा का प्रावधान था। वहाँ इसे 'ग्राम संसद' कहा गया है।[8] सही अर्थों में आज की तारीख में यही ग्रामसभा की सारी भूमिकाएँ निभाती हैं। ग्रामसभा सामान्यत: इसके निर्णय व संस्तुतियों को संवैधानिक मान्यता देती है। पश्चिम बंगाल की पंचायत व्यवस्था की बेहतरी में ग्राम संसदों की विशेष भूमिका है। इसी प्रकार कर्नाटक ने अपनी ग्रामसभा को प्रभावी बनाने के लिए वार्ड सभा का प्रावधान किया है। इसके चलते ग्रामसभाओं में उपस्थिति तो बढ़ी ही है साथ ही गाँव के वयस्क नागरिकों में पंचायत के कामकाज के प्रति रुचि भी बढ़ी है।

2018 में जम्मू-कश्मीर[9] और बिहार में अधिनियमों को संशोधित कर वार्ड सभा का प्रावधान किया गया है। इन दोनों राज्यों में वार्ड सभा को पर्याप्त रूप से प्रभावी बनाने की नीतिगत कोशिश की गई है। इनके प्रभाव का सही आकलन अगले कुछ वर्ष बाद ही किया जाना उचित होगा। लेकिन इन दोनों राज्यों में एक अच्छी शुरुआत हुई है।

इस प्रकार कई राज्यों में वार्ड सभा के माध्यम से ग्रामसभा में लोक सहभागिता का सार्थक प्रयास किया गया है और कुछ राज्यों में सकारात्मक परिणाम भी दिखाई पड़ रहे हैं। निश्चय ही यह प्रयोग बहुत महत्वपूर्ण है। ग्राम स्वराज्य और सहभागी लोकतंत्र जैसे विचारों को जमीन पर उतारने में इस प्रयोग से नई संभावना बनती है। लेकिन इसके लिए राज्य के स्तर पर गंभीर प्रयास और नई पहल की आवश्यकता है।

73वें संविधान संशोधन के बाद से ही भारत सरकार के स्तर से ग्रामसभाओं के सशक्तीकरण को लेकर निरंतर प्रयास किए जाते रहे हैं। जन सहभागिता को महत्व देते हुए केंद्र सरकार की विभिन्न योजनाओं में ग्रामसभाओं को निर्णय का अधिकार देकर उसे महत्वपूर्ण दर्जा देने की कोशिश जारी रही है। इस दिशा में महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, वनाधिकार एक्ट, सोशल ऑडिट, प्रधानमंत्री आवास योजना, लाभार्थी चयन प्रक्रिया आदि महत्वपूर्ण है। इसी के साथ पूर्व में 'राजीव गांधी पंचायत सशक्तीकरण अभियान' तथा वर्तमान में 'राष्ट्रीय ग्राम स्वराज्य अभियान' का लक्ष्य ग्रामसभाओं का सशक्तीकरण तथा लोक सहभागिता को बढ़ाने पर केंद्रित है। भारत के चौदहवें वित्त आयोग द्वारा ग्राम पंचायतों को सीधे आवंटित किए जाने वाले अनटाइड बजट से बनने वाली 'ग्राम पंचायत विकास योजना' (जी.पी.डी.पी.) इस दिशा में एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रयास है।

इन प्रयासों से स्थिति में थोड़ा-बहुत बदलाव तो आया है लेकिन अभी भी स्थिति संतोषजनक नहीं कही जा सकती। ग्रामसभा का आयोजन अभी भी ठीक से नहीं हो पा रहा है। वह औपचारिकता बनकर रह गया है। स्थगित बैठक का उदाहरण अधिक है। जनभागीदारी बहुत कमजोर है। पंचायत व्यवस्था के अध्येता डॉ. चंद्रशेखर प्राण का मानना है कि जनभागीदारी के विस्तार से वर्तमान सत्ता प्रतिष्ठानों को अपनी सत्ता के खोने का सबसे अधिक भय है।[10]

73वें संविधान संशोधन में अनुसूचित क्षेत्र एवं जनजाति क्षेत्रों के लिए भारत की संसद को यह विशेष अधिकार दिया गया है कि वह इस भाग के उपबंधों का विस्तार करके इन क्षेत्रों के लिए पंचायत व्यवस्था हेतु नया कानून बना सकती है। इसी के तहत अनुसूचित क्षेत्र के लिए वर्ष 1996 में पंचायत विस्तार अधिनियम पारित किया गया है। जिसमें ग्रामसभा को एक विशेष दर्जा प्रदान किया गया है। इस अधिनियम के विधेयक को लाने से पूर्व 10 जून 1994 को दिलीप सिंह भूरिया की अध्यक्षता में एक उच्चस्तरीय समिति बनाई गई थी

अनुसूचित क्षेत्रों एवं जनजाति क्षेत्रों में ग्रामसभा

73वें संविधान संशोधन में अनुसूचित क्षेत्र एवं जनजाति क्षेत्रों के लिए भारत की संसद को यह विशेष अधिकार दिया गया है कि वह इस भाग के उपबंधों का विस्तार करके इन क्षेत्रों के लिए पंचायत व्यवस्था हेतु नया कानून बना सकती है।[11] इसी के तहत अनुसूचित क्षेत्र के लिए वर्ष 1996 में पंचायत विस्तार अधिनियम पारित किया गया है। जिसमें ग्रामसभा को एक विशेष दर्जा प्रदान किया गया है। इस अधिनियम के विधेयक को लाने से पूर्व 10 जून 1994 को दिलीप सिंह भूरिया की अध्यक्षता में एक उच्चस्तरीय समिति बनाई गई थी। जिसने 17 जनवरी 1995 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में संबंधित समुदायों के राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक शक्ति को बढ़ाने पर जोर देते हुए प्राकृतिक संसाधनों पर इनके परंपरागत अधिकारों को संरक्षित करने को महत्वपूर्ण माना था। समिति की रिपोर्ट में भूमि के प्रयोग, वनों के प्रबंधन, जल संसाधनों के प्रयोग, संपत्ति का उत्तराधिकार, सहकारिता और सामाजिक रीति-रिवाजों, धन उधार देने के विनियम और नियंत्रण तथा उत्पाद नीति के विधान बनाने की संस्तुति की गई थी। पुलिस और वन विभाग के अधिकारियों की भूमिका को न्यूनतम करने का सुझाव देते हुए समिति ने परंपरागत जातीय निकायों के कार्य को मान्यता प्रदान करते हुए उनके क्षेत्राधिकार में हस्तक्षेप न करने की सलाह दी थी। उसने स्पष्ट रूप से यह सुझाव दिया था कि छठी अनुसूची की तरह जिला परिषद की तरह शक्तियाँ मिलनी चाहिए। जब कभी किसी विशेष परिस्थिति में इन पंचायतों को भंग करना हो तो राज्यपाल के आदेश से ही भंग किया जाए।[12] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि संविधान की छठी अनुसूची के अंतर्गत अनुच्छेद 244 (2) जो

असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम राज्यों में प्रशासन के विशेष तरीकों का प्रावधान करता है उसके अनुसार सभी अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायतों को प्राधिकार सौंपने की बात की गई है। इसके अंतर्गत विधायिका एवं मंत्रिमंडल के एक विशेष स्वरूप का प्रावधान है तथा अनुच्छेद 275 के अनुसार संघ सरकार से सीधे अनुदान प्राप्त करने का प्रावधान किया गया है।[13] भूरिया कमेटी ने अनुसूचित क्षेत्र की पंचायतों को यही विशेषाधिकार देने की संस्तुति की। इस सबके लिए उसने ग्रामसभा को सर्वोच्च अधिकार देने का सुझाव दिया था।

भूरिया समिति के सुझावों के आधार पर पेसा अधिनियम संसद में पारित कर ग्रामसभा को विशेष शक्तियाँ प्रदान की गईं। यह विशेष इस अर्थ में है कि 73वें संशोधन में सामान्य क्षेत्र की ग्रामसभा को राज्य के विधानमंडल पर छोड़ दिया गया लेकिन यहाँ उसके लिए बहुत स्पष्ट प्रावधान संसद के अधिनियम में ही कर दिए गए। राज्य सरकारों को उसे लागू करने का निर्देश दिया गया। ग्रामसभाओं के माध्यम से पंचायत व्यवस्था को जो विशेष अधिकार दिए गए उसमें प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन की शक्ति, समुदाय के संसाधनों को व्यवस्थित करने की शक्ति, परंपरागत तरीके से विवादों के समाधान करने की शक्ति तथा ऋण प्रदान करने संबंधी व्यवसाय पर नियंत्रण की शक्ति के साथ मादक पदार्थों के विक्रय और उपयोग को विनियमित तथा प्रतिबंधित करने की शक्ति भी प्रदान की गई है।[14]

73वें संविधान संशोधन तथा पेसा अधिनियम के लागू होने के 25 वर्ष से अधिक समय बीत जाने के बाद यदि उसके प्रावधानों के जमीनी स्तर पर लागू होने तथा उसके प्रभाव को देखने के क्रम में जहाँ एक तरफ यह निराशा होती है कि अधिकांश राज्य सरकारों द्वारा अभी भी इसको ईमानदारी के साथ इसे कार्यान्वित नहीं किया गया है वहीं दूसरी ओर कई ऐसे उदाहरण भी है जहाँ इस दिशा में की गई कोशिशों से उम्मीद की नई रोशनी दिखाई पड़ी है। इसमें महाराष्ट्र के गढ़चिरौली जिले का मेढ़ा-लेखा तथा हिबड़े बाजार, तमिलनाडु के चेन्नई जिले का कुटुंबकम, हरियाणा के महेंद्रगढ़ जिले का बेवल, उड़ीसा के नियमागिरी क्षेत्र की ग्रामसभाएँ तथा मध्य प्रदेश के भाजिया गाँव की ग्रामसभाएँ शामिल हैं। जिन्होंने जहाँ एक ओर गाँव में स्वशासन व खुशहाली की मिसाल पेश की है वहाँ दूसरी ओर राज्य सरकार अथवा बड़े कॉर्पोरेट घरानों के निर्णय के विरुद्ध अहिंसात्मक संघर्ष कर उनके असंवैधानिक कार्यों को रोकने का काम किया है।

ग्रामसभा की वस्तुस्थिति तथा उसके प्रभावी स्वरूप को लेकर सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा अब तक कई अध्ययन किए गए हैं। इन सभी अध्ययनों में सामान्यत: यह निष्कर्ष सामने आया है कि अधिकांश ग्रामसभाएँ औपचारिकता बन कर रह गई हैं तथा कोरम के अभाव में बुलाई जाने वाली बिना कोरम अथवा न्यूनतम सदस्यों की उपस्थिति वाली ग्रामसभा को ही वैध घोषित कर उसके द्वारा ही अधिकांश प्रस्ताव पारित किए जा रहे हैं। यह प्रक्रिया इतने लंबे समय से चलती आ रही है कि यह गाँव के सामान्य जीवन में स्वाभाविक स्थिति का रूप ले चुकी है। जिसके चलते लोग इसे बड़े सहज रूप में लेने लगे हैं। यह सही है कि देश के अलग-अलग क्षेत्रों में कई सामाजिक संगठन ग्रामसभा के सशक्तीकरण तथा उसके गौरव को पुनर्स्थापित करने के लिए जनजागरूकता कार्यक्रमों का संचालन कर रहे हैं। इस प्रयास में तीसरी सरकार अभियान (राष्ट्रीय लोक अभियान), महिला राज सत्ता आंदोलन महाराष्ट्र, मंथन युवा संगठन झारखंड आदि जमीनी स्तर पर सक्रिय है। लेकिन अभी भी अपेक्षित लक्ष्य की प्राप्ति बहुत दूर की कौड़ी लगती है।

विभिन्न अध्ययनों तथा जन प्रयासों से ग्रामसभाओं के निष्प्रभावी स्वरूप के बारे में जो अनुभव प्राप्त हुआ है उसमें से मुख्य रूप से ग्रामसभा के संवैधानिक एवं अधिनियमगत प्रावधानों की जानकारी का अभाव तो मुख्य रूप से है ही साथ ही राज्य सरकारों के संबंधित कर्मचारियों, अधिकारियों तथा पंचायत व्यवस्था के ग्रामस्तरीय पदाधिकारियों (विशेषकर सरपंचों व प्रधानों) द्वारा जानबूझ कर किए जा रहे उपेक्षापूर्ण व्यवहार तथा संबंधित कानूनी प्रावधानों का अंतर्निहित हितों में गलत रूप में प्रयोग है। पंचायती राज व्यवस्था पर अध्ययन, शोध और प्रयोग के क्षेत्र में अग्रणी कार्य कर रहे डॉ. चंद्रशेखर प्राण ग्रामसभा की बैठकों में अनुपस्थिति के पाँच मुख्य कारण बताते हैं। पहला यह कि बहुत सारे लोगों को यह पता ही नहीं है कि वे ग्रामसभा के सदस्य हैं। ग्रामसभा के बारे में उन्हें कभी जागरूक ही नहीं किया गया। दूसरा बैठक की सूचना का सही तरीके से समय पर प्रसारित न

किया जाना है। तीसरा ग्रामसभा के लिए जो बैठक स्थल निर्धारित किया जाता है उसका सभी के लिए सुविधाजनक न होना है। चौथा बैठक की कार्यवाही की प्रक्रिया का अव्यवस्थित होना है। पाँचवाँ ग्रामसभा में गाँव के वयस्क नागरिक (विशेषकर महिला व कमजोर वर्ग) को अपनी बात रखने अथवा सवाल पूछने का अवसर न दिया जाना है।[15]

डॉ. प्राण के अनुसार "प्राप्त तमाम अनुभवों के आधार पर यह बात विश्वास के साथ कही जा सकती है यदि गाँव सभाओं की बैठकें नियमित रूप से तथा व्यवस्थित तरीके से आयोजित होने लगें और उसमें अधिकांश लोगों की सक्रिय भागीदारी हो जाए तो भारत वर्ष के ग्रामीण समाज में आशा और अपेक्षा के अनुरूप व्यापक परिवर्तन बड़ी तेजी के साथ घटित होगा, साथ ही इसका प्रभाव पूरे राष्ट्र पर पड़ेगा। हम जिस नए भारत की परिकल्पना इस नई शताब्दी में कर रहे हैं, उसका सबसे सशक्त और सार्थक प्रयास यही होगा। लोकतांत्रिक चेतना के विस्तार के साथ आम आदमी में जो चाहत और तड़प पैदा हो रही है यदि उसको सही दिशा और सही मार्ग न मिला तो अत्यंत भयावह स्थिति बनेगी। इसके लिए ग्रामसभा का यह मंच और उसके माध्यम से अभिव्यक्ति का अवसर ही इस गंभीर संकट से राष्ट्र को बचा सकता है"।[16]

हम जिस नए भारत की परिकल्पना इस नई शताब्दी में कर रहे हैं, उसका सबसे सशक्त और सार्थक प्रयास यही होगा। लोकतांत्रिक चेतना के विस्तार के साथ आम आदमी में जो चाहत और तड़प पैदा हो रही है यदि उसको सही दिशा और सही मार्ग न मिला तो अत्यंत भयावह स्थिति बनेगी। इसके लिए ग्रामसभा का यह मंच और उसके माध्यम से अभिव्यक्ति का अवसर ही इस गंभीर संकट से राष्ट्र को बचा सकता है

ग्रामसभा को सक्रिय, सशक्त एवं प्रभावी बनाने के लिए संबंधित सभी स्तरों (केंद्र सरकार, राज्य सरकार, पंचायत सरकार तथा सामाजिक संगठन) पर प्रयास की आवश्यकता है। इसके लिए जहाँ केंद्र सरकार के स्तर से अनुसूचित क्षेत्र की ग्रामसभा के तर्ज पर सामान्य क्षेत्र की ग्रामसभा की भी सर्वोच्च स्थिति को प्रतिस्थापित करने तथा उसके दायित्व एवं अधिकार को स्पष्ट रूप से रेखांकित करने के लिए संविधान में संशोधन किया जाना अपेक्षित है वहीं राज्य सरकार के स्तर से अपने अधिनियम में मध्य प्रदेश, झारखंड और केरल जैसे राज्यों से उदाहरण लेते हुए ग्रामसभा को गाँव सरकार की विधायिका के रूप में प्राधिकार व दायित्व सौंपने, ग्रामसभा की बैठकों में संबंधित अधिकारियों की उपस्थिति को अनिवार्य करने, ग्रामसभा की सभी बैठकों में एक न्यूनतम संख्या में उपस्थिति को आवश्यक बनाने, सरकारी कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के स्तर पर स्थानीय जरूरत के अनुसार निर्णय का अधिकार देने तथा ग्राम पंचायत के नियंत्रण का अधिकार देने का समुचित प्रावधान किया जाना चाहिए। पंचायती व्यवस्था की संस्थाओं (जिला से लेकर ग्राम स्तर तक की) को ग्रामसभा की सर्वोच्चता को स्वीकार करते हुए उसके निर्णय एवं प्रस्ताव का पूर्ण सम्मान करना चाहिए। अपने स्तर से आवश्यकतानुसार लोक भागीदारी को प्रोत्साहित करने की विशेष पहल करनी चाहिए।

इस दिशा में स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। डॉ. चंद्रशेखर प्राण के अनुसार पंचायती राज के लक्ष्य स्वशासन, लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण, सहभागी लोकतंत्र, ग्राम गणतंत्र जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर खुली बहस का आयोजन स्वयंसेवी संगठनों की प्राथमिकता में आना चाहिए। साथ ही ग्रामसभा के संबंध में लोक जागरण का कार्य उनके एजेंडे में सबसे ऊपर होना चाहिए। उनके अनुसार यह कार्य केवल राज्य सरकारों के भरोसे नहीं किया जा सकता।[17]

संदर्भ

1. ग्रामस्वराज्य, महात्मा गांधी, नवजीवन ट्रस्ट, 1963, पृष्ठ 15
2. सामुदायिक समाज : रूप और चिंतन, सर्व सेवा संघ, वाराणसी, 1986, पृष्ठ 32
3. भारत का संविधान, अनुच्छेद 243 (ख, घ), सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद 2013, पृष्ठ 128
4. पंचायत उपबन्ध (अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार) अधिनियम, 1996, भारत सरकार का नोटिफिकेशन
5. झारखंड पंचायत राज अधिनियम 2001, धारा 10 (ख), क्राउन पब्लिकेशन, रांची 2012, पृष्ठ 8
6. पंचायती राज : हाशिये से हुकूमत तक, सं० सुधीर पाल/रमेन्द्र, आधार प्रकाशन, हरियाणा 2003, पृष्ठ 129
7. पंचायतों की स्थिति : 2007-08, पंचायती राज मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ 168
8. पश्चिम बंगाल पंचायत अधिनियम 1973 (संशोधित), धारा 16(।) पश्चिम बंगाल सरकार, पृष्ठ 23
9. जम्मू-कश्मीर पंचायती राज अधिनियम (अक्टूबर 2018 तक संशोधित), धारा 3(।), ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग, जम्मू कश्मीर 2019, पृष्ठ 5
10. तीसरी सरकार, डॉ. चंद्रशेखर प्राण, पंचपरमेश्वर प्रकाशन, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण - पृष्ठ 30
11. भारत का संविधान, अनुच्छेद 243 घ (ख), वही पृष्ठ 133
12. भूरिया कमीशन की रिपोर्ट, 2005 - गजट नोटिफिकेशन, भारत सरकार
13. भारत का संविधान, वही पृष्ठ 150 एवं 163
14. पंचायत उपबंध (अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार) अधिनियम 1976, वही
15. ग्रामसभा: दशा और दिशा, डॉ. चंद्रशेखर प्राण, पंचपरमेश्वर प्रकाशन - पृष्ठ 22
16. वही - पृष्ठ 26
17. पंचायत और गाँव समाज : पुनर्जागरण की राह, डॉ चंद्रशेखर प्राण, पंचपरमेश्वर प्रकाशन 2001, पृष्ठ 335

भरत पंड्या

गुजरात की समरस पंचायतें

ग्राम पंचायतों के चुनावों में कमोबेश वे सभी दोष आ गए हैं जिनके चलते चुनावी व्यवस्था से लोगों का मोहभंग हो रहा है। ऐसे में गुजरात में किया गया 'समरस पंचायतों' का प्रयोग एक आदर्श मार्गदर्शक हो सकता है

लोकतंत्र और उसका आधारस्तंभ चुनाव भारत के लिए कोई नई चीज नहीं है। हमारे समाज में प्राचीनकाल से ही शासन की लघुतम इकाई ग्राम का संचालन पंचायतों के माध्यम से होता रहा है और पंचायतों का गठन विदेशी दासता के भयावह दौर में भी लोकतांत्रिक तरीके से ही होता रहा है। इसके बावजूद कठिन से कठिन दौर में भी गाँवों में मुखिया या सरपंच के चुनाव को लेकर कहीं किसी मनमुटाव तक का जिक्र नहीं मिलता। किसी चुनावी गहमागहमी और किसी मतभेद या पक्षपात का वर्णन भी कहीं नहीं मिलता। इसके विपरीत व्यक्तिगत निकटता और बदले की भावना को भी तिलांजलि देकर नीर-क्षीर विवेक से न्याय तथा संसाधनों के वितरण में प्रत्येक व्यक्ति को उसका न्यायोचित अधिकार दिए जाने की घटनाओं का जिक्र इतिहास से लेकर साहित्य तक सर्वत्र बिखरा पड़ा है। मध्यकाल में छोटे-छोटे राजा आपस में भले वर्चस्व को लेकर लड़ते रहे हों, लेकिन गाँव और उसके स्वशासन की व्यवस्था उस दौर में भी आंतरिक रूप से अप्रभावित रही।

अगर इस तथ्य का सारभूत विश्लेषण किया जाए तो निष्कर्ष यही आएगा कि इसके मूल में मुख्य कारण गाँव की कई सदस्यों वाली पंचायत तथा उसके मुखिया का चुनाव सबकी सहमति से होना था। वहाँ नामांकन, चुनाव चिन्ह और मतपेटी जैसी औपचारिकताएँ शायद न निभाई जाती रही हों, लेकिन खुली बैठक में राय सबकी ली जाती रही है। गाँव के लोकतंत्र की सबसे छोटी और सबकी सामान्य पहुँच वाली इकाई होने के कारण यह आसानी से संभव भी था। क्या इसी व्यवस्था को दुबारा नहीं अपनाया जा सकता, यही बात हमारे वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के मन में शायद तब आई जब वे गुजरात के मुख्यमंत्री हुआ करते थे और उन्होंने 'समरस ग्राम पंचायतों' का प्रयोग किया।

समरस ग्राम पंचायत का अभिप्राय

'समरस' अर्थात ऐसी व्यवस्था जिसमें बिना किसी प्रतिस्पर्धा या आपसी संघर्ष के ही गुण-दोष के आधार पर सबकी सहमति से गाँव की पंचायत के सदस्य और प्रधान चुन लिए जाएँ। दूसरे शब्दों में कहें तो 'समरस' का अभिप्राय है - 'ग्रामवासियों की सर्वसम्मति से गठित पंचायत और उसका प्रधान'। इसके अंतर्गत सबके प्रयास, सबकी सम्मति और सबके विश्वास से गाँव के लोगों के द्वारा 'सरपंच' और कई सदस्यों वाली उनकी पूरी समिति को चुना जाता है। इस तरह गाँव में चुनाव लड़ने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती और बाद में राज्य का चुनाव आयोग उनको समरस ग्राम पंचायत घोषित कर देता है।

समरस ग्राम पंचायत में एकता, शांति और विकास का वातावरण रहता है। गाँव में चुनाव न लड़े जाने के कारण हार-जीत जैसी घोषणाओं से पैदा होने वाले ईर्ष्या-द्वेष जैसे भाव भी नहीं पनपने पाते। इससे गाँव के विकास के लिए सभी लोग मिल-जुल कर काम करते हैं। ऐसी स्थिति में 'सबका साथ, सबका विकास' एक लोकलुभावन नारा मात्र नहीं रह जाता। इसे यथार्थ में बदलने में 'सबका विश्वास और सबका प्रयास' शामिल हो जाता है। गाँव में राजनैतिक गुटबाजी, स्पर्धा, चुनावी लड़ाई-झगड़े बंद हो जाते हैं। सरपंच और उनकी टीम एक गुट या जाति के होकर नहीं रह जाते, बल्कि वे पूरे गाँव के प्रतिनिधि बनकर, भेदभाव के बिना सबके साथ अच्छा और समान व्यवहार और गाँव का विकास करने को ही अपना कर्तव्य मानते हैं।

पंचायत शब्द का उद्‌भव

भारतीय संस्कृति में पाँच तत्वों का बहुत महत्व है। मनुष्य का देह-पिंड पंचमहाभूतों (धरती,आकाश,जल,वायु, अग्नि) से ही बना है। ब्रह्मांड भी उन्हीं पाँच तत्वों से बना है। हम ईश्वर की पंचायतन पूजा भी करते हैं। पंचायत शब्द का उल्लेख अथर्ववेद और ऋग्वेद में मिलता है। मान्यता है कि गंगा-जमना के तट पर निवास के समय राजा पृथु ने पंचायत पद्धति का आरंभ किया था। 'पंच ही परमेश्वर' जैसी पौराणिक उक्ति को सब लोग श्रद्धा से मानते हैं। पाँच लोग मिल कर सबको सुनकर न्याय करते थे और वही सबके विकास के लिए भी जिम्मेदार होते थे। गाँवों और विविध समाजों में भी इस प्रकार की न्याय-परंपरा थी। ब्रिटिश शासन के दौरान 1907 में विकेंद्रीकरण के संदर्भ में रॉयल कमीशन की रिपोर्ट में भी लिखा था कि पहले गाँव के पास स्वायत्तता के पर्याप्त अधिकार थे।

गांधी जी ने ग्राम स्वराज के संदर्भ में लिखा था कि स्वतंत्रता की शुरुआत नींव से होनी चाहिए। हिंदुस्तान के प्रत्येक गाँव में राजकीय व्यवहार के सभी अधिकारों से संपन्न प्रजासत्तात्मक पंचायत हो। हर गाँव अपनी शक्ति पर निर्भर हो, सभी व्यवहार चलाने और आवश्यकता पड़ने पर पूरी दुनिया के सामने अपनी सुरक्षा करने में समर्थ हों। ग्राम स्वराज का आशय यह कि अपनी महत्तम इच्छाओं के लिए पड़ोसी से स्वतंत्र लेकिन आसपास, एक दूसरे पर आधारित गणतंत्र। हम अभी आत्मनिर्भर गाँव कह सकते हैं।

अभिनव प्रयोग

पंचायती राज गाँव में आर्थिक और सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विकास की जिम्मेदारी के साथ जनसंपर्क से आदर्श समाज का निर्माण करता है। सब लोगों ने यहीं तक सोचा था। लेकिन श्री नरेंद्रभाई मोदी ने इसके आगे की बात सोची। अगर पंचायत समरस होगी तो गाँव के भीतर आपसी मनमुटाव और भेदभाव नहीं होगा। सर्वसम्मति से चुनकर आने वाले सरपंच और उनकी टीम सबके साथ समता और ममता का भाव रखेगी। 'सबका साथ और सबका विश्वास' को लेकर गाँव के सर्वांगीण विकास के लिए प्रयास करेगी। लोगों की सद्‌भावना, सेवा और सहकार के वातावरण से समरस गाँव संपूर्ण सुविधापूर्ण गाँव जल्दी बन सकता है और आत्मनिर्भर गाँव की सक्षमता भी पा सकता है।

गुजरात में सन 2001 में की गई मोदी जी की यह पहल तब से लेकर अब तक न केवल बरकरार है, बल्कि समरस गाँव की यह परंपरा पूरे देश को एक श्रेयस्कर मार्ग भी दिखा रही है। अभी हाल में वर्ष 2021 में गुजरात में कुल 14292 ग्राम पंचायतों के चुनाव हुए। इनमें से 8,686 ग्राम पंचायतों के लिए चुनाव के क्रम में 19 दिसंबर को मतदान हुए और 21 दिसंबर को मतगणना हुई। उनमें 1165 गाँवों के सरपंचों और उनकी समितियों का निर्वाचन बिना कोई चुनाव लड़े ही कर लिया गया। इन गाँवों के सभी लोगों ने मिलकर सर्वसम्मति से अपने लिए सरपंच चुने और इस तरह इन्हें समरस ग्राम पंचायत घोषित किया गया। जहाँ दूसरे गाँवों में विजयी उम्मीदवारों के विजय-जुलूस निकले, फब्तीबाजियाँ हुई, कई जगह टकराव की नौबत भी आ गई, वहीं समरस गाँवों में न तो मतदान से पहले ऐसा कुछ हुआ और न मतगणना के बाद दूर-दूर तक ऐसी कोई आशंका है।

दूसरी तरफ जिन गाँवों में चुनावी प्रतिस्पर्धाएँ होती हैं, वहाँ गुटबाजी के बीज चुनाव से पहले ही पड़ जाते हैं। मतगणना के बाद यही प्रतिस्पर्धाएँ आपसी मनमुटाव और गहरे तनाव तक का कारण बन जाती हैं। आगे चलकर यह पक्षपात और विकासकार्यों के मामले में अपने ही गाँव के कुछ हिस्सों की अनदेखी कर उन्हें जान-बूझकर वंचित किए जाने के षड्यंत्र में बदल जाती है। प्रत्याशियों और उनके समर्थकों के बीच दुश्मनी और हिंसा की खबरें आए दिन आती हैं। चुनावों को लेकर जिस तरह की गुटबंदियाँ होती हैं उसके चलते जातियों, टोलों और मोहल्लों ही नहीं, कई बार तो परिवार तक में गहरी लकीरें खिंच जाती हैं और अंतत: यही लकीरें बदले की भावना में बदल जाती हैं। परिणाम यह होता है कि गाँव में हमेशा गुटबाजी, मारामारी और हिंसा चलती रहती है। चुनाव तो खत्म हो जाता है लेकिन द्वेष और प्रतिशोध की भावना बनी

दि. 6 अप्रैल 2012 को दक्षिण गुजरात के समरस ग्राम पंचायत प्रधान सम्मेलन, महात्मा मंदिर, गांधीनगर

ही रह जाती है। इस तरह पंचायत व्यवस्था के मूल में जो आधारभूत भाव सन्निहित है, वह कई मामलों में तो नष्ट ही हो जाता है। फिर इसका फायदा क्या?

जब पहली बार नरेंद्रभाई मोदी ने सभी राजनैतिक पार्टियों को समरस पंचायत बनाने की अपील की तब सभी राजनैतिक पार्टियों ने काफी हंगामा किया था। उनकी कटु आलोचना की थी। विरोध पक्ष का कहना था, "यह लोकतंत्र के खिलाफ है, लोकतंत्र का खून करने की कोशिश है।" तब मोदीजी ने कहा था, "भारत में सबसे बड़े पद राष्ट्रपति का चुनाव सर्वसम्मति से होता है। तब इसे लोकतंत्र की जीत कहा जाता है। हम देश में व्यवस्था की सबसे छोटी इकाई यानी गाँव का चुनाव जब सर्वसम्मति से कराने की बात कर रहे हैं, तो यह लोकतंत्र का खून कैसे हो गया? ग्राम पंचायत का समरस होना लोकतंत्र का खून कैसे हो सकता है?" जब कोई जवाब नहीं सूझा तो मोदी के विरोधी इसे असंभव ही बताने लगे लेकिन आज यह असंभव अवधारणा कोई एक-दो नहीं पूरे 1165 गाँवों में अपनाई जा चुकी व्यवस्था की एक सफल और सौजन्यपूर्ण पद्धति बन चुकी है।

जब पहली बार नरेंद्रभाई मोदी ने सभी राजनैतिक पार्टियों को समरस पंचायत बनाने की अपील की तब सभी राजनैतिक पार्टियों ने काफी हंगामा किया था। उनकी कटु आलोचना की थी। विरोध पक्ष का कहना था, "यह लोकतंत्र के खिलाफ है, लोकतंत्र का खून करने की कोशिश है।" तब मोदीजी ने कहा था, "भारत में सबसे बड़े पद राष्ट्रपति का चुनाव सर्वसम्मति से होता है। तब इसे लोकतंत्र की जीत कहा जाता है। हम देश में व्यवस्था की सबसे छोटी इकाई यानी गाँव का चुनाव जब सर्वसम्मति से कराने की बात कर रहे हैं, तो यह लोकतंत्र का खून कैसे हो गया? ग्राम पंचायत का समरस होना लोकतंत्र का खून कैसे हो सकता है

संदर्भ

1) https://en.wikipedia.org/wiki/Lok_Sabha
2) https://en.wikipedia.org/wiki/List_of_current_members_of_the_Rajya_Sabha
3) https://en.wikipedia.org/wiki/Member_of_the_Legislative_Assembly_(India)
4) https://lgdirectory.gov.in/
5) https://gpdp.nic.in/stateprogress.html?OWASP_CSRFTOKEN=JSRN-YEHM-HP88-2TGN-X6HD-QFHW-4CYX-XUFT
6) https://panchayat.gujarat.gov.in/gu/samras-gram-yojna

टेबल 1: गुजरात में समरस ग्राम पंचायतों का विवरण

चुनाव		संपूर्ण समरस ग्रा.पं.		अंशतः समरस ग्रा.पं.	
ग्रा.पं. (सरपंच)	वार्ड/ सदस्य	ग्रा.पं. (सरपंच)	वार्ड/ सदस्य	ग्रा.पं. (सरपंच)	वार्ड/ सदस्य
10,284	89,702	1,165	9,613	473	27,479

टेबल 2: समरस ग्राम पंचायत होने पर मिलने वाला प्रोत्साहक अनुदान

समरस ग्राम पंचायत बनने का क्रम	ग्राम पंचायत की जनसंख्या	सामान्य (पुरुष) समरस के मामले में प्रोत्साहन अनुदान	महिला समरस के मामले में प्रोत्साहन अनुदान
पहला	5,000 तक	रु.3,00,000/- के अलावा कक्षा-8 की सुविधा प्रदान करने का प्रावधान	रु.4,50,000/- के अलावा कक्षा-8 की सुविधा प्रदान करने का प्रावधान
	5,001से 25,000तक	रु.4,50,000/- के अलावा कक्षा-8 की सुविधा प्रदान करने का प्रावधान	रु.7,50,000/- के अलावा कक्षा-8 की सुविधा प्रदान करने का प्रावधान
दूसरा	5,000 से	रु 3,75,000/- अलावा सी.सी. रोड के लिए रु.2,00,000/* सहायता	रु.5,75,000/- अलावा सी.सी.रोड के लिए रु 2,00,000/* सहायता
	5,001 से 25,000 तक	रू.5,75,000/- अलावा सी.सी. रोड के लिए रू.2,00,000/- सहायता	रु.9,50,000/- अलावा सी.सी.रोड के लिए रू.2,00,000/- सहायता
तीसरा	5,000 तक	रू.4,75,000/- अलावा विकास कार्यो के लिए रू.3,00,000/- सहायता	रू.7,00,000/- अलावा विकास कार्यो के लिए रू.3,00,000/- सहायता
	5,001से 25,000तक	रू.7,00,000/- अलावा विकास कार्यो के लिए रू.3,00,000/- सहायता	रू.11,75,000/-अलावा विकास कार्यो के लिए रू.3,00,000/- सहायता
चौथा	5,000 तक	रू.5,25,000/- अलावा विकास कार्यो के लिए रू.3,00,000/- सहायता	रू.7,50,000/- अलावा विकास कार्यो के लिए रू.3,00,000/- सहायता
	5,001से 25,000तक	रू.7,50,000/- अलावा विकास कार्यो के लिए रू.3,00,000/- सहायता	रू.12,00,000/- अलावा विकास कार्यो के लिए रू.3,00,000/- सहायता

समरस ग्राम पंचायत बनने का क्रम	ग्राम पंचायत की जनसंख्या	सामान्य (पुरुष) समरस के मामले में प्रोत्साहन अनुदान	महिला समरस के मामले में प्रोत्साहन अनुदान
पाँचवाँ	5,000 तक	रू.5,50,000/- अलावा विकास कार्यो के लिए रू.3,00,000/- सहायता	रू.8,00,000/- अलावा विकास कार्यो के लिए रू.3,00,000/- सहायता
	5,001से 25,000तक	रू.8,00,000/- अलावा विकास कार्यो के लिए रू.3,00,000/- सहायता	रू.13,00,000/-अलावा विकास कार्यो के लिए रू.3,00,000/- सहायता

टेबल 3: समरस ग्राम पंचायतों को सरकार की ओर से दिए गए प्रोत्साहन अनुदान

वर्ष	ग्रा.पं.चुनाव	समरस ग्रा.पं.	महिला सरपंच	अनुदान रू.(लाख में)
2001-02	10467	2857	10	1735.5
2002-03	1680	621	0	3806
2003-04	1586	423	0	2566
2004-05	68	14	0	8.4
2006-07	10355	2864	13	3266.82
2007-08	2004	714	5	641.87
2008-09	1429	432	4	239.25
2009-10	702	199	2	228.81
2010-11	0	124	0	128.12
2011-12	10405	2123	250	5562.25
2012-13	1728	422	71	1098.75
2013-14	1427	322	39	1283.19
2016-17	10279	1384	163	765.75
2017-18	3364	735	74	7529.88
2018-19	312	110	7	995.50
कुल	**55806**	**13344**	**645**	**24121.29**

फार्म-4

'मंथन' के स्वामित्व तथा अन्य ब्यौरे

प्रकाशन स्थान	:	नई दिल्ली
प्रकाशन अवधि	:	त्रैमासिक
मुद्रक	:	प्रिंट क्राफ्ट इंडिया
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शाहदरा, दिल्ली
प्रकाशक एवं स्वामी	:	डॉ. महेश चन्द्र शर्मा एवं एकात्म मानवदर्शन अनुसंधाान एवं विकास प्रतिष्ठान
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002
संपादक	:	डॉ. महेश चन्द्र शर्मा
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002

मैं डॉ. महेश चन्द्र शर्मा एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिक से अधिक जानकारी और मेरे विश्वास में ठीक है।

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा
प्रकाशक

तिथि: 1 मार्च, 2022

अवनेश कलिक

मजबूत पंचायत व्यवस्था हेतु विभिन्न समितियों के सुझाव

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से लेकर अब तक पंचायती राज व्यवस्था में सुधार के लिए कई समितियाँ गठित की गई। इन समितियों ने सघन अध्ययन के बाद अपने सुचिंतित सुझाव भी दिए। समितियों और उनके सुझावों का एक ब्योरा

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सरकार की पहली प्राथमिकता यह रही है कि देश की जनता को गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी, अशिक्षा और सामाजिक-आर्थिक बुराइयों से मुक्ति दिलाए और इसीलिए केंद्र सरकार ने कई विकासकेंद्रित कार्यक्रम शुरू किए। प्रथम पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत सामुदायिक विकास योजना लागू की गई, यद्यपि यह कार्यक्रम अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में अपेक्षा के अनुरूप सफल नहीं हो सका। जिसका मुख्य कारण यह था कि इन कार्यक्रमों में लोगों की भागीदारी नहीं हो सकी। ये योजनाएँ पूरी तरह सरकारी विभागों द्वारा संचालित की गईं। जिसके कारण पंचायतें पूरी तरह से निष्क्रय हो गई तथा लोगों व सरकारी विभागों के बीच दूरी बढती चली गई।

अत: दूसरी पंचवर्षीय योजना में यह बात उभर कर आई कि विकास कार्यक्रमों की सफलता के लिए ग्रामीण समाज, खासतौर से गरीब तबकों, को जिला तथा उसके नीचे की लोकतांत्रिक संस्थाओं के माध्यम से भागीदार बनाना आवश्यक है। समय-समय पर सरकार ने अध्ययन समितियाँ गठित की तथा उनके अनुमोदनों के आधार पर संविधान में अपेक्षित संशोधन भी किए।

बलवंत राय मेहता समिति (1957)

विकास कार्यक्रम के अपेक्षित परिणाम न मिलने पर अतत: केंद्र सरकार ने बलवंत राय मेहता समिति का गठन किया। इस समिति के गठन का मुख्य उद्देश्य यह पता लगाना था कि लोगों में पंचायतों के प्रति उत्साह क्यों कम है तथा इस समस्या को हल करने के लिए क्या तरीके अपनाए जाने चाहिए। मेहता समिति ने निम्नवत सिफारिशें की -

- आम लोगों को ग्रामीण विकास योजनाओं में भागीदार बनाने के लिए आवश्यक है कि सत्ता का विकेंद्रीकरण हो।
- विकेंद्रीकृत प्रशासनिक ढाँचा निर्वाचित निकायों के हाथों में होना चाहिए।
- ग्राम पंचायत, पंचायत समिति, जिला परिषद् इन तीनों स्तरों पर पंचायती राज व्यवस्था की सिफारिश की।
- संस्थाओं को कानूनी दर्जा मिलना चाहिए तथा इनके अधिकार व कर्तव्य साफ-साफ परिभाषित होने चाहिए।
- इन निकायों को अपना कार्य करने के लिए समुचित वित्तीय साधन मिलना आवश्यक है।

बलवंत राय समिति की रिपोर्ट को राष्ट्रीय विकास परिषद ने स्वीकार किया और उसके बाद सभी राज्यों ने तीन स्तरीय पंचायती राज प्रणाली अपनाई। राजस्थान पहला राज्य था जिसमें देश में पंचायती राज का उद्घाटन 2 अक्टूबर 1959 को नागौर में किया गया।

केंद्र के सुझावों के अनुरूप प्रदेश स्तर पर भी विधायकों की एक समिति बनाई गई जिसने अधिनियम में आवश्यक संशोधनों पर अपनी रिपोर्ट दी। इसके अनुसार संयुक्त प्रांत पंचायती राज अधिनियम 1947 में संशोधन किए गए। इन संशोधनों के दूरगामी परिणाम थे।

- गाँव सभा तथा गाँव संभाग के अधिकार क्षेत्र का एकीकरण कर दिया गया।
- प्रत्येक गाँव जिसकी जनसंख्या 250 या अधिक थी में गाँव सभाएँ बनाई गई।
- पंचायत न्यायालयों का नाम बदल कर न्याय पंचायत रख दिया गया।
- कृषि समितियों, कृषि उत्पादन तथा कल्याण उपसमितियों का गठन किया गया।

उत्तर प्रदेश की पंचायतों के इतिहास में सन् 1961 मील का पत्थर था इस वर्ष उत्तर प्रदेश क्षेत्र समिति तथा जिला परिषद अधिनियम, 1961 पारित तथा क्रियान्वित किया गया।

अशोक महेता समिति (1977)

पंचायती राज व्यवस्था के विधिवत् क्रियान्वयन से देश को अनेक लाभ हुए पहले तो यह कि देश भर में लोकतांत्रिक व्यवस्था का बीजारोपण हुआ दूसरे कुछ हद तक नौकरशाही व जनता के बीच फासला कम हुआ। लेकिन कुल मिलाकर यह पंचायती राज व्यवस्था भी जनता की आकांक्षाओं को पूरा नहीं कर सकी, इसके बाद सरकार ने 1977 में अशोक मेहता समिति का गठन किया। जिसने एक वर्ष पश्चात् 1978 में मूल्यांकन रिपोर्ट प्रस्तुत की। समिति ने पंचायतों के विकास को तीन चरणों में विभाजित किया-

- उभार (1959-1964)
- गतिरोध (1965-1969)
- ह्रास (1969-1977)

समिति ने माना कि कुछ एक राज्यों को छोड़कर अधिकतर राज्यों में पंचायतों को योजना बनाने तथा क्रियान्वयन का अधिकार नहीं दिया। नौकरशाही की भूमिका का उल्लेख करते हुए समिति ने कहा कि अधिकारी यह अनुभव करते रहे कि वे वित्तीय प्राथमिकताओं के परिणाम दिलाने के लिए प्रमुख रूप से राज्यों के उत्तरदायी है तथा निर्वाचित प्रतिनिधियों की देखरेख में काम करने के लिए अपने आपको आसानी से तैयार नहीं कर सके। समिति ने राजनैतिक इच्छाशक्ति के अभाव तथा पंचायतों के उद्देश्यों को लेकर अस्पष्टता की स्थिति को भी व्यक्त किया।

समिति ने पंचायतों को मजबूत बनाने के लिए निम्नवत् सिफारिशें की:-

- पंचायतें दो स्तर जिला तथा ब्लाक स्तर पर गठित होनी चाहिए। ग्रामों को ग्राम समितियों के माध्यम से मंडल पंचायत में शामिल किया जाना चाहिए।
- पंचायतों में अनुसूचित जनजाति, व अनुसूचित जाति को जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए।
- पंचायतों का कार्यकाल 4 वर्षो का होना चाहिए।
- ग्रामसभा का गठन तथा इसकी दो सभाएँ हों।
- पंचायती राज चुनावों में राजनैतिक दलों की भागीदारी होनी चाहिए।
- राज्य सरकारों को संबंधित स्थानीय स्तरों पर पर्याप्त कार्यो और अधिकारों का विकेंद्रीकरण करना चाहिए तथा उसी अनुपात में वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराए जाने चाहिए।
- जिला परिषद पर आवश्यकताओं के अनुरूप जिला योजनाएँ बनाने/इसके लिए योग्य समिति का गठन हो।
- अधिकारियों को पंचायतों को हस्तानांतरित कर दिया जाए
- पंचायतों का संसाधन इकट्ठा करने के लिए उपकर लगाने का अधिकार हो।
- सरकारी कर्मचारियों/निवार्चित प्रतिनिधियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम होने चाहिए तथा जन समर्थन जुटाने के लिए स्वैच्छिक संस्थाओं को प्रोत्साहन देना चाहिए।
- अन्य संस्थाओं के साथ पंचायत संस्थाओं में संबंध व समन्वय होना चाहिए।

समिति के सिफारिशों के आधार पर उत्तर प्रदेश में भी मूल अधिनियम में एक संशोधन 1980 के पूर्वाह्न में किया गया जिसके अनुसार मतदाताओं की न्यूनतम आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दी गई तथा पंचायत सदस्यों के 30 प्रतिशत पद महिलाओं के लिए आरक्षित कर दिए गए।

जी.के.वी. राव समिति की रिपोर्ट (1985)

समिति ने पंचायतों की आर्थिक स्थिति उनके चुनाव तथा कार्यकलापों पर प्रकाश डालते हुए कहा कि राज्य सरकारें लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया के प्रति उदासीन रही हैं।

समिति ने मुख्य रूप से सिफारिश की कि योजना बनाने की शक्ति जिला स्तर पर पंचायतों को सौंपी जाए, महिलाओं को अधिक प्रतिनिधित्व मिले, जिला स्तर के सभी कार्यालय स्पष्ट रूप से जिला परिषद के अधीन हों, वित्त आयोग द्वारा धनराशि का आवंटन हो।

1980 के दशक में एक अन्य संशोधन में उत्तर प्रदेश सरकार ने पंचायतों में महिला प्रतिनिधित्व को बढ़ाने के लिए 30 प्रतिशत पद महिलाओं के लिए आरक्षित कर दिए तथा 1987 से जवाहर रोजगार योजना पंचायतों को दे दी गई।

सिंघवी समिति (1986)

पंचायती राज पर 'कंसेंट पेपर' तैयार करने के लिए ग्रामीण विकास मंत्रालय ने 1986 में एल. एम. सिंघवी की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। इस समिति ने पंचायतों को जीवंत संस्थाएँ बनाने के लिए इन्हें संवैधानिक दर्जा देने की सिफारिश की।

उसके बाद दिसंबर 1987 से 1988 के दौरान पाँच कार्यशालाएँ जिलाधीशों के साथ रेस्पॉन्सिव एडमिनिस्ट्रेशन (जवाबदेह प्रशासन) विषय पर आयोजित की गई। इन्हें तात्कालिक प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने स्वयं संबोधित किया। इन कार्यशालाओं से यह तथ्य उभरकर आया कि स्थानीय स्तर पर जवाबदेह प्रशासन के लिए लोकतांत्रिक संस्थाएँ गठित करना आवश्यक है। कई राज्यों से संविधान संशोधन की माँग आई। अंत में 1988 में संसद की एक उपसमिति गठित की गई जिसने पंचायतों को संवैधानिक दर्जा देने की सिफारिश की।

1989 में राजीव गांधी की सरकार ने 64वाँ संशोधन विधेयक पेश किया। वह लोकसभा से तो पारित हो गया लेकिन राज्यसभा से पारित नहीं कराया जा सका। इसी विधेयक में 1990 में वी.पी. सिंह की सरकार ने संशोधन कराए लेकिन इसके पहले कि वह संशोधित विधेयक को संसद में प्रस्तुत कर पाते, उनकी सरकार ही गिर गई। 1991 में पी.वी. नरसिम्हा राव की सरकार ने मत्रियों के एक समूह की सिफारिश के आधार पर 73वें संशोधन के रूप में विधेयक पेश किया, जो 22 दिसंबर 1992 को संसद द्वारा पारित कर दिया गया। 24 अप्रैल 1993 को राष्ट्रपति के हस्ताक्षर होने के बाद संविधान (73वें संशोधन) अधिनियम 1992 के रूप में इसे निर्णायक रूप मिला। इसी आधार पर एक वर्ष के अंदर सभी राज्यों ने अपने-अपने पंचायती राज अधिनियम को संशोधित किया।

मनोज राय

दायित्ववान एवं सशक्त पंचायतें

भारतवर्ष में शासन के विकेंद्रीकरण तथा लोकतंत्र के वास्तविक विकास के लिए पंचायतों को सशक्त बनाया जाना अत्यंत आवश्यक है और उतना ही आवश्यक है उन्हें उत्तरदायी बनाया जाना। एक यथार्थपरक विश्लेषण

भारत में प्राचीनकाल से ही ग्राम स्तर की पंचायतों और सभाओं की लंबी परंपरा रही है। इतिहास के विभिन्न कालखंडों ने स्थानीय सरकारों के विभिन्न स्वरूपों को देखा है। उस समय की स्थानीय सरकारों ने शासकों के हितों के आधार पर ही उनके उत्थान और पतन का अनुभव किया। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान महात्मा गांधी ने ग्राम स्वराज यानी ग्राम स्वशासन का ही पक्ष लिया था। उन्होंने प्रत्येक गाँव को एक गणतंत्र या पंचायत के रूप में देखा, जो स्वयं के मामलों का प्रबंधन करने में सक्षम हो। किंतु महात्मा गांधी के मजबूत समर्थन के बावजूद, स्वतंत्र भारत में पंचायतों को संवैधानिक वैधता प्राप्त न हो सकी। पंचायती राज के समर्थकों के लिए एक सांत्वना के रूप में, राज्य नीति निर्देशक सिद्धांत के अनुच्छेद 40 में पंचायतों का उल्लेख किया गया। स्वतंत्र भारत ने कई पहल की और कई समितियों का गठन किया, जिसमें मेहता समिति भी शामिल थी, जिसने हर राज्य में पंचायतों के तीन स्तरों की स्थापना के लिए संस्तुतियाँ दीं। इन समितियों ने पंचायतों के लिए स्पष्ट भूमिकाओं, जिम्मेदारियों और प्राधिकरण का सुझाव दिया, लेकिन पर्याप्त राजनीतिक समर्थन की कमी के कारण पंचायतें राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत स्थानीय स्वशासन प्रणाली के रूप में उभर नहीं पाई हैं। तथापि, राज्य सरकारों के नेताओं की राजनीतिक पसंद के आधार पर, विभिन्न राज्यों में पंचायत प्रणाली अलग-अलग विकसित हुई। यह 1993 में 73वें संविधान संशोधन अधिनियम का अध्यादेश था, जिसने राष्ट्रीय स्तर पर पंचायतों को संवैधानिक वैधता और कानूनी ढाँचा प्रदान किया।

यह ध्यातव्य है कि पंचायती राज संस्थाओं को मजबूत करने के लिए संवैधानिक संशोधन अधिनियमों के अध्यादेश के लिए कोई सार्वजनिक माँग नहीं की गई थी। यद्यपि भारत वित्तीय दबाव का सामना कर रहा था, नब्बे के दशक की शुरुआत में, भारत और दुनिया के कई देश आर्थिक पुनर्गठन का अनुसरण कर रहे थे। इसके अतिरिक्त, भारत मंडल (आरक्षण) और कमंडल (अयोध्या) मुद्दों के कारण सामाजिक तनाव का सामना कर रहा था। इन परिस्थितियों के वावजूद,73वें और 74वें संशोधन अधिनियमों ने भारत के समाजशास्त्र और राजनीति में व्यापक परिवर्तन के बीज बोए। यह युगांतरकारी संशोधन ग्राम-राजनीति का चेहरा निर्णायक रूप से बदलने के लिए चुपचाप आया। ऐसा लगता है कि न तो राजनीतिक नेतृत्व और न ही नौकरशाही को 73वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम के सामर्थ्य का एहसास हुआ। यही कारण है कि महिलाओं के लिए अभी तक तक बंद सार्वजनिक स्थानों को खोलने और स्थानीय सरकारों को राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों के हस्तांतरण पर किसी ने चिंता नहीं जताई। संसद ने बिना सामान्य शोर-शराबे के संशोधन अधिनियम पारित किया, जो महिलाओं के लिए सीटों के आरक्षण पर चर्चा के दौरान आम तौर पर संसद में देखा जाता है।

73वें संविधान संशोधन अधिनियम के अनिवार्य प्रावधानों ने सुनिश्चित किया कि हर जगह की पंचायतों में: (i) ग्रामसभाएँ, (ii) तीन स्तरों- ग्राम पंचायतें, मध्यवर्ती पंचायतें और जिला पंचायतें (20 लाख से कम आबादी वाले राज्यों को मध्यवर्ती स्तर न रखने का विकल्प दिया गया था)। (iii) अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति (उनकी आबादी के अनुपात में) और महिलाओं के लिए सीटों का आरक्षण (सभी स्तरों पर एक तिहाई सीटें- विभिन्न राज्यों ने बाद में महिलाओं को 50% आरक्षण प्रदान किया)

(iv) 5 वर्ष का कार्यकाल पूरा होने के बाद अनिवार्य चुनाव। राज्य चुनाव आयोग द्वारा अब तक हर राज्य में पंचायत चुनाव के छह दौर पूरे किए गए हैं। (v) राज्य वित्त आयोग राज्य के वित्त की समीक्षा करने के लिए हर राज्य में काम कर रहे हैं और राज्य से पंचायतों और नगर पालिकाओं को उचित अंतरण की सिफारिश करते हैं। इस कानून ने 74वें संशोधन अधिनियम के साथ राज्यों को विकास योजनाएँ तैयार करने के लिए प्रत्येक जिले में जिला योजना समितियों का गठन करने का निर्देश दिया। इस अधिनियम ने कार्यों की एक सांकेतिक सूची भी प्रदान की है, जिसे संबंधित राज्यों द्वारा पंचायतों को हस्तांतरित किया जाना चाहिए। उनतीस कार्यों की यह सांकेतिक सूची संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची का हिस्सा है।

स्थानीय सरकारें (पंचायत और शहरी स्थानीय निकाय) भारत में सरकारों का तीसरा पोलक (सामाजिक वर्ग) हैं। अन्य दो केंद्र और राज्य सरकारें हैं। पंचायतें भारत के संविधान में राज्य सूची का हिस्सा हैं। इसलिए, पंचायतों को यथोचित अधिकार, धन और पदाधिकारी प्रदान कर पंचायती राज संस्थाओं के मजबूत बनाने की जिम्मेदारी मुख्य रूप से राज्य सरकारों को सौंपी गई है। केंद्र सरकार अपने पंचायती राज मंत्रालय के माध्यम से मार्गदर्शक भूमिका निभाती है, लेकिन पंचायतों को विकास और लोगों के लिए काम करने के लिए सक्षम वातावरण प्रदान करने में राज्यों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। राज्य सरकारें पंचायतों को शक्तियों और प्राधिकारो के वास्तविक अंतरण पर निर्णय लेती हैं। यही कारण है कि राष्ट्रीय स्तर पर एक समान ढाँचा होने के बावजूद विभिन्न राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं का अलग-अलग विकास हुआ है।

राज्यों में पंचायतें

पंचायती राज मंत्रालय के आँकड़ों[1] के अनुसार, 662 जिला पंचायतों, 6672 मध्यवर्ती पंचायतों और 255361 ग्राम पंचायतों[2] में 31.9 लाख निर्वाचित पंचायत प्रतिनिधि हैं। इन निर्वाचित प्रतिनिधियों में से 14.5 लाख महिलाएँ हैं। ये आँकड़े भारत में लोकतंत्रीकरण के प्रसार और गहनता को दर्शाते हैं। निर्वाचित पंचायत प्रतिनिधियों की कुल संख्या दुनिया के अट्ठानबे देशों की कुल जनसंख्या[3] (वर्ष 2021 के लिए) से अधिक है।

प्रत्येक राज्य ने 73वें संशोधन अधिनियम के सभी अनिवार्य प्रावधानों का अनुकरण किया है। तदनुसार ज्यादातर राज्यों ने पंचायत चुनाव के पाँच दौर पूरे कर लिए हैं। कई राज्यों ने हाल ही में पंचायत चुनाव का छठा दौर पूरा किया है।अब तक 5 राज्य वित्त आयोगों ने अधिकांश राज्यों में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की है। हरियाणा, केरल, तमिलनाडु, राजस्थान और अन्य की सरकारें पहले ही अपने-अपने राज्यों में छठे राज्य वित्त आयोग का गठन कर चुकी हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जिला योजना समितियाँ हर जिले में कार्यरत हैं। टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज[4] द्वारा 2015-16 में तैयार की गई अंतरण रिपोर्ट में पाया गया कि अधिकांश राज्यों ने बीस से अधिक कार्यों (ग्यारहवीं अनुसूची में उल्लिखित 29 कार्यों में से) को पंचायतों को हस्तांतरित कर दिया है। केंद्रीय वित्त आयोग के साथ-साथ राज्य वित्त आयोग ने पंचायतों को निधियों के हस्तांतरण की संस्तुति दी है। पंद्रहवें वित्त आयोग ने, उदाहरण के तौर पर, 2021-22 के लिए ग्राम पंचायतों को 44901 करोड़ के सशर्त और शर्त-रहित अनुदान की संस्तुति दी है। विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है कि पंचायतें मनरेगा की 80% से अधिक निधियों का उपयोग करती हैं। केंद्रीय बजट के अनुसार, 2021-22 के लिए मनरेगा के लिए कुल आवंटन 73,000 करोड़ रुपये है। राज्यों की वित्तीय क्षमता के आधार पर संबंधित राज्य वित्त आयोग ग्राम पंचायतों के लिए हर साल हजारों करोड़ रुपये की संस्तुतियाँ देते हैं। तदनुसार, मोटे तौर पर गणना से पता चलता है कि नरेगा, पंद्रहवें वित्त आयोग अनुदान और राज्य वित्त आयोग अनुदान के साथ, भारत में ग्राम पंचायतों को स्थानीय विकास के लिए खर्च करने के लिए हर साल 100,000 करोड़ रुपये से अधिक प्राप्त होते हैं। यह वर्ष 2021-22 के लिए पंचायतों को उपलब्ध कुल धनराशि का सन्निकट अनुमान है। करीब 2.6 लाख ग्राम पंचायतों में अगर एक लाख करोड़ बराबर बांट दें तो प्रति ग्राम पंचायत से 38 लाख रुपये से ज्यादा निकलेंगे। इसलिए ये कच्चे आकलन बताते हैं कि स्थानीय विकास पर खर्च करने के लिए ग्राम पंचायत के लिए औसतन कम से कम 20 से 40 लाख रुपये उपलब्ध हैं।

उपलब्ध रिपोर्टों और अभिलेखों से, भारत में एक ग्राम पंचायत की औसत जनसंख्या लगभग 3000 हो सकती है। यद्यपि, वास्तविक आँकड़े में व्यापक अंतर हैं। उदाहरण के लिए, हरियाणा में अधिकांश ग्राम पंचायतों की जनसंख्या तीन हजार से कम है। लेकिन केरल में एक औसत ग्राम पंचायत का आकार 25000 या उससे अधिक हो सकता है। ग्राम पंचायतों को दिए गए अधिकारों के बारे में एक विचार के रूप में, सुरक्षित रूप से यह कहा जा सकता है कि भारत में एक ग्राम पंचायत औसतन 20 विकास कार्यों पर निर्णय लेती है और विकास गतिविधियों को लागू करने के लिए प्रति वर्ष 20 लाख रुपये से अधिक खर्च करती है। ऐसा करने में, ग्राम पंचायतों के निर्वाचित प्रतिनिधियों को 3 से 5 कार्यकर्ताओं का

उपलब्ध रिपोर्टों और अभिलेखों से भारत में एक ग्राम पंचायत की औसत जनसंख्या लगभग 3000 हो सकती है। यद्यपि, वास्तविक आँकड़े में व्यापक अंतर हैं। उदाहरण के लिए, हरियाणा में अधिकांश ग्राम पंचायतों की जनसंख्या तीन हजार से कम है। लेकिन केरल में एक औसत ग्राम पंचायत का आकार 25000 या उससे अधिक हो सकता है। ग्राम पंचायतों को दिए गए अधिकारों के बारे में एक विचार के रूप में, सुरक्षित रूप से यह कहा जा सकता है कि भारत में एक ग्राम पंचायत औसतन 20 विकास कार्यों पर निर्णय लेती है और विकास गतिविधियों को लागू करने के लिए प्रति वर्ष 20 लाख रुपये से अधिक खर्च करती है

सहयोग प्राप्त होता है, जो कि सरकार द्वारा विशेष रूप से पंचायतों के सहयोग के लिए नियुक्त किए गए होते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि राज्यों की ग्राम पंचायतों को स्थानीय स्तर पर विकास कार्य करने के लिए पर्याप्त संसाधन मिल रहे हैं। लेकिन यही बात दो अन्य स्तरों, ब्लॉक और जिला पंचायतों के लिए सही नहीं हो सकती। एक खंड पंचायत को उक्त खंड के तहत ग्राम पंचायतों के बीच समन्वय और अभिसरण की भूमिका निभानी होती है। यह खंड स्तर पर विकास प्रशासन को निर्वाचित पंचायतों से जोड़ता है। जिला पंचायत को जिले में विकास संबंधी नियोजन प्रक्रियाओं का मेजबान माना जाता है। जिला पंचायत को राज्य और जिले की स्थानीय सरकारों के बीच एक प्रभावी कड़ी के रूप में भी कार्य करना चाहिए। ऐसा लगता है कि मध्यवर्ती (खंड) और जिला पंचायतों की भूमिका और प्रासंगिकता बहुत स्पष्ट नहीं है। अब इन दो महत्वपूर्ण सोपानों की भूमिकाओं की समीक्षा और संशोधन करने का समय है। इन दो सोपानों को फिर से सक्रिय करने और उन्हें पंचायती राज की त्रिस्तरीय प्रणाली के साथ फिर से जोड़ने का प्रयास किया जाना चाहिए।

पंचायतों का प्रदर्शन

राजीव गांधी का प्रसिद्ध उद्धरण था कि दिल्ली से किसी गाँव के लिए भेजे गए एक रुपये में से केवल 15 पैसे ही उस गाँव तक पहुँचते थे। वह समय था जब भारत में संवैधानिक ग्राम पंचायतें नहीं थीं। तब सरकार के स्थानीय अधिकारी, जिनमें ग्राम विकास अधिकारी, खंड विकास अधिकारी, जिला विकास अधिकारी और जिला समाहर्ता (कलेक्टर) शामिल होते थे, ही ग्राम विकास के संरक्षक होते थे। इसलिए ग्राम विकास के लिए निधियों का 'प्रबंधन' भी इन्हीं अधिकारियों द्वारा किया जाता था। कुछ गाँवों को विकास मिला, लेकिन कइयों को नहीं मिला।

उपरोक्त परिदृश्य अब पूरी तरह से बदल गया है। आज प्रत्येक ग्राम पंचायत को ग्राम पंचायत के बैंक खाते में सीधे अंतरण के माध्यम से केंद्र और राज्य सरकारों से धन प्राप्त होता है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, प्रत्येक ग्राम पंचायत में विकास

राजीव गांधी का प्रसिद्ध उद्धरण था कि दिल्ली से किसी गाँव के लिए भेजे गए एक रुपये में से केवल 15 पैसे ही उस गाँव तक पहुँचते थे। वह समय था जब भारत में संवैधानिक ग्राम पंचायतें नहीं थीं। तब सरकार के स्थानीय अधिकारी, जिनमें ग्राम विकास अधिकारी, खंड विकास अधिकारी, जिला विकास अधिकारी और जिला समाहर्ता शामिल होते थे, ही ग्राम विकास के संरक्षक होते थे। इसलिए ग्राम विकास के लिए निधियों का 'प्रबंधन' भी इन्हीं अधिकारियों द्वारा किया जाता था। कुछ गाँवों को विकास मिला, लेकिन कइयों को नहीं मिला

कार्यों के लिए औसतन 20 से 40 लाख रुपये आवंटित किए जाते हैं।

तदनुसार, प्रत्येक गाँव विकास कार्यों के विभिन्न स्तरों का अनुभव करता है। यह अलग बात है कि इन निधियों का कहाँ कितनी सटीकता और कुशलता से उपयोग किया जाता है। लेकिन पंचायत पूर्व काल के विपरीत, हर गाँव में विभिन्न प्रकार के विकास कार्य हुए हैं। पंचायत चुनावों में लगातार बढ़ रहे मतदान प्रतिशत का भी एक आशययह है कि ग्रामीणों को अपनी पंचायतों से बहुत उम्मीदें हैं।

पंचायतें सबसे निकटवर्ती सरकारें हैं। इसलिए, वे जानती हैं कि किसके लिए क्या आवश्यक है। स्थानीय स्तर पर सेवाएँ देने के लिए केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा भारी मात्रा में प्रशासनिक व्यय करना पड़ता है। लेकिन पंचायतें नगण्य प्रशासनिक खर्चों के साथ सेवाओं के समान स्तर और समान गुण प्रदान करती हैं।

उदाहरण के लिए, विशेषज्ञों का कहना है[5] कि केरल में पंचायतें उसी स्तर की (यदि उससे बेहतर नहीं तो) स्थानीय सेवाएँ सामान्य लागत से कम मूल्य पर प्रदान करती हैं। विभिन्न विकास योजनाओं (पीएमएवाई, पीएमजीएसवाई, मनरेगा, स्वच्छ भारत, आदि) को लागू करने में पंचायत की भूमिका केंद्र प्रायोजित योजनाओं के कार्यान्वयन में पहले के नौकरशाही प्रयासों की तुलना में अधिक प्रभावी रही है।

हाल ही में, प्रधानमंत्री और अन्य गणमान्य व्यक्तियों ने जागरूकता पैदा करने और कोविड प्रोटोकॉल के प्रबंधन में पंचायतों की भूमिका की सराहना की। पंचायतों को इसका श्रेय दिया जाना चाहिए कि वे जागरूकता पैदा करने और संरोधन क्षेत्र बनाकर तथा प्रबंधन करके कोविड संक्रमण के प्रसार को कम करने में सक्षम सिद्ध हुई। लोगों को शायद याद होगा कि किस तरह विभिन्न पंचायतों ने अपने स्कूलों और अन्य आधारभूत सुविधाओं का इस्तेमाल शहरों से आने वाले गाँव के निवासियों को पृथक करने के लिए किया था।

हालाँकि यहाँ यह बात भी स्पष्ट कर दी जानी चाहिए कि इन चर्चाओं का अर्थ यह नहीं है कि पंचायतें उत्कृष्ट प्रदर्शनकर्ता हैं। वे दूसरों की तुलना में बेहतर कही सकती हैं लेकिन स्थानीय सुविधाओं और सेवाओं के वितरण में पंचायतों की भूमिका में सुधार करने की बड़ी संभावनाएँ हैं। पंचायतों को गाँवों में गरीबों और कमजोर लोगों की जरूरतों के प्रति अधिक उदार और अधिक संवेदनशील होने की जरूरत है।

पंचायती राज बनाम सरपंच राज

पंचायत शब्द का अर्थ है पांच (पंच) की सभा (आयत) और राज का अर्थ है शासन[6]। अर्थात ग्राम पंचायत का अर्थ है निर्वाचित सरपंच और निर्वाचित वार्ड सदस्यों के प्रतिनिधियों का समूह। ग्रामसभा भी ग्राम पंचायत का ही हिस्सा है। संविधान ग्रामसभा की बैठकों में ग्रामीणों की भागीदारी के माध्यम से ग्राम स्तर पर प्रत्यक्ष लोकतंत्र की कल्पना करता है। निर्वाचित अधिकारियों के समूह (पंचायत प्रतिनिधि) को मिलकर ग्राम सरकार के मामलों का प्रबंधन करना चाहिए। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि इस संरचना को अस्त-व्यस्त करके नीचा कर दिया गया है। दुर्भाग्य से, एक ग्राम पंचायत सरपंच या प्रधान, या मुखिया का पर्याय बन गई

है। ग्रामसभाएँ केवल कागज सभा बन कर रह गई हैं, जहाँ ग्रामसभाओं में उपस्थिति कागजों पर दर्ज की जाती है, और शेष औपचारिकताओं को हस्ताक्षर और अंगूठे के निशान की रीकोडिंग के साथ पूरा माना लिया जाता है।

केंद्र और राज्य सरकारों को भी प्राय: प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री की सरकारों के रूप में जाना जाता है। उदाहरण के लिए केंद्र में मोदी सरकार और राजस्थान में गहलोत सरकार। हालाँकि, अपेक्षा यह की जाती है कि दोनों सरकारों में अधिकांश सरकारी निर्णय सामूहिक रूप से मंत्रिमंडल लेते हैं। शायद यही अनुरूपता ग्राम पंचायत स्तर पर अपेक्षित थी। लेकिन मामला कुछ अस्त-व्यस्त सा हो गया। शायद, यह सब संघ और राज्य सरकारों से औपचारिक संचार और निमंत्रण के साथ प्रारम्भ हुआ, जो सरपंचों के नाम पर थे। बाद में स्थानीय नौकरशाहों, गैर सरकारी संगठनों के सदस्यों और स्थानीय मीडिया ने सरपंचों के साथ विशेष रूप से व्यवहार करना शुरू कर दिया।

किसी ने भी इस तरह के अंतरफलक में अन्य निर्वाचित प्रतिनिधियों को शामिल करने की जहमत नहीं उठाई। परिणामस्वरूप, अन्य निर्वाचित प्रतिनिधियों को शासन प्रक्रियाओं से बाहर कर दिया गया है। सरपंचों ने अन्य निर्वाचित प्रतिनिधियों और/या ग्रामसभाओं से परामर्श किए बिना निर्णय लेना शुरू कर दिया। पिछले 3 दशकों के दौरान, सरपंच ग्राम स्तर पर सरकारों के एकमात्र प्रतिनिधि बन गए हैं। जैसा कि होता है, व्यक्तिगत रूप से सरपंच अक्सर पंचायत स्तरों पर विधायी शासन प्रक्रियाओं के प्रति जवाबदेह महसूस नहीं करते हैं। यह पंचायती राज के भविष्य के लिए खतरनाक उत्थान है। सरकारों और नागरिक समाज को केवल सरपंचों से जुड़ने की अपनी इस आदत को ही बंद करना चाहिए। अभी इसे अगर दृढ़तापूर्वक हतोत्साहित नहीं किया तो सरपंच राज,पंचायती राज का विरोधी बन सकता है। सरपंच ग्राम पंचायत का एकमात्र प्रतिनिधि नहीं होना चाहिए। वह समकक्षों के बीच प्रथम हो सकता है लेकिन हर दूसरे निर्वाचित पंचायत प्रतिनिधि से ऊपर नहीं हो सकता है। इसलिए सरकारों को अन्य निर्वाचित प्रतिनिधियों की भूमिकाओं और क्षमताओं को मजबूत करने के लिए सुधारात्मक उपाय करने चाहिए। नामित स्थानीय गैर सरकारी संगठनों को चाहिए कि वे निर्वाचित पंचायत प्रतिनिधियों के समूहों के सामूहिक कामकाज की निगरानी के लिए एक ग्रामसभाओं को सुविधा और संसाधन उपलब्ध कराने चाहिए।

सहभागियों की भूमिका

पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक स्वीकृति प्रदान करने की पहल केंद्र में नरसिम्हा राव सरकार ने की थी। भारतीय संसद ने तदनुसार 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम (73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम) बनाया। अधिनियम के अनुसार, राज्य विधानमंडलों को 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप अपने-अपने राज्य के लिए राज्य पंचायत अधिनियम पारित करने के लिए कहा गया था। इस प्रकार, पंचायतों के योगक्षेम के लिए केंद्र और राज्य दोनों ही सरकारें जिम्मेदार हैं।

हालाँकि, पंचायतों को सुदृढ़ करने के लिए छुटपुट गतिविधियाँ हुई है। केरल जैसा राज्य पंचायतों को सुदृढ़ करने के लिए तेजी से आगे बढ़ा है। लेकिन केंद्र सरकार राज्यों से पंचायतों को मजबूत करने की माँग करने में ज्यादा सक्रिय नहीं थी। 2004 में पंचायती राज मंत्रालय के गठन के साथ ही केंद्र सरकार ने पंचायती राज संस्थाओं को मजबूत करने के लिए प्रभावी कदम उठाना शुरू किया। जुलाई-दिसंबर 2004 के दौरान, केंद्र सरकार ने पंचायतों को मजबूत करने के तरीकों पर चर्चा करने और निर्णय लेने के लिए राज्य सरकारों के साथ-साथ गोलमेज सम्मेलनों की एक शृंखला आयोजित की। लगभग 150 गोलमेज संकल्प संघ और राज्य सरकारों द्वारा संयुक्त कार्रवाई का आधार बने। मनरेगा और अन्य अंतरण पहल ने पंचायतों को बहुत आवश्यक वित्तीय और कार्मिक संबल प्रदान किया। कई कार्रवाइयों की शृंखला और प्रोत्साहनों के साथ, पंचायती राज मंत्रालय ने पंचायतों को पुनर्जीवित करने में सहयोग सहयोग प्रदान किया। लेकिन अब पंचायती राज मंत्रालय के बजट में भारी कमी ने राष्ट्रीय स्तर पर पंचायती राज संस्थानों के मार्गदर्शन और सहयोग में अपनी सक्रिय भूमिका को कम कर दिया है।

भारत में संवैधानिक पंचायतें लगभग 3 दशक पुरानी हैं। इन वर्षों के दौरान, विभिन्न राज्यों में पंचायतों का अलग-अलग विकास हुआ है- वो भी शक्तियों और अधिकारों को हस्तांतरित करने और क्षमता निर्माण में राज्य की पहल के आधार पर। पंचायती राज मंत्रालय ने 2015-16 में भारत के विभिन्न राज्यों में अंतरण की स्थिति को समझने के लिए एक व्यापक रिपोर्ट तैयार की। टाटा सामाजिक विज्ञान संस्थान द्वारा तैयार की गई इस रिपोर्ट[7] में पाया गया कि केरल, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक और गुजरात पंचायतों को कार्यों, निधियों और पदाधिकारियों को सौंपने में सबसे शीर्ष राज्य थे।केरल, महाराष्ट्र, कर्नाटक और हरियाणा अपनी पंचायतों को समय पर उपयुक्त क्षमता प्रदान करके सक्षम बनाने में अग्रणी राज्य थे।

ध्यातव्य है कि महाराष्ट्र, कर्नाटक और गुजरात परंपरागत रूप से पंचायत व्यवस्था के समर्थक राज्य हैं। लेकिन विकेंद्रीकरण में केरल का शीर्ष राज्य के रूप में उभरना

केंद्र और राज्य सरकारों को भी प्राय: प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री की सरकारों के रूप में जाना जाता है। उदाहरण के लिए केंद्र में मोदी सरकार और राजस्थान में गहलोत सरकार। हालाँकि, अपेक्षा यह की जाती है कि दोनों सरकारों में अधिकांश सरकारी निर्णय सामूहिक रूप से मंत्रिमंडल लेते हैं। शायद यही अनुरूपता ग्राम पंचायत स्तर पर अपेक्षित थी। लेकिन मामला कुछ अस्त-व्यस्त सा हो गया। शायद, यह सब संघ और राज्य सरकारों से औपचारिक संचार और निमंत्रण के साथ प्रारम्भ हुआ, जो सरपंचों के नाम पर थे। बाद में स्थानीय नौकरशाहों, गैर सरकारी संगठनों के सदस्यों और स्थानीय मीडिया ने सरपंचों के साथ विशेष रूप से व्यवहार करना शुरू कर दिया

विश्लेषण के लायक है। राज्य में सामाजिक सुधारों का एक बहुत ही जीवंत नागरिक समाज का इतिहास रहा है। जब 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम अस्तित्व में आया और संबंधित राज्यों ने अपने-अपने अनुकूल पंचायत अधिनियम पारित किए, केरल ने केरलवासियों को जागरूक करने और पंचायत स्तर की योजना और गतिविधियों में शामिल करने के लिए एक जन अभियान चलाया। जहाँ जन अभियान ने नई पंचायत प्रणाली के लिए जनता के सहयोग को उत्प्रेरित किया, वहीं इसने नव निर्वाचित पंचायत प्रतिनिधियों के लिए अति आवश्यक क्षमता निर्माण भी उपलब्ध करवाया। परिणामस्वरूप, केरल की पंचायतें बाकी राज्यों की पंचायतों की तुलना में तेजी से आगे बढ़ीं।महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक और तमिलनाडु ने भी पंचायत प्रणाली को मजबूत करने के लिए विभिन्न प्रकार की पहल की। पंचायत-समर्थक पहल के इन स्तरों का अन्य राज्यों में अभाव था। बाद में, मध्य प्रदेश, हरियाणा, सिक्किम, राजस्थान, असम, बिहार, आंध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश आदि सभी ने अपनी पंचायतों को मजबूत करने के लिए अच्छे प्रयास किए। अध्ययन और अनुभव बताते हैं कि राज्य में पंचायतों के विकास के लिए राज्य सरकारों की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है।

चूँकि पंचायतें स्थानीय विकास के लिए जिम्मेदार थीं, अधिकांश गैर सरकारी संगठन पंचायतों को स्थानीय विकास के मामले में अपना प्रतिस्पर्धी मानते हुए उनके प्रति उदासीन थे। लेकिन कुछ संगठन ऐसे भी थे जिन्होंने क्षमता निर्माण, विकास योजना और समर्थन के द्वारा पंचायतों की व्यवस्था को मजबूत करने के लिए पहल की। प्रिया (PRIA), द हंगर प्रोजेक्ट और इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंस कुछ प्रमुख राष्ट्रीय गैर सरकारी संगठन हैं जिन्होंने भारत में पंचायती राज संस्थाओं को मजबूत करने के लिए अग्रणी कार्य किए हैं। नतीजतन, स्थानीय पंचायतों के साथ बड़ी संख्या में गैर सरकारी संगठन काम कर रहे हैं। स्थानीय स्तर पर इनमें से अधिकतर गैर सरकारी संगठन क्षमता निर्माण और विकास योजना से जुड़े हैं। राज्य और राष्ट्रीय स्तर के गैर सरकारी संगठन तंत्र को और मजबूत करने के लिए वकालत करते हैं।

राष्ट्रीय मीडिया और राजनीतिक दल दोनों ही पंचायती राज संस्थाओं से जुड़ने में अवसरवादी रहे हैं। राजनीतिक दल पहले पंचायत प्रक्रियाओं के प्रति उदासीन थे। लेकिन अधिकांश राजनीतिक दलों ने स्थानीय वोट और स्थानीय समर्थन आधार जुटाने में पंचायतों के महत्व को समझा है। इसलिए, हर राजनीतिक दल भविष्य के मतदान को प्रभावित करने के लिए पंचायत स्तर पर निवेश करने की कोशिश कर रहा है। जहाँ तक बात मीडिया की है, राष्ट्रीय मीडिया बड़े पंचायत आयोजनों पर ध्यान देता है, लेकिन स्थानीय मीडिया नियमित रूप से पंचायतों के बारे में रिपोर्ट करता है

राष्ट्रीय मीडिया और राजनीतिक दल दोनों ही पंचायती राज संस्थाओं से जुड़ने में अवसरवादी रहे हैं। राजनीतिक दल पहले पंचायत प्रक्रियाओं के प्रति उदासीन थे। लेकिन अधिकांश राजनीतिक दलों ने स्थानीय वोट और स्थानीय समर्थन आधार जुटाने में पंचायतों के महत्व को समझा है। इसलिए, हर राजनीतिक दल भविष्य के मतदान को प्रभावित करने के लिए पंचायत स्तर पर निवेश करने की कोशिश कर रहा है। जहाँ तक बात मीडिया की है, राष्ट्रीय मीडिया बड़े पंचायत आयोजनों पर ध्यान देता है, लेकिन स्थानीय मीडिया नियमित रूप से पंचायतों के बारे में रिपोर्ट करता है। हालाँकि, वर्तमान मीडिया रुझानों के अनुसार, ऐसी अधिकांश कहानियाँ दुर्भाग्यवश सनसनीखेज प्रकृति की होती हैं। ऐसी कहानियाँ पंचायतों की अच्छी छवि प्रस्तुत नहीं करतीं हैं। संतुलित रिपोर्टिंग पंचायतों के अच्छे और बुरे दोनों हिस्सों को सामने ला सकती है। बयान करने के लिए पंचायतों के साथ बुरे अनुभवों की तुलना में अच्छी कहानियाँ अधिक हैं।

आगे के तौर-तरीके

भारत इतना बड़ा और वैविध्यपूर्ण देश है कि इसे केवल संघ और राज्य सरकारों द्वारा शासित नहीं किया जा सकता है। स्थानीय स्तर पर लोगों की जरूरतों और आकांक्षाओं को प्रबंधित करने के लिए स्थानीय सरकारें आवश्यक हैं। सौभाग्यवश, भारत में स्थानीय सरकारों की एक संवैधानिक व्यवस्था है। पिछले 3 दशकों की अवधि में, ये स्थानीय सरकारें अधिक प्रभावी होने के लिए परिपक्व हुई हैं। केंद्र और राज्य दोनों सरकारों ने पंचायतों को मजबूत करने में अपनी भूमिका निभाई है। लेकिन अभी और किए जाने की आवश्यकता है।

केंद्र में पंचायती राज मंत्रालय की रफ्तार धीमी होती दिख रही है। इसे सक्रिय रूप से सभी राज्यों की पंचायतों के लिए एक मित्र, दार्शनिक और मार्गदर्शक के रूप में कार्य करना चाहिए। इन्हें पंचायतों को उचित सहायता प्रदान करने के लिए राज्यों को प्रोत्साहित करना चाहिए और उन्हें खुश करना चाहिए। मंत्रालय को पंचायतों के अब तक के अनुभवों की कड़ी समीक्षा करनी चाहिए। ऐसी समीक्षाओं के आधार पर, जल्द से जल्द उचित सुधारात्मक उपाय किए जाने चाहिए। मंत्रालय को पंचायती राज को और मजबूत करने के लिए व्यावहारिक ज्ञान उत्पन्न करने के लिए राज्यों के बीच समकक्ष अभ्यास को भी बढ़ावा देना चाहिए।

भारत में सरकारों के तीन क्षेत्र हैं जिन्हें शासन के लिए सर्वोत्तम पद्धतियाँ विकसित करने के लिए लगातार एक दूसरे के साथ संवाद करना चाहिए। केंद्र सरकार और राज्य सरकारें नियमित रूप से बैठक करती रहती हैं। लेकिन लाखों स्थानीय सरकारों के साथ नियमित बैठकें बहुत कठिन हो सकती हैं। तो, ऐसी बैठकों में स्थानीय सरकारों का प्रतिनिधित्व किसे करना चाहिए? स्पष्टत:, पंचायतों की ओर से बात करने के लिए कोई प्रतिनिधि निकाय होना चाहिए। इसलिए पंचायती राज मंत्रालय को एक ऐसी प्रक्रिया को सुगम बनाना चाहिए जिसके माध्यम से सभी राज्यों की पंचायतें अपने संघों के विभिन्न स्तरों का निर्माण कर सकें। इन संघों को संघ, राज्य और स्थानीय सरकारों

के बीच सेतु के रूप में कार्य करना चाहिए।

पंचायतों को अधिक सहभागी बनना होगा। ऐसा करने के लिए, सरपंच और प्रत्येक निर्वाचित प्रतिनिधि की भूमिकाओं और जिम्मेदारियों को स्पष्ट रूप से चित्रित किया जाना चाहिए। प्रत्येक निर्वाचित प्रतिनिधि की भूमिकाओं और जिम्मेदारियों का लेखा-चित्र (चार्ट) पंचायत के सूचना-पट्ट (डैशबोर्ड) पर चिपकाकर और ग्रामीणों के साथ व्हाट्सएप साझा करके सार्वजनिक किया जाना चाहिए। सरपंच को जवाबदेह बनाया जाना चाहिए यह सुनिश्चित करने के लिए कि पंचायत स्तर पर सामूहिक रूप से निर्णय लिए जाएँ। अन्य निर्वाचित प्रतिनिधियों को निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल होने के लिए पहल करनी चाहिए।

ग्रामसभाओं से यह अपेक्षा की जाती है कि वे ग्राम पंचायतों के कामकाज पर नजर रखने के लिए नियमित रूप से बैठकें करती रहें। ग्रामसभा का अर्थ है सभी वयस्क ग्रामीण। यह गाँव के कई सौ पुरुषों और महिलाओं का समूह है। ग्रामसभा की बैठक में नियमित रूप से कई सौ पुरुषों और महिलाओं के एक साथ आने की अपेक्षा करना बहुत कठिन हो सकता है। बैठक के लिए कई सौ ग्रामीण एक साथ आ जाएँ तो भी बैठक सार्थक नहीं हो सकती है। ऐसी परिस्थितियों में, यह सुनिश्चित करने के लिए वैकल्पिक तरीके खोजे जाने चाहिए कि ग्रामसभा की सार्थक बैठकें नियमित रूप से हो सकें। स्थानीय स्तर पर स्वतंत्र अभिकरणों को प्रभावी ग्रामसभा बैठकों के लिए उपयुक्त सुविधाएँ उपलब्ध करानी चाहिए।

पंचायतों को स्थानीय विकास गतिविधियों के लिए अच्छी-खासी रकम मिल रही है।

ग्रामसभाओं से यह अपेक्षा की जाती है कि वे ग्राम पंचायतों के कामकाज पर नजर रखने के लिए नियमित रूप से बैठकें करती रहें। ग्रामसभा का अर्थ है सभी वयस्क ग्रामीण। यह गाँव के कई सौ पुरुषों और महिलाओं का समूह है। ग्रामसभा की बैठक में नियमित रूप से कई सौ पुरुषों और महिलाओं के एक साथ आने की अपेक्षा करना बहुत कठिन हो सकता है। बैठक के लिए कई सौ ग्रामीण एक साथ आ जाएँ तो भी बैठक सार्थक नहीं हो सकती है

वित्तीय पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए पंचायतों की आय और व्यय का वार्षिक बाह्य लेखा परीक्षा आवश्यक है। विभिन्न राज्य पंचायती राज अधिनियमों में ऐसे प्रावधान हैं। लेकिन लेखा परीक्षा प्रक्रियाओं का निष्ठा से पालन नहीं किया जाता है। अब यह आवश्यक हो गया है कि संघ और राज्य सरकारें संयुक्त रूप से पंचायतों की स्वतंत्र वित्तीय और निष्पादन लेखा परीक्षा करने के लिए विशिष्ट संरचनाएँ तैयार करें। पंचायतों के लिए वित्तीय और कार्य प्रदर्शन की लेखा परीक्षा अनिवार्य है।

ग्राम पंचायतें अत्यधिक विवादित राजनीतिक क्षेत्र हैं। सरपंच और अन्य निर्वाचित प्रतिनिधि स्थानीय सरकारों के प्रतिनिधियों के रूप में अपनी भूमिका निभाने में अपना कीमती समय व्यतीत करते हैं। वे विभिन्न प्रकार के आगंतुकों और हितधारकों का सत्कार करते रहते हैं। इन सभी के लिए खर्चे की आवश्यकता होती है। लेकिन अगर हम सांसदों और विधायकों के वेतन और भत्तों की तुलना करें, तो पंचायत प्रतिनिधियों को बहुत कम वेतन मिलता है। इस पक्ष के तत्काल निवारण की आवश्यकता है। ध्यातव्य है कि वेतन और भत्तों की कमी को अक्सर पंचायत स्तरों पर भ्रष्टाचार के महत्वपूर्ण कारणों में से एक माना जाता रहा है।

कोविड-19 के दौरान लॉकडाउन और अस्पताल में भर्ती होने वाले लोगों से संबंधित आँकड़ों से पता चलता है कि स्थानीय स्तर पर सेवाएँ उपलब्ध नहीं होने पर स्थितियाँ कितनी त्रासद हो जाती हैं। वैज्ञानिक और विशेषज्ञ जलवायु परिवर्तन के कारण भविष्य में आने वाली आपदाओं को लेकर आगाह कर रहे हैं। ऐसी परिस्थितियों में, भारत को अधिक स्थानीय सुविधाओं और अधिक सक्षम स्थानीय सरकारों की आवश्यकता है। इसलिए लेखक इस बात पर जोर देना चाहते हैं कि स्थानीय स्तर पर सर्वोत्तम संभव सेवाएँ प्रदान करने के लिए पंचायतों को अधिक सामर्थ्य और संसाधनों की आवश्यकता है। विगत में सरकारी-गैर सरकारी संगठन की भागीदारी, क्षमता निर्माण और स्थानीय शासन के नवीन तरीकों को विकसित करने में बहुत प्रभावी रही है।पंचायतों को अधिक साधन संपन्न, अधिक सक्षम और अधिक जवाबदेह बनाने के लिए सरकारी-गैर सरकारी संगठन भागीदारी के उन स्तरों की फिर से आवश्यकता है।

संदर्भ

1. https://panchayat.gov.in/documents/448457/0/State-UT+wise+ERs+and+EWRs.docx/885f3f06-4075-7db4-2d0a-000f6cf722ab?t=1633331196747
2. https://lgdirectory.gov.in/rptConsolidateforRuralLB.do?OWASP_CSRFTOKEN=ZMWK-W825-5PNM-1THR-LFC0-YXL4-AHOR-9LAR
3. https://www.worldometers.info/world-population/population-by-country/
4. https://panchayat.gov.in/documents/448457/0/29+Subject+Devolution+Study+report.docx/89ebee93-510a-10f8-2ec1-c9d77edb1a56?t=1633330422950
5. ऐसे विशेषज्ञों में से एक श्री एस एम विजयानंद (केरल के पूर्व मुख्य सचिव और पूर्व सचिव, पंचायती राज मंत्रालय, भारत सरकार) ने लेखक की एक बैठक में यह बयान दिया।
6. https://pria.org/panchayathub/panchayat_text_view.php
7. https://www.panchayatgov.in/documents/448457/0/Devolution+Report+2015-16.pdf/338f86ed-a6da-13ca-719b-2d41b467da93?t=1633331634500

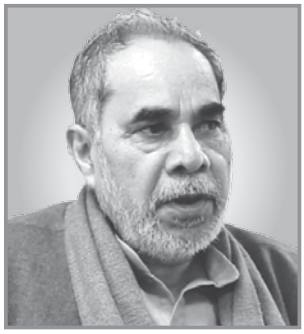

रामबहादुर राय

श्री अरविंद की विश्वदृष्टि में भारत की शासन-प्रणाली

महर्षि श्री अरविंद अकेले महापुरुष हैं जिन्होंने यूरोप और भारत की जीवनदृष्टि, संस्कृति, सभ्यता और शासन-प्रणाली को तुलनात्मक रूप में आत्मसात कर देशवासियों के सामने रखा। श्री अरविंद के प्रासंगिक साहित्य पर एक दृष्टि

श्री अरविंद के लिए भारत सत्य की एक सनातन यात्रा है। भारत और अध्यात्म उनकी दृष्टि में पयार्यवाची हैं। यह श्री अरविंद के जीवन और दर्शन में हर कदम पर दिखता है। अपने जीवन के प्रारंभिक दिनों में उन्होंने भारत की स्वाधीनता का जैसा महाशंख बजाया वैसा उदाहरण दूसरा नहीं मिलता। उस दौर में उन्होंने तीन काम किए। पहला- स्वाधीनता संग्राम की धारा को राष्ट्रीयता से जोड़ा। दूसरा - पश्चिम में भारत की प्राचीन सभ्यता, संस्कृति और शासन-व्यवस्था की अवधारणा पर जो भ्रम का कुहासा था उसे सप्रमाण लिखकर दूर ही नहीं किया बल्कि पश्चिम के विद्वानों की बोलती भी बंद कर दी। यह प्रमाणित कर दिया कि पश्चिम के विद्वान पूर्वग्रह युक्त हैं। इन विषयों पर श्री अरविंद के लेखन में उनके यथातथ्य विश्लेषणात्मक तथ्यों से पूरी दुनिया को पुनर्विचार के लिए जहाँ बौद्धिक आधार मिला वहीं हर भारतीय को आत्मगौरव का बल भी प्राप्त हुआ। तीसरा - भारत के प्राचीन इतिहास को राज्य व्यवस्था के संदर्भ में जितनी और जैसी मौलिक स्पष्टता से उन्होंने सामने रखा उसे कालजयी रचना ही कहना उचित होगा। यह पहली बार किसी भारतीय ने आधुनिक भारत में किया। श्री अरविंद के राजनीतिक कर्म की विचारभूमि इन्हीं बातों में भिन्न और श्रेष्ठ रूप में विद्यमान है।

इस आलेख में क्रांतिमूलक, मौलिक चिंतन और उपनिषदों के द्रष्टा की भांति श्री अरविंद के उन विचारों को तब और अब के सदर्भ में प्रस्तुत करने का प्रयास है। साथ ही, इसकी पड़ताल भी इसमें की गई है कि उनके विचार, टिप्पणियाँ और समय-समय पर दिए गए संदेश थे तो सामयिक, लेकिन एक सदी बाद भी उनमें हीरे की चमक है। उसे किसी जौहरी की खोज है जो हीरे को तराश कर भारतीय राज्य व्यवस्था को सुधार सके। इसके लिए एक महानायक चाहिए। भारत उस महानायक के अवतरण की प्रतीक्षा कर रहा है। यह भी संभव है कि वह महानायक आ गया हो, जिसे अभी पहचाना जाना है। जो भारतीय राष्ट्र को उसके मूल तत्वों पर खड़ा करे और उसके अनुरूप राज्य-व्यवस्था की पुनर्रचना करे। अपने राजनीतिक जीवन के पहले दिन से ही श्री अरंविद भारत के भविष्य और उसकी शासन-व्यवस्था के बारे में बड़े फलक पर सोचते थे। जिसकी उस समय कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। केवल सोचते ही नहीं थे, उसे शब्दों में उतारा भी है। उनका साहित्य इसका साक्षी है। उनके राजनीतिक कर्म और क्रियाकलाप का सबसे बढ़िया उदाहरण सूरत कांग्रेस की घटनाओं में मिलता है। इसे जानने के लिए एक जिज्ञासु पाठक को 'श्री अरविंद, लाइफ एंड टाइम्स आफ द महायोगी (द प्री-पांडिचेरी फेज)'[1] के कुछ अध्याय (32वें से 40वें अध्याय तक) तन्मयता से पढ़ने चाहिए। प्रसंग सूरत कांग्रेस का है। उस पर कुछ बातें लिखने से पहले यह बताना आवश्यक है कि ऊपर जिस पुस्तक का उल्लेख किया है उसे मनोज दास ने गहन शोध के बाद लिखा है। वे आज भी श्री अरविंद आश्रम पांडिचेरी में हैं और महायोगी के पथ के पथिक हैं। उनकी आयु 87 साल है। उन्हें भारत सरकार ने पद्मभूषण अलंकरण से सम्मानित किया। वे 1963

में पांडिचेरी आ गए थे। अर्थात उन्हें श्री माँ का सानिध्य कम से कम दस साल उपलब्ध हुआ। उसके अनेक प्रसंग इस पुस्तक में हैं। जिससे पुस्तक उपयोगी, प्रामाणिक और सवा सदी से पहले के श्री अरविंद के जीवन के अज्ञात पक्ष से लोगों को परिचित कराती है। इसी पुस्तक में सूरत कांग्रेस की पूरी कहानी है। जो अन्यत्र कहीं किसी पुस्तक में उपलब्ध नहीं है। उसका सार यह है कि श्री अरविंद ने ही सूरत कांग्रेस में राष्ट्रवादियों की कमान संभाली थी।

कांग्रेस के इतिहास में सूरत कांग्रेस का स्थान सागरमाथा सरीखा है। जिसने भारत के जनमनास में स्वाधीनता की गहरी प्यास जगा दी। लोग यह जानते हैं कि सूरत कांग्रेस में टूट हुई। दो दल बने। नरम और गरम। ये नामकरण सही नहीं हैं। सही क्या है, इसके निर्धारण में पड़े बगैर जो ज्यादा महत्वपूर्ण है उस पर ध्यान दिया जाना चाहिए। सूरत कांग्रेस के महानायक श्री अरविंद थे। लोकमान्य तिलक के अपमान का घूँट चुपचाप पी जाने के लिए जो व्यक्ति तैयार नहीं था और इसलिए सीधी, साफ क्रांतिकारी लाइन जिसने ली, जिसके पीछे कांग्रेस के ज्यादातर राष्ट्रवादी नेता खड़े हुए वे श्री अरविंद थे। उस कांग्रेस की एक दुर्लभ तस्वीर इतिहास के पन्नों में है। वह उस सम्मेलन की है जिसकी अध्यक्षता श्री अरविंद ने की। तस्वीर को देखें तो उसमें दिखता है कि एक छोटा सा मेज है। एक युवा के सामने वह मेज रखा हुआ है। वह युवा कुर्सी पर बैठा है। छोटा सा समूह है। दो व्यक्ति उस युवा के दोनों तरफ खड़े हैं। इतिहास का वह अनोखा क्षण है। जिसकी स्मृति मन में उतरते ही शरीर का रोम-रोम राष्ट्रीयता की प्रबल पुकार से जग जाता है। उस युवा के बाएँ तरफ लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक खड़े हैं और दाहिनी तरफ महान राष्ट्रवादी नेताओं में अग्रणी गणेश श्रीकृष्ण खापर्डे हैं। कोई अगर खोज सके तो वह पाएगा कि उस समूह में सुब्रह्मण्य भारती भी कहीं उपस्थित होंगे। यह याद करना ज्यादा प्रासंगिक है कि विभाजन के कारणों में सबसे बड़ा मुद्दा शासन प्रणाली पर गंभीर मतभेद ही था। उस समय भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी का प्रवेश नहीं हुआ था। उसके लिए देश को एक दशक से ज्यादा समय इंतजार करना था। लोकमान्य तिलक के असामयिक निधन से कांग्रेस का एक बड़ा समूह नेतृत्वविहीन हो गया। उस समूह के अनेक माने-जाने लोग पांडिचेरी पहुँचे। श्री अरविंद से नेतृत्व सँभालने का अनुरोध किया।

उस पर श्री अरविंद ने एक सलाह दी। कहा कि कांग्रेस पश्चिम के खंडहरों में अपना भविष्य तलाशने की भूल न करे। यह एक सूत्र है। इसका भाष्य जो भी करेगा उसे श्री अरविंद के लेखन जगत की एक नहीं, अनेक बार परिक्रमा करनी पड़ेगी। वह तीर्थयात्रा होगी। उसी तरह की जैसी काशी, अयोध्या, मथुरा, उज्जैन, आदि तीर्थ स्थानों में छोटी-बड़ी परिक्रमा की लोक परंपरा निरंतरता में आस्थापूर्वक की जाती है। इसके लिखित साक्ष्य भी उपलब्ध हैं। उनमें से कुछ घटनाओं को अगर ध्यान से आज भी देखें तो तिलक और श्री अरविंद की भविष्य दृष्टि में एक परस्परता का धागा दिखता है। उन घटनाओं को पिरोकर एक ऐसी माला बन सकती है जिसमें भविष्य के भारत का पूरा चित्र देखना संभव है। वे घटनाएँ कौन सी हैं? लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक मांडले जेल से रिहा होकर भारत आते हैं और पाते हैं कि राष्ट्रीयता का ज्वार जनसागर में लुप्त हो गया है। उसका कहीं नामोनिशान नहीं है जिसे वे जनचेतना में जगाकर गए थे। वे नासिक पहुँचते हैं। एक ऐतिहासिक भाषण करते हैं। वे पुनः भारत के जन-जन में आत्मविश्वास की चेतना जगाने के लिए अपने यादगार भाषणों में पूरे भारत की ओर से यह घोषणा करते हैं- 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।'[2] जिसे हम लेकर रहेंगे। यह बात 1917 की है। उसके कुछ महीने बाद 1918 में श्री अरविंद लेखों की एक शृंखला शुरू करते हैं।

पहला विश्वयुद्ध समाप्त हो गया था। देश अपनी स्वतंत्रता की प्रतीक्षा इस आधार पर कर रहा था कि ब्रिटेन भारतीयों के युद्ध में योगदान और बलिदान के प्रतिसंवेदन स्वरूप यह उपहार दे सकता है। परंतु श्री अरविंद ऐसी आशा में नहीं, अपनी दूरदृष्टि में उन्होंने जरूरी समझा कि साम्राज्यवादी बुद्धिजीवियों को भारत के बारे में यथातथ्य सभ्यतागत परिप्रेक्ष्य प्रदान करें। ऐसा कह सकते हैं कि इसीलिए उन्होंने अपनी लेखमाला का क्रम बनाए रखा। वह 1921 तक चली। उस कड़ी में उन्होंने पहला लेख जो लिखा उसका शीर्षक था- 'द रेनेसाँ इन इंडिया।' जो बाद में 'द रेनेसाँ इन इंडिया ऐंड अदर एस्सेज ऑन इंडियन कल्चर' नामक पुस्तक में छपा। यहाँ याद करना जरूरी है कि श्री अरविंद भारत के पहले महानायक हैं जिन्होंने 1908 में ही स्वराज्य को एक परिभाषा दी। वंदे मातरम् में उनका एक लेख है। जिसमें वे कहते हैं कि 'स्वराज्य का मतलब केवल राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं है। उसका मतलब बहुत ज्यादा विस्तृत और समग्र है। वैयक्तिक स्वाधीनता, कुटुंब, जाति, देश, सबकी स्वाधीनता, सामाजिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक, सब प्रकार की स्वाधीनताओं का समावेश है स्वराज्य में। प्राचीन ऋषियों ने हमें आध्यात्मिक स्वाधीनता का संदेश दिया था। बुद्ध, चैतन्य, नानक, कबीर आदि संतों के संदेश में सामाजिक स्वाधीनता पर भी काफी जोर था। राजनीतिक स्वाधीनता इन तीनों में तीसरे स्थान पर है।'[3] सामाजिक स्वाधीनता की अवधारणा में लोकतंत्र की वह शासन

श्री अरविंद भारत के पहले महानायक हैं जिन्होंने 1908 में ही स्वराज्य को एक परिभाषा दी। वंदेमातरम् में उनका एक लेख है। जिसमें वे कहते हैं कि स्वराज्य का मतलब केवल राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं है। उसका मतलब बहुत ज्यादा विस्तृत और समग्र है। वैयक्तिक स्वाधीनता, कुटुंब, जाति, देश, सबकी स्वाधीनता, सामाजिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक, सब प्रकार की स्वाधीनताओं का समावेश है स्वराज्य में। प्राचीन ऋषियों ने हमें आध्यात्मिक स्वाधीनता का संदेश दिया था। बुद्ध, चैतन्य, नानक, कबीर आदि संतों के संदेश में सामाजिक स्वाधीनता पर भी काफी जोर था। राजनीतिक स्वाधीनता इन तीनों में तीसरे स्थान पर है

प्रणाली छिपी है जो भारत में सदियों पहले हुआ करती थी। उसे चिन्हित श्री अरविंद ने ही सबसे पहले किया।

एक घटना दिखती साधारण है, लेकिन वह वास्तव में असाधारण इसलिए है क्योंकि तब तिलक जीवित थे। उनके एक सहयोगी जोजेफ बप्तिस्ता ने श्री अरविंद से एक राष्ट्रीय अंग्रेजी समाचार पत्र का संपादन स्वीकार करने की प्रार्थना की थी। उसे मुंबई से प्रकाशित करने का प्रस्ताव था। श्री अरविंद ने उन्हें जो उत्तर दिया वह राजनीति, शासन प्रणाली और भारत के भविष्य पर ऐसा शिलालेख है जो बार-बार पढ़ने योग्य है। वे लिखते हैं कि "मैं राजनीति को अथवा राजनैतिक कार्य को हीन दृष्टि से नहीं देखता या अपने को उनसे ऊपर नहीं समझता हूँ। मैंने सदैव आध्यात्मिक जीवन पर प्रमुख बल दिया है और अब तो उस पर पूरा ही बल देता हूँ, पर आध्यात्मिकता की मेरी धारणा को संन्यास के वैराग्य अथवा सांसारिक वस्तुओं की अवमानना या घृणा से कुछ लेना-देना नहीं है। मेरे लिए कुछ भी लौकिक नहीं है, सारी मानवीय गतिविधि मेरे लिए एक संपूर्ण आध्यात्मिक जीवन में सम्मिलित करने की वस्तु है, और वर्तमान समय में राजनीति का महत्व बहुत अधिक है। पर राजनैतिक गतिविधि की मेरी दिशा और मंशा उससे बहुत भिन्न होगी जो कुछ भी आज इस क्षेत्र में प्रचलित है। राजनैतिक कार्य में मैंने प्रवेश किया और उसे एक ही और केवल एक ही उद्देश्य से 1903 से 1910 तक चलाया - लोगों के मन में स्वतंत्रता और तब तक प्रचलित व्यर्थ की धीमी कांग्रेसी प्रणालियों के स्थान पर उसे प्राप्त करने के लिए एक संघर्ष की आवश्यकता के लिए एक स्थिर संकल्प उत्पन्न करना। वह अब किया जा चुका है और उस पर अमृतसर कांग्रेस मोहर लगा चुकी है।... यह प्रश्न है कि 'देश' अपने आत्मनिर्णय के साथ क्या करने जा रहा है, वह अपनी स्वतंत्रता का कैसा उपयोग करेगा, वह अपने भविष्य का निर्णय किन दिशाओं में करेगा?"[4]

उसी पत्र में वे लिखते हैं, "तुम्हारी पार्टी, तुम बताते हो, एक सामाजिक प्रजातांत्रिक पार्टी होने जा रही है। अब विश्वास तो मैं भी ऐसी ही चीज में करता हूँ जिसे सामाजिक प्रजातंत्र कहा जा सकता है, पर ऐसे किसी स्वरूपों में नहीं, जो आज प्रचलित हैं और मैं यूरोपीय किस्म से भी कतई प्रेम नहीं करता, चाहे पहले से उसने कितना ही बड़ा सुधार क्यों न कर लिया हो। मेरी यह धारणा है कि भारत को, जिसकी अपनी ही चेतना है, और अपनी सभ्यता के उपयुक्त प्रशासन की प्रवृत्ति है, राजनीति में, जैसी कि और सभी बातों में भी, अपना मौलिक पथ अंकित करना चाहिए, यूरोप की पगडंडी में ठोकरें खाते नहीं फिरना चाहिए। परंतु यदि अपनी वर्तमान अस्त-व्यस्त और बिना तैयारी की मन:स्थिति में उसे रास्ते पर चलना शुरू करना पड़ा तो बाध्य होकर बिलकुल ऐसा ही करना होगा। निस्संदेह लोग भारत की स्वयं अपनी दिशाएँ विकसित करने की बात करते हैं पर किसी को इसका स्पष्ट या पर्याप्त अनुमान नहीं जान पड़ता है कि ये दिशाएँ हैं कौन-सी।" वे अपने पत्र का अंत इस तरह करते हैं, "इस विषय में मैंने आदर्श बना लिए हैं और अपनी कुछ निश्चित धारणाएँ भी, जिनमें वर्तमान समय में बहुत कम लोगों के मेरा अनुसरण करने की संभावना है- क्योंकि एक परंपरा से अलग प्रकार के, समझौता न करने वाले आध्यात्मिक आदर्शवाद से परिचालित हैं और अनेक लोगों की समझ में नहीं आएगी तथा अधिक संख्या के लोगों के लिए नाराजगी का बाइस बनेगी जो रोड़ा जैसी होगी।"[5]

तुम्हारी पार्टी, तुम बताते हो, एक सामाजिक प्रजातांत्रिक पार्टी होने जा रही है। अब विश्वास तो मैं भी ऐसी ही चीज में करता हूँ जिसे सामाजिक प्रजातंत्र कहा जा सकता है, पर ऐसे किसी स्वरूपों में नहीं, जो आज प्रचलित हैं और मैं यूरोपीय किस्म से भी कतई प्रेम नहीं करता, चाहे पहले से उसने कितना ही बड़ा सुधार क्यों न कर लिया हो। मेरी यह धारणा है कि भारत को, जिसकी अपनी ही चेतना है, और अपनी सभ्यता के उपयुक्त प्रशासन की प्रवृत्ति है, राजनीति में, जैसी कि और सभी बातों में भी, अपना मौलिक पथ अंकित करना चाहिए, यूरोप की पगडंडी में ठोकरें खाते नहीं फिरना चाहिए

श्री अरविंद ने 1918 से 1921 के दौरान जो लेख लिखे, वे मासिक पत्र 'आर्य' में छपे। इन लेखों में उनके उन विचारों की व्याख्या है जिन्हें उन्होंने 1907 और 1908 में 'वंदे मातरम्' साप्ताहिक के अंकों में संक्षिप्त लेख के रूप में लिखा था। उन्होंने जो प्रश्न छेड़े और उनके समाधानकारक उत्तर दिए उन्हें पुन: स्मरण करने की जरूरत है। एक बहस पश्चिम में इस कटाक्ष से शुरू हुई कि 'क्या भारत सभ्य है?' यह प्रश्न विलियम आर्चर ने व्यंग्य में अतिरंजित ढंग से उठाया था। उसका जवाब पश्चिम के ही एक विद्वान सर जान वुडरफ ने दिया। ऐसा कैसे हो सकता था कि श्री अरविंद इस पर तमाशा देखते। उन्होंने एक लेख इसी विषय पर लिखा कि 'भारत में सभ्यता थी या नहीं अथवा है या नहीं'। यह प्रश्न अब विवादास्पद नहीं है, क्योंकि जिन लोगों के मत का कुछ मूल्य है वे सभी यह स्वीकार करते हैं कि यहाँ एक विशिष्ट एवं महान सभ्यता विद्यमान है जो अपने स्वरूप में अद्वितीय थी।[6] इस लेख का महत्व इसलिए है क्योंकि उससे यह समझना सरल हो जाता है कि श्री अरविंद किसी प्रश्न को उसकी यथार्थता में देखने और दिखाने के पक्षधर थे। उनका यह वाक्य इसे ही हमें बताता है, "यदि हमें इस महान प्रश्न को इसकी यथार्थ रूपरेखा में देखना हो तो इसे हमें एक विशालतर विश्वव्यापी अर्थ देना होगा।"[7] इसी विषय पर अपने दूसरे लेख में वे लिखते हैं, "मुख्य प्रश्न यह है कि क्या मानव जाति की भावी आशा एक तर्कप्रधान एवं बुद्धिमत्तापूर्ण यांत्रीकृत सभ्यता एवं संस्कृति में निहित है या एक आध्यात्मिक बोधिमूलक और धार्मिक सभ्यता एवं संस्कृति में।"[8] इस प्रश्न से पश्चिम में जीवन दर्शन और शासन प्रणाली को मौलिक चुनौती देकर वे भारतीय मानस में एक श्रेष्ठता की किरण पहुँचाते हैं।

क्या इसे अद्भुत संयोग नहीं कहेंगे! जिस समय श्री अरविंद के लेखों की शृंखला पूरी हो रही हो, ठीक उसके बाद ही दुनिया

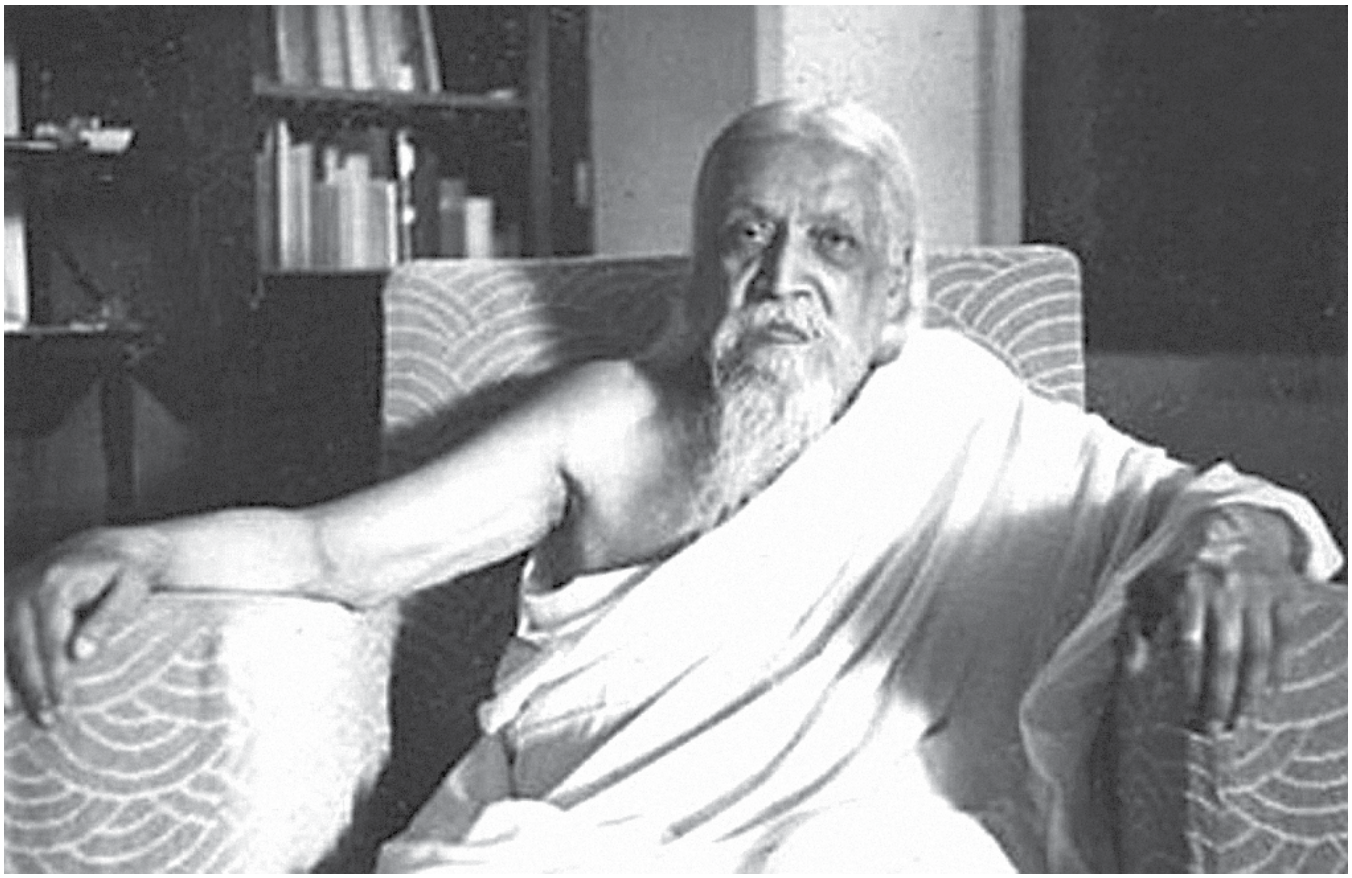

ने चकित होकर जाना कि विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में भारत का अपना ऊँचा स्थान रहा है। पश्चिमी दुनिया जिन प्रमाणों पर यकीन करती है (हालाँकि वे अंतिम प्रमाण नहीं माने जा सकते) वैसा ही प्रमाण उस समय प्रकट हुआ जब 1922 में सिंधुघाटी की सभ्यता की खोज सामने आई। उस खोज ने सारे संदेह मिटा दिए। कहना चाहिए कि जो संदेह थे वे हवा में उड़ गए। तार-तार हो गए। उनके चिन्ह भी खोजे नहीं मिलेंगे। उस खोज से दुनिया ने माना कि "सुमेर, अक्काद, बेबीलोन, मिस्र और असीरिया के समान, भारत का अतीत भी, विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण उपलब्धियों के कारण, गौरवयुक्त था। प्राकृतिक सीमाओं से घिरे हुए होने के कारण भारतीय विचारधारा की अपनी अलग विशेषताएँ रही हैं। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षणिक, राजनैतिक, कला और साहित्य आदि प्रत्येक क्षेत्र की ओर प्राचीन भारतीयों ने उचित ध्यान दिया।"[9]

लेकिन मैक्समूलर जैसा विद्वान भी भ्रमित था। उन्होंने लिखा है कि "भारतीय राष्ट्रीयता की भावना से परिचित नहीं था। उसने केवल एक ही क्षेत्र में कार्य करने या निर्माण करने की स्वतंत्रता का उपयोग किया और वह क्षेत्र था धर्म और दर्शन का। भारत दार्शनिकों का देश है।...इतिहास में हिंदुओं के अतिरिक्त और कोई भी ऐसा उदाहरण नहीं है जहाँ के लोगों में धर्म और दर्शन का स्थान इतना अधिक प्रभावशाली रहा हो।"[10] मैक्समूलर अकेले नहीं हैं। उनकी कोटि में अनेक नाम लिए जा सकते हैं। 19वीं सदी के इन पश्चिमी विद्वानों के विचार वास्तव में भ्रांतिमूलक थे। क्यों थे? क्योंकि वे भारत के अमृतपथ से अपरिचित थे। जड़तावादी जीवन दृष्टिकोण के विद्वान इतिहास के धूल भरे बवंडर में उतना ही देख पाते हैं जितना उनके अत्यंत करीब होता है। अपने को उचित ठहराने के लिए ऐसे विद्वानगण यह आरोप उछाल देते रहे हैं कि भारत में इतिहासबोध और इतिहासदृष्टि कभी थी ही नहीं। इसके विपरीत भारत में दोनों बातें रही हैं। इतिहासबोध और इतिहासदृष्टि की भारतीय शैली पौराणिक है। वह पश्चिम की समझ से परे है। ऐसा भी नहीं है कि पश्चिम के दार्शनिकों में भारत के प्रति भ्रम 20वीं सदी में दूर हो गया। 20वीं सदी के प्रारंभ में डॉ. राधाकृष्णन से लंदन में पूछा गया था कि भारत में राजव्यवस्था पर चिंतन क्या हुआ है? अपने उत्तर से डॉ. राधाकृष्णन ने बताया कि पश्चिम को चाहिए कि वह प्राचीन भारत को जाने। स्पष्ट है कि भ्रम दूर नहीं हुआ। लॉर्ड कर्जन का विद्वेषमूलक निर्णय स्वाधीनता संग्राम की एक बड़ी यादगार बन गया है। वह सन् किसे याद नहीं होगा! वह 1905 है। बीसवीं सदी का पहला दशक अपनी आधी राह पर था। उसी साल एक दूसरी ऐतिहासिक घटना हुई। जिसे कम याद किया जाता है। लेकिन थी वह दुर्लभ घटना। उसने इतिहास की धारा बदल दी। विचार का आधार परिवर्तित कर दिया। इतिहासकारों और प्राचीनविदों को नए स्फुरण से परिपूर्ण कर दिया। भारत को उसके अमृत पथ पर चलने की नई उर्जा दे दी। वह घटना क्या थी? यह हम जानें। उसी साल कौटिल्य के अर्थशास्त्र का प्रामाणिक प्रकाशन हुआ। जिसे आर. शामाशास्त्री ने प्रकाशित कराया। नई बहस छिड़ी। दुनिया

को पता चला कि "यह कृति एक ब्राह्मण लेखक की है।"[11] बहस थी नाम पर। लेकिन उस ग्रंथ की एक हस्तलिखित प्रति मिलने से एक अंधेरा छँटा। उससे पहले कुछ भारतीय विद्वानों ने निबंध लिखे थे। लेकिन इस ग्रंथ के आने से सप्रमाण यह सामने आया कि भारत में सदियों पहले से शासन व्यवस्था के हर अंग पर सूक्ष्मता से विचार हुआ है। उसका शासन में प्रयोग और उपयोग भी होता रहा है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में जो विषय सूची है वह इसका प्रमाण देती है। "यह अर्थशास्त्र सर्वप्रथम ग्रंथ है जिसमें राजनैतिक विषयों का सूक्ष्मता से वर्णन किया गया है।"[12] विषय सूची इस प्रकार है- "अर्थशास्त्र में राज्य से संबंधित विद्या के उद्देश्य, उसका अन्य विद्याओं से संबंध, राजा की उत्पत्ति, उसके कर्त्तव्य, अराजकता की स्थिति दूर करने के लिए उसकी आवश्यकता, राज्य के स्वरूप, राज्य के अंग, राज्य के कार्य और प्रकार, मंत्रिमंडल, कोष व्यवस्था, सैनिक शासन व्यवस्था, न्याय व्यवस्था, अंतर राज्य संबंध, युद्ध के विभिन्न प्रकारों व तरीकों, दूत और गुप्तचर आदि।'[13] इससे स्पष्ट है कि इस ग्रंथ में भारत की प्राचीन राजनीतिक प्रणाली अपनी संपूर्णता में आ गई है। इससे यह भी स्पष्ट हो गया कि "प्राचीन भारतीय विचारक केवल आध्यात्मिक ज्ञान में ही नहीं, अन्य विषयों में भी रूचि लेते थे।"[14] जो अन्य विषय हैं उनमें राज-व्यवस्था भी है।

इस कृति ने भारत के विद्वानों को जगाया। उन्हें आत्मविश्वास दिया। फिर क्या था! एक प्रवाह जो इतिहास के जटाजूट में उलझा हुआ था वह धरती पर उतरा और प्रवाहित होने लगा। परिणामस्वरूप ए.सी. दास ने 1907 में माडर्न रिव्यू में एक लेख लिखा। यह प्रतिपादित किया कि भारत में प्राचीन समय से लोकतंत्र और गणतंत्र की परंपरा है। जिसका पिरामिड स्थानीय शासन की धुरी पर खड़ा रहता था। एस.के. आयंगार ने चोल शासन व्यवस्था का अध्ययन कर ग्राम पंचायतों के तंत्र पर प्रकाश डाला। काशी प्रसाद जयसवाल ने 1912 से 1915 तक जो लेख लिखे वे 1924 में हिंदू राज्य-शास्त्र (हिंदू पोलिटी) पुस्तक में छपे। इतिहासकारों ने खोजा और पाया कि कौटिल्य ही चाणक्य हैं। उसी चाणक्य ने सिकंदर के आक्रमण के पश्चात एक साम्राज्य की स्थापना की जो नवीं सदी तक चलता रहा। बाद में उसकी निरंतरता टूट गई। अब इसके प्रमाण आ गए हैं कि भारत में राज्य-व्यवस्था जो थी वह दुनिया की राज्य-व्यवस्थाओं से श्रेष्ठ थी। भारतीय साम्राज्य दूसरे पुराने साम्राज्यों से अधिक क्षमताशाली सिद्ध हुआ।

भारत की प्राचीन राज्य-व्यवस्था पर अध्ययन का यह क्रम चलता रहा। पी.ए. बनर्जी, के.बी. रंग स्वामी आंयगार, आर.सी. मजुमदार, नरेंद्र नाथ ला, बी.के. सरकार, यू. घोषाल, एस.बी. विश्वनाथ, डी.आर. भंडारकर, बी.आर.आर. दीक्षितार, नारायणचंद्र बंदोपाध्याय जैसे अग्रणी इतिहासकार हैं, जिन्होंने बीसवीं सदी के तीसरे दशक तक अपने लेखन और पुस्तकों से इस धारणा को मटियामेट कर दिया कि भारत में राष्ट्रीयता और लोकतांत्रिक शासन प्रणाली थी ही नहीं। तीसरे दशक के बाद जो सिलसिला चला वह आज तक बना हुआ है। उसमें वृद्धि ही हो रही है।

श्री अरविंद ने अपने लेखन से इसमें नए आयाम जोड़े। उसे संपूर्णता दी। उनकी विश्वदृष्टि में संस्कृति, सभ्यता, अध्यात्म और शासन प्रणाली का अनोखा एकीकरण है। यही भारतीय जीवन दृष्टि का मूल तत्व है। श्री अरविंद ने उसे एक सूत्रता दी, जबकि पश्चिम इन्हें खंड-खंड कर देखने और दिखाने का अभ्यस्त शुरू से ही हो गया है। श्री अरविंद ने जीवन-जगत की परस्परता को जो आधार दिया उसकी उस समय कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। इसीलिए संभवतः उन्होंने क्षेत्र संन्यास लिया। लेकिन परंपरागत अर्थों में संन्यास की जो कल्पना है उसे उन्होंने कामनारहित कर्म में रूपातंरित किया। वे राजनीति से विमुख नहीं हुए। उन्होंने राजनीति को नई राह दिखाने के लिए साधना की। यह रेखांकित किया कि प्राचीन भारतीय प्रणाली के आधार पर नई रचना का प्रारंभ स्वाधीनता संग्राम का मंत्र होना चाहिए। उन्हें इसका अनुमान था और वह सही भी था कि पहले जो भ्रम के घने बादल भारत की राजनीति के आकाश में भारतीयता के सूर्य को ढके हुए हैं उन्हें हटाना आवश्यक है। इसीलिए वे इस भ्रम को भी दूर करते हैं कि मन और आत्मा के विषयों में तो भारत की उपलब्धि को स्वीकार करने वाले भी यह कहते हैं कि भारत की संस्कृति जीवन का संगठन करने में समर्थ नहीं हुई जिसका दृष्टांत यूरोप हमारे सामने रखता है। इसका उत्तर उन्होंने इन शब्दों में दिया है, "भारतीय समाज का जीवन जिन आदर्शों से संचालित होता था वे अत्यंत उच्च कोटि के थे। उसकी सामाजिक व्यवस्था का आधार सुदृढ़ हो चुका था। उसके अंदर जो प्रबल जीवनी शक्ति कार्य कर रही थी वह एक असाधारण उर्जा, समृद्धि और सुख-सुविधा का सृजन करती थी। उसने जिस जीवन का संगठन किया था वह अपनी ऐश्वर्यशालिता में, एकतागत विविधता में, सुंदरता, उत्पादकता और गतिमयता में अद्‌भुत था।"[15]

श्री अरविंद का स्पष्ट मत था कि "भारत की राजनीतिक अक्षमता की कहानी उसकी ऐतिहासिक विकासधारा को गलत दृष्टि से देखने और उसके प्राचीन भूतकाल का पर्याप्त ज्ञान न होने के कारण अद्‌भुत

श्री अरविंद ने जीवन-जगत की परस्परता को जो आधार दिया उसकी उस समय कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। इसीलिए संभवतः उन्होंने क्षेत्र संन्यास लिया। लेकिन परंपरागत अर्थों में संन्यास की जो कल्पना है उसे उन्होंने कामनारहित कर्म में रूपातंरित किया। वे राजनीति से विमुख नहीं हुए। उन्होंने राजनीति को नई राह दिखाने के लिए साधना की। यह रेखांकित किया कि प्राचीन भारतीय प्रणाली के आधार पर नई रचना का प्रारंभ स्वाधीनता संग्राम का मंत्र होना चाहिए। उन्हें इसका अनुमान था और वह सही भी था कि पहले जो भ्रम के घने बादल भारत की राजनीति के आकाश में भारतीयता के सूर्य को ढके हुए हैं उन्हें हटाना आवश्यक है

हुई है।... यह सच है कि भारत ने उस प्रतिद्वंद्वितापूर्ण और उत्पीड़क व्यवसायवाद का या स्वाधीनता और ढोंगपूर्ण जनतंत्र के संसदीय संगठन का विकास कभी नहीं किया जो यूरोपीय सभ्यता के विकास-चक्र के बुर्जुआ या वैश्य-युग की विशेषताएँ हैं। परंतु अब वे दिन बीत रहे हैं जब इन चीजों को सामाजिक और राजनीतिक प्रगति की आदर्श अवस्था एवं अंतिम बात मानकर बिना सोचे-विचारे इनकी प्रशंसा करने का फैशन था। अब इनकी त्रुटियाँ दिखलाई पड़ रही हैं और एक पूर्वीय सभ्यता की महानता को इन पश्चिमी प्रगतियों के मानदंड से नापने की कोई आवश्यकता नहीं।"[16]

प्राचीन भारत की राज्य-व्यवस्था पर उन्होंने जो कुछ अपनी लेखमाला में लिखा उसको बीज रूप में एक दशक पहले ही वे 'वंदे मातरम्' में लिख चुके थे। उसका ही विराट रूप वे इन लेखों में दिखाते हैं। जो उन्होंने 1908 में लिखा वह सूत्र रूप में इस तरह था, "लोकप्रिय शासन का सिद्धांत यह है कि सरकार की बागडोर सामान्य जनता के हाथ में हो; लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि वास्तविक शासन जन-साधारण के हाथ में हो। जब जनता सरकार के किए गए कार्यों को स्वीकार या अस्वीकार कर सकती हो और जब उसे यह विश्वास हो कि उसकी स्वीकृति या अस्वीकृति का पूरा-पूरा असर होगा तब कहा जा सकता है कि यह जनतंत्र है, भले उसका रूप पूरी तरह न बन पाया हो। भारतवर्ष के अतीत में जनतंत्र की यह भावना थी। अन्य सभी आर्य जातियों की तरह आरंभ में उसके समाज के भी तीन मुख्य भाग थे: राजा, सामंत और जन-साधारण। आधुनिक काल की बहुत सी शासन प्रणालियाँ इन्हीं से निकली हैं।"[17]

दूसरी प्रणालियों से भारत में जो भिन्नता थी वह कैसी थी? इसका ही उत्तर इसमें है- "यह सच है कि भारत ने उस प्रतिद्वंद्वितापूर्ण और उत्पीड़क व्यवसायवाद का यह स्वाधीनता और ढोंगपूर्ण जनतंत्र के संसदीय संगठन का विकास कभी नहीं किया जो यूरोपीय सभ्यता के विकास-चक्र के बुर्जुआ या वैश्ययुग की विशेषताएँ हैं। परंतु अब वे दिन बीत रहे हैं जब इन चीजों को सामाजिक और राजनीतिक प्रगति की आदर्श अवस्था एवं अंतिम बात मानकर बिना सोचे-विचारे इनकी प्रशंसा करने का फैशन था, अब इनकी त्रुटियाँ दिललाई पड़ रही हैं और एक पूर्वीय सभ्यता की महानता को इन पश्चिमी प्रगतियों के मानदंड से नापने की कोई आवश्यकता नहीं।"[18]

जिस शासन-प्रणाली को श्री अरविंद भारत की स्वाधीनता से बहुत पहले नेतृत्व के गले उतारना चाहते हैं उसके केंद्र में ग्रामीण पंचायतें हैं। एक बार किसी ने श्री अरविंद से पूछा कि क्या आधुनिक समय में पुराने स्वरूपों को वापस लौटाना संभव है? उसका उत्तर उन्होंने दिया कि पुराने स्वरूपों को वापस लौटाने की आवश्यकता नहीं है, पर उस भावना को बनाए रखा जा सकता है। वही अपने नए स्वरूप का सृजन करेगी। यह भारत का विशेष गुण रहा है

लेकिन जनमानस की कौन कहे हमारे इतिहासकार भी इन बातों से अनभिज्ञ हैं। इसे ही श्री अरविंद यहाँ रेखांकित कर रहे हैं कि "दुर्भाग्य का विषय है कि इन भारतीय गणराज्यों के संविधान के ब्योरों के बारे में हम बहुत ही कम जानते हैं और उनके अंदरूनी इतिहास से तो बिल्कुल ही अनभिज्ञ हैं। परंतु इस बात का प्रमाण स्पष्ट रूप में पाया जाता है कि इनका राजनीतिक संगठन अपनी उत्कृष्टता के लिए तथा इनका सैनिक संगठन अपनी दुर्धर्ष कार्यदक्षता के लिए संपूर्ण भारत में सुविख्यात था। बुद्ध का एक मनोरंजक वचन है कि "जब तक प्रजातांत्रिक संस्थाओं को उनके शुद्ध और बलशाली रूप में सुरक्षित रखा जाएगा तब तक इस प्रकार का एक छोटा सा राज्य भी मगध के शक्तिशाली और महत्वाकांक्षी राजतंत्र के शस्त्रास्त्रों से भी अजेय रहेगा। राजनीतिक लेखकों ने भी इस मत का प्रचुर रूप में समर्थन किया है।"[19] इन बातों को श्री अरविंद ने विस्तार से समझाया वह 'भारतीय संस्कृति के आधार' पुस्तक के रूप में उपलब्ध है।

जिस शासन-प्रणाली को श्री अरविंद भारत की स्वाधीनता से बहुत पहले नेतृत्व के गले उतारना चाहते हैं उसके केंद्र में ग्रामीण पंचायतें हैं। एक बार किसी ने श्री अरविंद से पूछा कि क्या आधुनिक समय में पुराने स्वरूपों को वापस लौटाना संभव है? उसका उत्तर उन्होंने दिया कि "पुराने स्वरूपों को वापस लौटाने की आवश्यकता नहीं है, पर उस भावना को बनाए रखा जा सकता है। वही अपने नए स्वरूप का सृजन करेगी। यह भारत का विशेष गुण रहा है।" क्या संसदीय प्रणाली भारत के अनुरूप है? इस प्रश्न पर श्री अरविंद का कहना है कि "आजकल लोग आधुनिक किस्म का लोकतंत्र चाहते हैं, सरकार का संसदीय स्वरूप। संसदीय प्रणाली तो दैव की मारी है। उसने ही यूरोप को वर्तमान दयनीय स्थिति तक पहुँचा दिया है... भारत में प्राचीन पंचायत प्रणाली से शुरूआत की जानी चाहिए।"

भारत में आदिकाल से पंचायतों का अस्तित्व रहा है। उनसे ही ग्रामीण जीवन संचालित होता था। हर गाँव एक स्वायत राज्य था। जिसे आजकल इकाई कहते हैं। श्री अरविंद ने भारत और यूरोप के लोकतंत्र का अंतर समझाते हुए बताया था कि "प्राचीन भारतीय व्यवस्था जीवन में से विकसित हुई थी, उसमें सभी चीजों और सभी हितों के लिए जगह थी।"[20] वैदिक, रामायण, महाभारत, मौर्य, गुप्तकाल और इसी तरह इतिहास के हर काल में शासन की पहली इकाई पंचायत प्रणाली रही है। यह क्रम सत्रहवीं सदी तक अनवरत बना रहा। इसीलिए तो उस समय यानी सत्रहवीं सदी में विश्व की अर्थव्यवस्था में भारत की हिस्सेदारी 23 फीसद थी। इसे ब्रिटेन के आर्थिक इतिहासकार एंगस मेडिसन ने स्वीकार किया है और लिखा है। पर वास्तव में उस समय भारत की हिस्सेदारी 27 फीसद थी। इसी कारण तब भारत सोने की चिड़िया था। अंग्रेजों ने उसे चौपट किया। जब भारत आजाद हुआ तो विश्व की अर्थव्यवस्था में उसकी हिस्सेदारी गिर कर तीन प्रतिशत आ गई थी। दो सौ सालों की लूटपाट का यही एक दुष्परिणाम नहीं था। सबसे बड़ा दुष्परिणाम जो हुआ वह यह था कि ब्रिटिश

काल में भारत के गाँव भी गुलामी की चपेट में आ गए। अंग्रेजों ने गाँवों को सिर्फ राजस्व का जरिया बना दिया। इसके लिए ही पंचायत प्रणाली को फिर से जिंदा किया। जिससे गाँव-समाज में टूटन और दरार जो पड़ी वह बनी हुई है। इसका सबसे बुरा प्रभाव गाँवों की समृद्धि और आत्मनिर्भरता पर पड़ा। गाँव धीरे-धीरे परावलंबी होने लगे। स्वाधीनता संग्राम में महात्मा गांधी के सहयोगी जे.सी. कुमारप्पा ने एक पुस्तक लिखी- 'गांव आंदोलन क्यों?' वे मौलिक चिंतक थे। उनकी यह पुस्तक आज भी बहुत उपयोगी है। इस पुस्तक से भी श्री अरविंद का चिंतन और राज्य-व्यवस्था के संबंध में उनके मौलिक सुझाव को समर्थन मिलता है।

महात्मा गांधी और जे.सी. कुमारप्पा के बाद जेपी (लोकनायक जयप्रकाश नारायण), पंडित दीनदयाल उपाध्याय और डॉ. लोहिया ने भी ग्राम स्वराज को मूलभूत माना। उसके लिए अपनी शब्दावली में अभियान चलाया। इन महापुरुषों के विचारों से पाँच सूत्र निकलते हैं। पहला कि भारत की प्राचीन ग्राम व्यवस्था को आधुनिक ढंग से पुनर्गठित किया जाना चाहिए। दूसरा-शासन में गाँव को मूल इकाई बनाया जाना चाहिए। तीसरा- गाँव, जिला, राज्य और केंद्र का क्रमिक और उत्तरोत्तर परंतु एकीकृत विकास होना चाहिए। चौथा- गाँव स्वायत हों। पाँचवाँ- केंद्र के हाथ में नियंत्रण रहना चाहिए। जब जेपी ने देखा कि पंचायती राज के प्रति राज्य सरकारें अरुचि दिखा रही है। उन्होंने ग्राम स्वराज के लिए एक राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया, जिसमें अनेक मुख्यमंत्री और बड़े राजनीतिक नेता आए। उन्होंने एक लेख लिखा। जिसका शीर्षक था- 'भारतीय राज्य व्यवस्था की पुनर्रचना: एक सुझाव'। जय प्रकाश ने अपने लेख में दो बातें सुझाई। पहली यह कि संविधान की आत्मा में स्वतंत्रता और लोकतंत्र रचा बसा है। लेकिन वह उल्टे पिरामिड पर खड़ा है। दूसरी बात उन्होंने यह कही कि यह उचित है कि पिछले दस साल की अवधि के अपने लोकतांत्रिक अनुभव का लेखा-जोखा किया जाए। यह 1959 की घटना है।

यहाँ श्री अरविंद, महात्मा गांधी, जे.सी. कुमारप्पा, जेपी और मानवेंद्र नाथ राय के विचारों में समानता हम देख सकते हैं। इसे ही सत्ता के विकेंद्रीकरण का नाम मिला है। सत्ता का विकेंद्रीकरण शब्द भारतीय राजनीति में सबसे ज्यादा भ्रष्ट शब्द उसी तरह हो गया है जैसा कभी समाजवाद शब्द था। कोई नहीं बताता कि स्पष्टतया सत्ता के विकेंद्रीकरण से उसका आशय क्या है। आशय और अभिप्राय में फर्क है। आशय स्पष्ट होता है जबकि अभिप्राय में व्याख्या के लिए अवसर होते हैं। अभिप्राय में आशय को खोजना पड़ता है। सत्ता का विकेंद्रीकरण भी एक अभिप्राय है। उसमें अनेक आयाम जोड़े जा सकते हैं। सत्ता के विकेंद्रीकरण पर विचार तब तक सतही और अवास्तविक बना रहेगा जब तक संसदीय लोकतंत्र को भारतीय भावभूमि पर आधारित नहीं कर दिया जाता। यही वह आशय है जिसे श्री अरविंद स्पष्ट करते हैं कि "संसदीय सरकार भारत के लिए उपयुक्त नहीं है।"[21] वे तो यहाँ तक कहते हैं कि "पर हम हमेशा उसी को उठा लेते हैं जो पश्चिम उतार फेंकता है।"[22] श्री अरविंद यूरोप के संसदीय लोकतंत्र में दो दोष देखते हैं और उसके बारे में कहते हैं कि वह देव की मारी हुई है तो उसका मूल तत्व उनकी दृष्टि में क्या है? वे कहते हैं कि "वैज्ञानिक बुद्धि अपनी यांत्रिक पद्धति के बोझ के नीचे प्राणिक एवं आध्यात्मिक अंतर्ज्ञान के कार्य को कुचल डालती है। यह उसकी एक भूल है। यही यूरोप की दुर्बलता है और इसने उसकी अभीप्सा को धोखा दिया है और उसे उसके उच्चतर आदर्शों को सच्चे रूप में उपलब्ध करने से रोका है।"[23]

यूरोप से भिन्न भारत की प्राचीन व्यवस्था में "यही समझा जाता था कि प्रथाओं और संस्थाओं का क्रमशः विकास होने दिया जाए जो सुप्रतिष्ठित व्यवस्था के सिद्धांत की, समाज-व्यवस्था और राजनीति के पूर्व-दृष्टांत की एवं प्रचलित ढाँचे और रचना की रक्षा करे। इसके विपरीत, भारतीय शासन प्रणाली ने जनता के जीवन की स्वाभाविक व्यवस्था के स्थान पर हानिकारक यांत्रिक व्यवस्था की स्थापना कभी नहीं की जो यूरोपीय सभ्यता की व्याधि रही है और जिसका चरम परिणाम आज हमें नौकरशाही एवं व्यावसायिक राज्यपद्धति के कृत्रिम दैत्याकार संगठन के रूप में दिखाई पड़ रहा है।"[24]

कैसी थी प्राचीन भारत में शासन प्रणाली की संरचना? इसे श्री अरविंद इस तरह बताते हैं, "भारतीय शासन-प्रणाली एक अत्यंत जटिल सामुदायिक स्वाधीनता और आत्म-निर्णय की प्रणाली थी। समाज की प्रत्येक वर्ग रूपी इकाई का अपना स्वाभाविक अस्तित्व होता था और वह अपने निजी जीवन और कार्य की व्यवस्था करती थी, अपने क्षेत्र और अपनी सीमाओं के स्वाभाविक विभाजन के कारण यह शेष इकाइयों से पृथक होती थी, किंतु अच्छी तरह से जाने-समझे हुए संबंधों के द्वारा संपूर्ण समष्टि के साथ संबद्ध रहती थी, सामुदायिक सत्ता के अधिकारों और कर्तव्यों में प्रत्येक इकाई अन्यों की सहभागिनी होती थी, वह अपने निजी नियमों और विधानों को कार्यान्वित करती थी तथा अपनी निजी सीमाओं के भीतर शासन प्रबंध का कार्य करती थी, पारस्परिक या सर्वसामान्य हित के विषयों के विवेचन तथा नियमन के कार्य में अन्यों के साथ हाथ बँटाती थी और राज्य या साम्राज्य की महासभाओं में किसी-न-किसी रूप में तथा

यूरोप से भिन्न भारत की प्राचीन व्यवस्था में यही समझा जाता था कि प्रथाओं और संस्थाओं का क्रमशः विकास होने दिया जाए जो सुप्रतिष्ठित व्यवस्था के सिद्धांत की, समाज-व्यवस्था और राजनीति के पूर्व-दृष्टांत की एवं प्रचलित ढाँचे और रचना की रक्षा करे। इसके विपरीत, भारतीय शासन प्रणाली ने जनता के जीवन की स्वाभाविक व्यवस्था के स्थान पर हानिकारक यांत्रिक व्यवस्था की स्थापना कभी नहीं की जो यूरोपीय सभ्यता की व्याधि रही है और जिसका चरम परिणाम आज हमें नौकरशाही एवं व्यावसायिक राज्यपद्धति के कृत्रिम दैत्याकार संगठन के रूप में दिखाई पड़ रहा है

अपने महत्व की मात्रा के अनुसार प्रतिनिधित्व करती थी।"[25]

उनके शब्दों में "भारतीय शासन प्रणाली का सिद्धांत, मूलसूत्र एवं वास्तविक संविधान यही था, वह सामुदायिक स्वाधीनता और आत्म-निर्धारण का एक जटिल मिश्रण थी जिसके ऊपर एक सर्वोच्च संगति-स्थापक सत्ता, एक शासक व्यक्ति एवं संस्था होती थी जो कार्यक्षम शक्तियों, पद और प्रतिष्ठा से सुसंपन्न होते हुए भी अपने विशिष्ट अधिकारों और कर्तव्यों की सीमा से बंधी रहती थी, शेष सबको नियंत्रित करती और साथ ही उनके द्वारा नियंत्रित रहती थी।"[26]

श्री अरविंद ने इन शब्दों में भारत की प्राचीन राज्य व्यवस्था के पतन की कारण-मीमांसा की है - "यह स्पष्ट रूप से पता नहीं चलता कि ये महान संस्थाएँ कब लुप्त हो गई, मुसलमानों के आक्रमण से पहले या विदेशियों की विजय के परिणामस्वरूप। यदि ऊपर से एकाएक यह प्रणाली किसी प्रकार भंग हो गई हो जिससे राज-शासन तथा सामाजिक-राजनीतिक संगठन के अन्य अंगों में खाई पैदा हो गई हो और परिमाणत: राजा अपने पार्थक्य के कारण अधिक स्वेच्छाचारी बन गया हो तथा अधिक व्यापक राष्ट्रीय कार्यों का नियंत्रण उसने एकमात्र अपने हाथ में ले लिया हो और सामाजिक-राजनीतिक संगठन के अन्य अंगों में से प्रत्येक अपना आंतरिक कार्य-व्यापार तो स्वयं चलाता हो- ग्राम-समाजों की अवस्था अंत तक ऐसी ही रही- पर राज्य के उच्चतर विषयों के साथ किसी प्रकार का जीवंत संबंध न रखता हो तो इस प्रकार की अवस्था जटिल सामुदायिक स्वतंत्रता के संगठन में जहाँ जीवन के परस्पर सामंजस्य की अनिवार्य आवश्यकता थी, स्पष्टत: ही दुर्बलता का एक महान कारण हुई होगी। कुछ भी हो, मध्य एशिया से जो आक्रमण हुआ वह अपने साथ एक ऐसे व्यक्तिगत एवं निरंकुश शासन की परंपरा लेकर आया जो इन प्रतिबंधों से अपरिचित था। अतएव यह स्वाभाविक ही था कि वह ऐसी संस्थाओं का, अथवा इनके अवशेषों या अद्यावधि जीवित रूपों का, जहाँ कहीं भी वे अभी तक विद्यमान हों, तुरंत उन्मूलन कर दे, और संपूर्ण उत्तर भारत में यही हुआ।"[27]

वे बताते हैं कि "भारतीय सभ्यता ने एक उच्च कोटि की राजनीतिक प्रणाली का विकास किया था जो ठोस रूप में स्थायी दृढ़ता के साथ निर्मित की गई थी; साथ ही, पौर संघटन के अपने प्रयत्नों में मनुष्य का मन जिन राजतंत्र, जनतंत्र तथा अन्य शासनतंत्रों के सिद्धांतों और प्रवृत्तियों की ओर झुका है उन सबको भारतीय सभ्यता ने अद्‌भुत कौशल से एक-दूसरे के साथ संयुक्त किया और फिर भी वह, यांत्रीकारक प्रवृत्ति की उस अति से मुक्त रही जो कि आधुनिक यूरोपीय राज्य का दोष है।"[28] भारत और यूरोप के अंतर को उन्होंने इस तरह बताया है- "भारत और यूरोप में जो सादृश्य दिखलाया गया है वह बिलकुल ही पूर्ण नहीं है और दोनों की अवस्थाएँ बिलकुल एक ढंग की नहीं थीं। यूरोप की जातियाँ ऐसी जातियाँ है जो अपने सामुदायिक व्यक्तित्व में एक-दूसरी से अत्यंत तीव्र रूप से भिन्न हैं और ईसाई धर्म में उनकी आध्यात्मिकता एकता या यहाँ तक कि एक सर्वसामान्य यूरोपीय सभ्यता में उनकी सांस्कृतिक एकता जो कभी भी उतनी वास्तविक और पूर्ण नहीं थी जितनी भारत की प्राचीन आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक एकता थी।"[29]

स्पष्ट है कि श्री अरविंद लोकतंत्र के पक्षधर तो थे, लेकिन पश्चिमी लोकतंत्र की नकल को हानिकारक मानते थे। इस आधार पर कह सकते हैं कि भारत में लोकतंत्र की प्रचलित व्यवस्था और शासन प्रणाली से वे संतुष्ट नहीं थे। वे सत्ता के विकेंद्रीकरण और शासन में गाँव की स्वायत्तता को कायम होते हुए देखना चाहते थे। उनसे एक बार पूछा गया कि आप भारत में किस प्रकार का शासन चाहते हैं, तो उन्होंने कहा था- "मेरी धारणा वही है, जो टैगोर ने एक बार कही थी। एक राष्ट्रपति होना चाहिए, जिसे पर्याप्त अधिकार हो कि वह नीतियों को लगातार लागू करा सके। एक जनता की चुनी हुई प्रतिनिधि सभा होनी चाहिए। राज्यों को महासंघ को निश्चित योगदान देना चाहिए। यह सब कुछ एकदम ऊपरी सत्ता में संयुक्त हो, किंतु नीचे जनता और स्थानीय निकायों को पर्याप्त स्वाधीनता होनी चाहिए कि वे अपनी क्षेत्रीय समस्याओं को दृष्टि में रखकर सीधे विधानादि बना सकें।"[30]

संदर्भ

1. श्री अरविंद, लाइफ ऐंड टाइम्स ऑफ दी महायोगी (द प्री-पाण्डिचेरी फेज), मनोज दास, श्री अरविंद इंटरनेशनल सेंटर ऑफ एजुकेशन
2. बाल गंगाधर तिलक का मई, 1917 में दिया गया नासिक के भाषण का वाक्य
3. वंदेमातरम, 18 फरवरी, 1908
4. भारत का पुनर्जन्म, श्री अरविंद, जोजेफ बप्तिस्ता को लिखे गए पत्र से, 5 जनवरी, 1920, पृष्ठ-158
5. वही, पृष्ठ 159
6. भारतीय संस्कृति के आधार, श्री अरविंद, पृष्ठ-1
7. वही, पृष्ठ-11
8. वही, पृष्ठ 16
9. प्राचीन भारत में राज्य और शासन व्यवस्था, मनोरमा जौहरी, पृष्ठ-1
10. वही, पृष्ठ-3
11. वही, पृष्ठ-5
12 वही, पृष्ठ-6
13. वही, पृष्ठ 6
14. वही, पृष्ठ-6
15. भारतीय संस्कृति के आधार, श्री अरविंद, पृष्ठ-360
16. वही, पृष्ठ-361
17. समय की आवश्यकता (श्री अरविंद के भातर -संबंधी कुछ लेख), श्री अरविंद सोसायटी, पाण्डिचेरी, प्राचीन भारत की राज्यवस्था, (वंदे मातरम, 20 मार्च, 1908), पृष्ठ-21
18. भारतीय संस्कृति के आधार, श्री अरविंद, पृष्ठ-361
19. वही - 365
20. भारत का पुनर्जन्म, श्री अरविंद, पृष्ठ-224
21. वही, पृष्ठ-225
22. वही, पृष्ठ-225
23. संस्कृति के आधार, पृष्ठ-377
24. वही, पृष्ठ-380
25. वही, पृष्ठ-383
26. वही, पृष्ठ-384
27. वही, पृष्ठ-395
28. वही, पृष्ठ-403
29. वही, पृष्ठ-406
30. रेमिनिसैंसेज एण्ड एनक्डोट्स ऑफ श्री अरविन्दो, पृष्ठ-40

डॉ. राजीव रंजन गिरि

गांधी के सपनों का स्वराज

गांधी जी के मन में स्वाधीन भारत के लिए राजनीतिक व्यवस्था की जो कल्पना थी, वह पार्लियामेंट्री ढंग के स्वराज की नहीं थी। गांधी जी कैसा स्वराज चाहते थे और इसके संविधान की कैसी संकल्पना उनके मन में थी, एक विश्लेषणात्मक विवरण

भारत की आजादी की लड़ाई में शामिल नेताओं के राष्ट्र निर्माण के अपने-अपने स्वप्न थे। ये स्वप्न किसी मामले में एक दूसरे का संगत करते थे तो किसी मामले में सामना भी। परस्पर साझेदारी और बहस मुबाहिसे की प्रक्रिया में स्वाधीनोत्तर भारत की परिकल्पना गति एवं आकार ग्रहण कर रही थी। इन परिकल्पनाओं का निर्माण उन पुरखों की अपनी वैचारिक समझ, शिक्षा-दीक्षा और सरोकारों से हुआ था। राष्ट्रीय आंदोलन के विकास के दौरान अंग्रेजी सत्ता द्वारा समय समय पर प्रस्तुत प्रावधानों, संघर्षरत समूहों से सामना के क्रम में बदलती नीतियों के परिणामस्वरूप संविधान -निर्माण हेतु संविधान सभा के गठन की यात्रा संपन्न हुई। इसी के साथ सुनिश्चित हुई भारत में भावी शासन पद्धति के तौर पर संसदीय लोकतंत्र की व्यवस्था।

महात्मा गांधी के सपनों के भारत के लिए शासन की यह व्यवस्था उपयुक्त नहीं थी। संविधान सभा के गठन और प्रातिनिधिक लोकतंत्र के निर्मित संसदीय व्यवस्था में उन्होंने अपने समय की सांप्रदायिकता और अन्य समस्याओं का हल देखा था। इसके साथ ही एक दूसरी बात भी थी। गांधी जी के ज्यादातर साथियों को यही शासन पद्धति पसंद थी। अपने चिंतन की बुनियाद और बुलंदी 'हिंद स्वराज' के बारे में 1921 ई. में लिखे एक आलेख में महात्मा गांधी ने दर्ज की कि "वे (पाठक) ऐसा न मान लें कि इस किताब में जिस स्वराज की तस्वीर मैंने खड़ी की है, वैसा स्वराज कायम करने के लिए आज मेरी कोशिशें चल रही हैं। मैं जानता हूँ कि अभी हिंदुस्तान उसके लिए तैयार नहीं है। ऐसा कहने में शायद ढिठाई का भास हो, लेकिन मुझे तो पक्का विश्वास है कि इसमें (हिंद स्वराज), जिस स्वराज की तस्वीर मैंने खींची है वैसा स्वराज पाने की मेरी निजी कोशिश जरूर चल रही है। लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि आज मेरी सामूहिक (आम प्रकृति का ध्येय) तो हिंदुस्तान की प्रजा की इच्छा के मुताबिक पार्लियामेंट्री ढंग का स्वराज पाना है।"[1]

'हिंद स्वराज' के जरिये स्वराज्य की एक तस्वीर गांधी जी ने खींची थी। इस पर वे आजीवन कायम रहे। यह उनके सपनों का स्वराज था। इनके उपरोक्त कथन से स्पष्ट होता है इस स्वराज्य को प्राप्त करने की उनकी निजी कोशिश चल रही थी, परंतु जिस संघर्ष का वे नेतृत्व कर रहे थे, उसमें जो समूह शामिल था वह गांधी जी के स्वराज्य के इस विचार के साथ नहीं था। इसका भान उनको था कि हिंदुस्तान इसके लिए तैयार नहीं है। जब गांधी जी यह कह रहे थे कि हिंदुस्तान इसके लिए तैयार नहीं है तो इसका मतलब क्या है? क्या गांधी जी के स्वराज की आलोचना आम हिंदुस्तानियों ने की थी? क्या उनके 'हिंद स्वराज' के विचार से औसत हिंदुस्तानियों ने असहमति प्रगट की थी? जवाब होगा, नहीं। इससे असहमत थे अंग्रेजी ढंग में शिक्षित और प्राशिक्षित लोग ऐसे तमाम लोग जो राष्ट्रीय आंदोलन के अंग थे और महात्मा गांधी के साथ भी। अंग्रेजी सत्ता के साथ 'आधुनिक मानस' वाले लोग इस ढंग की शासन पद्धति के कायल तो थे ही, विडंबना यह भी थी कि गांधी जी के साथियों में भी ऐसे तमाम लोग थे।[2]

यह भी स्पष्ट तौर पर कहा जा सकता है कि पार्लियामेंट्री ढंग के स्वराज से इतर भी स्वराज्य की कल्पना थी। गांधी जी की पसंदीदा कल्पना पार्लियामेंट्री ढंग के स्वराज्य की नहीं थी।

क्या भारत के संविधान में गांधी जी के स्वराज्य की कल्पना समाहित हुई? पार्लियामेंट्री ढंग के स्वराज्य से इतर जो गांधी जी की कल्पना थी उसका....क्या हुआ? संसदीय लोकतंत्र से इतर इस व्यवस्था का आधार क्या था?

'हिंद स्वराज' के चौथे अध्याय 'स्वराज क्या है?' में एक सवाल के जवाब में संपादक (गांधी जी) ने लिखा है "इसका अर्थ यह हुआ कि हमें अंग्रेजी राज्य तो चाहिए, पर अंग्रेज शासक नहीं चाहिए। आप बाघ का स्वभाव तो चाहते हैं लेकिन बाघ नहीं चाहते। मतलब यह हुआ कि आप हिंदुस्तान को अंग्रेज बनाना चाहते हैं और हिंदुस्तान जब अंग्रेज बन जाएगा, तब वह हिंदुस्तान नहीं कहा जाएगा लेकिन सच्चा इंग्लिस्तान कहा जाएगा। यह मेरी कल्पना का स्वराज्य नहीं है।"[3] गांधी जी के इस कथन के आलोक में यह कहा जा सकता है कि हमने अंग्रेजी राज्य व्यवस्था को अपनाया, भले ही अंग्रेजों को हटा दिया। शासन करने वाले गोरों की जगह हमारे देश के लोग, अपने लोग आ गए परंतु शासन व्यवस्था वही रही। गांधी जी इसमें हिंदुस्तान का इंग्लिस्तान बनना देख रहे थे, इसलिए यह उनकी कल्पना का स्वराज्य नहीं था। स्वाधीनता आंदोलन के दिनों में ऐसी चिंता कई लोगों की थी। अमर कथाकार प्रेमचंद ने 'आहुति' कहानी की नायिका रूपमणि से कहलवाया था, "जिन बुराइयों को दूर करने के लिए आज हम प्राणों को हथेली पर लिए हुए हैं, उन्हीं बुराइयों को क्या प्रजा इसलिए सर चढ़ाएगी कि वे विदेशी नहीं, स्वदेशी हैं। कम से कम मेरे लिए तो स्वराज्य का यह अर्थ नहीं था कि जॉन की जगह गोविंद बैठ जाए।"[4]

प्रेमचंद के उपन्यास 'गबन' के एक पात्र देवीदीन ने राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं से प्रश्न किया था, कि "जब तुम सुराज का नाम लेते हो, उसका कौन-सा स्वरूप तुम्हारी आंखों के सामने आता है? तुम भी बड़े- बड़े तलब लोगे, तुम भी अंग्रेजों की तरह महलों में रहोगे, पहाड़ों की हवा खाओगे, अंग्रेजी ठाठ बनाए घूमोगे? इस सुराज से देश का क्या कल्याण होगा?"[5] गांधी जी हों या प्रेमचंद सरीखे लेखक, इनकी चिंता यही थी कि जिस संरचना और व्यवस्था का निर्माण अंग्रेजी सत्ता ने अपने उपनिवेश को मजबूत बनाने, भारतीयों का शोषण करने के लिए किया था, स्वराज में उसका बना रहना क्यों जरूरी है?

सुराज के स्वरूप का प्रश्न देवीदीन खटीक ने 'गबन' में अपने दौर के नेताओं से पूछा था। इसके कई स्वरूप स्वरूप थे। हमारा 'संविधान' भी ऐसा ही एक विशिष्ट स्वरूप अभिव्यक्त करता है। जिस दौर में भारत का संविधान बनाने के लिए संविधान सभा काम कर रही थी, उसी दौर में गांधी विचारों के व्याख्याकार श्रीमन्नारायण ने एक रचनात्मक हस्तक्षेप किया, 'गांधियन कंस्टीट्यूशन फॉर फ्री इंडिया'[6] लिखकर। पत्रकार रामबहादुर राय ने अपनी सद्य: प्रकाशित पुस्तक 'भारतीय संविधान: अनकही कहानी' की भूमिका में ऐसे वैकल्पिक संविधानों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "यह जानकारी तो आम है कि

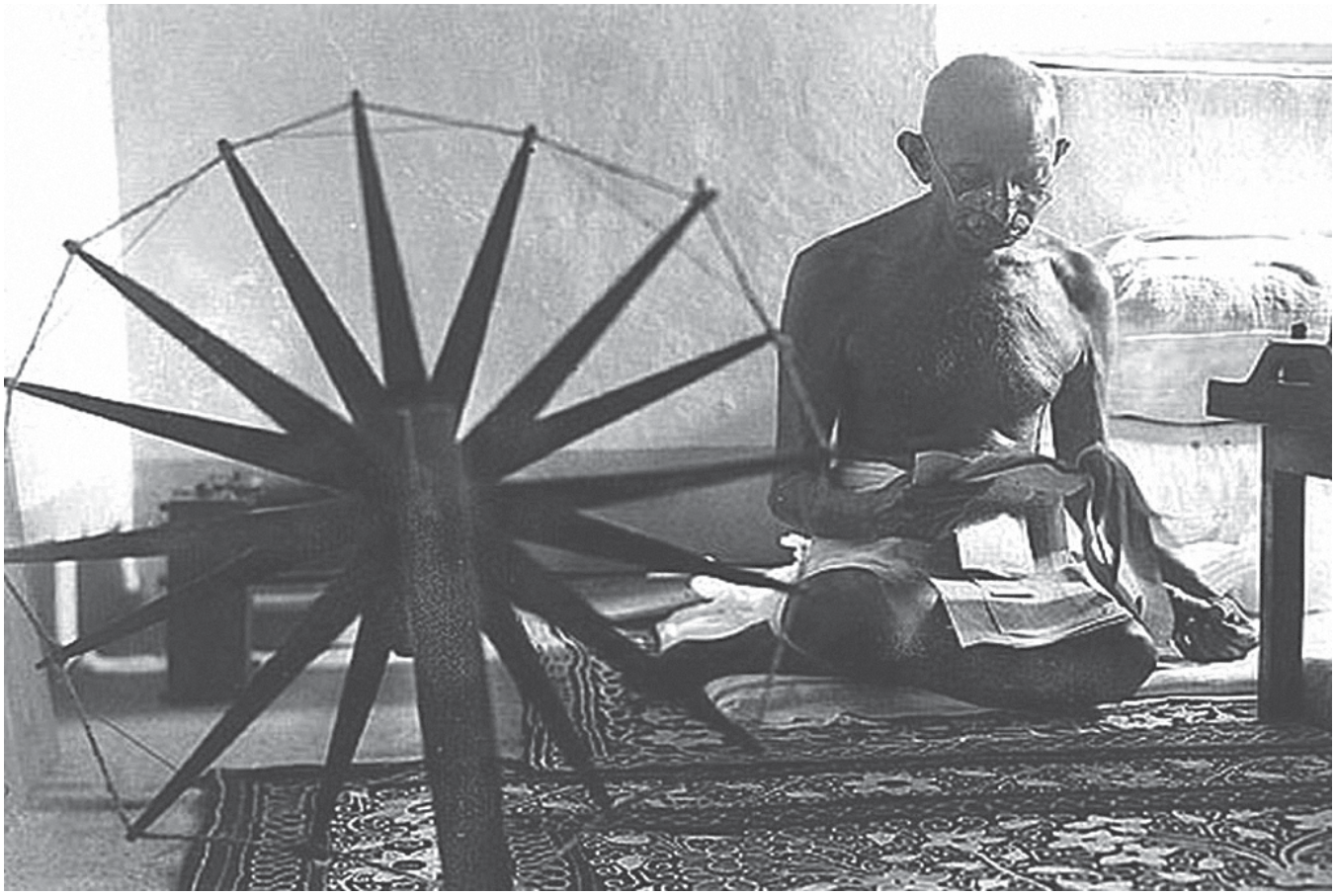

संविधान सभा के दिनों में अनेक वैकल्पिक संविधान बनाए गए थे। उनमें से एक की याद आज भी बनी हुई है। इसके बारे में एक धारणा भी है कि उसे महात्मा गांधी का आशीर्वाद प्राप्त था। लेकिन यह कितने लोग जानते हैं कि निजी और सामूहिक स्तर पर अपनी-अपनी सोच से वैकल्पिक संविधान बनाने का सिलसिला थमा नहीं है, वह अब भी बना हुआ है। यहाँ कुछ ऐसे संविधानों का उल्लेख किया जा सकता है। इनमें पहला है 'भारत का संविधान'। जिसे ज्ञान यज्ञ आश्रम ने 1987 में बनाया। इसमें भी 395 अनुच्छेद हैं। दूसरा है - स्वामी मुक्तानंद सरस्वती का 'अभारतीय इंडियन संविधान'। जिसे 2005 में प्रकाशित कर वितरित किया गया था। तीसरा है, 'नए भारत के निर्माण का नक्शा'। इसे 2015 में छपवाया गया था। चौथा है, 'प्रयाग घोषणा - पत्र' इसे अधिवक्ता परिषद ने 2000 में छपवाया था। पाँचवाँ है, 'जीवन विद्या आधारित संविधान'। छठा है, 'भारत के नए संविधान का प्रारूप' इसे मध्य प्रदेश की जीवन भारतीय विद्यार्थी परिषद ने स्वर्ण जयंती पर हिंदी अंग्रेजी में छापा।"[7]

श्रीमन्नारायण अग्रवाल 'सेकसरिया कॉलेज ऑफ कॉमर्स, वर्धा' में प्राचार्य थे। वे जमनालाल बजाज के दामाद भी थे। इन्होंने अपनी पुस्तक की पांडुलिपि गांधी जी को अवलोकनार्थ भेजी और उनसे अभिमत लिखने का आग्रह भी किया। 30 नवंबर 1945 को कोलकाता जाते हुए रेलगाड़ी में गांधी जी ने इस पांडुलिपि पर अपने विचार लिखे जो इस पुस्तक की भूमिका के तौर पर प्रकाशित है।[8]

इस पुस्तक के शीर्षक को उचित नहीं मानते हुए गांधी जी ने लिखा "कदाचित 'गांधियन कॉन्स्टिट्यूशन' प्रिंसिपल अग्रवाल की पुस्तक के लिए उचित शीर्षक नहीं है। इसे कदाचित एक सुविधाजनक और सुसंबद्ध शीर्षक के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।"[9] पहली पंक्ति में ही गांधी जी ने शीर्षक की अनुपयुक्ता का उल्लेख किया ताकि इस शीर्षक से अभिव्यक्त होता अर्थ और उससे ग्रहण होने वाले भ्रम का निराकरण हो। साथ ही, महज सुविधा के लिहाज से इसे स्वीकारने की बात कहकर उन्होंने इस पर अपनी सहमति भी दे दी। गांधी जी ने आगे लिखा कि "इसका ढाँचा वस्तुतः प्रिंसिपल अग्रवाल का तैयार किया हुआ है, और यह मेरे लेखों के उनके अध्ययन पर आधारित है। वे कई वर्षों से उनकी व्याख्या करते आए हैं और चूँकि उन्हें इस बात की बहुत फिक्र है कि वे मेरे लेखों की किसी भी तरह से गलत व्याख्या न करें, इसलिए वे मुझे दिखाए बिना कोई चीज प्रकाशित नहीं करते। इसमें लाभ और हानि दोनों है। लाभ तो स्पष्ट है। हानि यह है कि पाठक लेख विशेष को हर तरह से मेरा दृष्टिकोण समझने की भूल कर सकता है।"[10] गांधी जी पाठकों के समक्ष स्पष्ट करना चाहते हैं कि पुस्तक का ढाँचा लेखक के मस्तिष्क की उपज है, उनके नहीं। वे यह स्वीकार करते हैं कि इस पुस्तक के लेखक उनके विचारों के व्याख्याकार रहे हैं और उनकी चिंता रहती है कि गांधी जी के लेखों कि किसी तरह से गलत व्याख्या न हो। गांधी जी चेतावनी देते हैं कि पाठक लेख विशेष को हर तरह से उनका दृष्टिकोण न समझे। बावजूद इसके, यह भी कहा जा सकता है कि गांधी जी अपने विचारों की श्रीमन्नारायण द्वारा की गई व्याख्या से असहमत नहीं हैं। श्रीमन्नारायण की व्याख्या और समझ से इनकी सहमति है। गांधी जी यह याद दिलाना आवश्यक समझते हैं कि "यदि मुझे इन पृष्ठों के लिखे हर शब्द को अपनाना हो तो इन्हें मैं ही क्यों न लिख दूँ।"[11] इस अर्थ में कि इसमें लिखित लेख विशेष के शब्द-दर-शब्द को गांधी जी का दृष्टिकोण न समझ लिया जाए इसलिए उन्होंने साफ-साफ शब्दों में ऐसी भूल न करने के प्रति चेताया कि "मैं उन्हें चेतावनी देता हूँ कि वे ऐसी कोई भूल न करें।"[12] अपनी तमाम व्यतताओं के बावजूद इस पुस्तक को उन्होंने कितना महत्व दिया, इसका पता उनके इस वाक्य से चलता है, "मैंने इस संविधान को अन्य कार्यों के रहते, मैं जितनी सावधानी के साथ इसे पढ़ सकता था, उतनी सावधानी के साथ दो बार पढ़ने की कोशिश की है, फिर भी मैं इस में दिए गए प्रत्येक विचार और प्रत्येक शब्द को जाँच नहीं सका हूँ।[13] यहाँ यह सवाल किया जा सकता है कि जब सावधानीपूर्वक दो बार उन्होंने इसे पढ़ लिया तो फिर प्रत्येक विचार और प्रत्येक शब्द को जाँचने में क्या दिक्कत? ऐसा गांधी जी जैसा सजग व्यक्ति क्यों लिख रहा है? असल में यह शिष्टतावश कहा गया है। उन्होंने इसे स्वीकार भी किया है, "मेरी शिष्टता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की भावना मुझे ऐसी धृष्टता करने की इजाजत भी नहीं देती।"[14] श्रीमन्नारायण लिखित यह पुस्तक गांधी विचार के अनुरूप है। यह गांधी जी ने माना है, "मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि इस पुस्तिका में इस बात का प्रचुर प्रमाण है कि लेखक ने इसे यथासंभव सही रूप में प्रस्तुत करने के लिए बहुत सावधानी से काम लिया है। इस पुस्तिका में ऐसा कुछ नहीं है जो मुझे उन चीजों से असंगत लगा हो, जिसका मैं प्रतिपादन करना चाहूँगा।"[15] अतः यह कहना होगा कि पुस्तक के विचार गांधी-विचार से संगत करते हैं। गांधी जी जो प्रतिपादन करते श्रीमन्नारायण ने वही प्रतिपादित किया है। गांधी जी ने यह भी बताया है कि "लेखक ने कृपापूर्वक वे सब संशोधन कर लिए हैं जो मुझे आवश्यक लगे।"[16] इन सुधारों के बावजूद गांधी जी यह याद दिलाना जरूरी समझते हैं कि "कांस्टिट्यूशन शब्द से पाठक यह समझने की भूल न करें कि लेखक ने संपूर्ण संविधान देने का

पहली पंक्ति में ही गांधी जी ने शीर्षक की अनुपयुक्तता का उल्लेख किया ताकि इस शीर्षक से अभिव्यक्त होता अर्थ और उससे ग्रहण होने वाले भ्रम का निराकरण हो। साथ ही, महज सुविधा के लिहाज से इसे स्वीकारने की बात कहकर उन्होंने इस पर अपनी सहमति भी दे दी। गांधी जी ने आगे लिखा कि इसका ढाँचा वस्तुतः प्रिंसिपल अग्रवाल का तैयार किया हुआ है, और यह मेरे लेखों के उनके अध्ययन पर आधारित है

दावा किया है। उन्होंने पुस्तिका के शुरू के पृष्ठों में बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है कि मेरी कल्पना का संविधान कैसा होगा, इसकी यहाँ केवल रूपरेखा प्रस्तुत की गई है।"[17] स्पष्ट है कि श्रीमन्नारायण ने गांधी जी की कल्पना के संविधान की रूपरेखा ठीक-ठीक बनाई है। गांधी जी इस कल्पित रूपरेखा पर अपनी सहमति की मुहर लगाते हुए कहते हैं, "उनके इस प्रयत्न की खूबी यह है कि उन्होंने वह काम कर दिखाया है जो मैं समयाभाव के कारण नहीं कर पाया था।"[18] इस 'संविधान' का महत्व एक और मायने में है। गांधी जी ने इस महत्व के बारे में बताया है कि "भारत के लिए संविधान प्रस्तुत करने के लिए जो अनेक प्रयत्न किए गए हैं, मैं मानता हूँ, प्रिंसिपल अग्रवाल की यह कृति उनमें एक विचारपूर्ण योगदान है।"[19] गांधी जी के इस कथन से न सिर्फ श्रीमन्नारायण के संविधान का महत्व रेखांकित होता है, अपितु यह भी पता चलता है कि उस दौर में भावी भारत के लिए संविधान प्रस्तुत करने के अनेक प्रयास हुए थे। इन तमाम प्रयासों में श्रीमन्नारायण का 'संविधान' विचारपूर्ण योगदान है। इस विचारपूर्ण योगदान का आधार और अधिरचना दोनों गांधी दर्शन पर केंद्रित हैं। श्रीमन्नारायण की यह किताब जिसे महात्मा गांधी का अनुमोदन प्राप्त है-22 अध्यायों में विभक्त है। भूमिका और उपसंहार को छोड़ दें तो शेष 20 अध्यायों में इन्होंने अपनी कल्पना के संविधान की आवश्यक रूपरेखा प्रस्तुत की है। भूमिका में इन्होंने कुछ प्रश्न किए हैं, "यहाँ स्वाभाविक रूप से एक प्रश्न उठता है: 'स्वतंत्र भारत का संविधान किस तरह का होगा?' क्या हम पश्चिम के कुछ संविधानों की नकल करेंगे, जैसे कि स्विटजरलैंड का, या संयुक्त राज्य अमेरिका या फिर रूस का? या फिर हम अपनी राष्ट्रीय प्रज्ञा, संस्कृति एवं परंपरा पर आधारित एक स्वदेशी संविधान के विकास का प्रयास करेंगे?"[20] श्रीमन्नारायण के मुताबिक भारत जैसे प्राचीन देश के संविधान-निर्माण के लिए यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न है। उन्होंने लिखा है, "मेरी समझ से यह प्रश्न सर्वाधिक महत्वपूर्ण है तथा इसका उत्तर अभी और यहीं दिया जाना चाहिए।

भारत की संविधान - सभा ने श्रीमन्नारायण की कामना की कितनी परवाह की, यह कहने की आवश्यकता नहीं। पर दुनिया में कुछ ऐसे देश हैं जिन्होंने अपने संविधान- निर्माण में अपनी पुरातनता, परंपराओं और संस्कृतियों का भरपूर ख्याल रखा था। यहाँ यह कहना जरूरी है कि श्रीमन्नारायण सरीखे लोगों का आग्रह अपनी परंपरा और संस्कृति के उज्ज्वल पक्ष पर ही है। देशानुकूल और युगानुकूल कसौटी पर ही इनका ध्यान रखना था

बजाय इसके कि इसे भविष्य की किसी तिथि के लिए टाल दिया जाए, तब जबकि राजनीतिक सत्ता वास्तव में हमें हस्तांतरित हो जाए।"[21]

इन्होंने भारत के विभिन्न दौर में मौजूद रही शासन व्यवस्था का उल्लेख करते हुए कहा है कि मैं किसी संकीर्ण राष्ट्रवाद के तहत दूसरे देशों के अनुभव से सीखने का विरोधी नहीं हूँ। इन्होंने भारत को विभिन्न शासन प्रणालियों की मौजूदगी के कारण संवैधानिक विकास की प्राचीन प्रयोगशाला की संज्ञा देते हुए लिखा, "अपने लिए पश्चिमी संविधानों की ऐसी खिचड़ी बनाना, जो कि अभी भी खदक ही रही है, भारत के लिए न केवल अत्यंत अपमानजनक है बल्कि एक तरह का विश्वासघात भी होगा, और सामाजिक विज्ञान की भी अत्यंत अज्ञानतापूर्ण उपेक्षा होगी। चूँकि संविधान हमेशा अपनी ही प्रकृति में जैविक विकास की गति को प्राप्त करता है; यह सर्वाधिक अवैज्ञानिक होगा कि एक देश पर प्रशासन की ऐसी व्यवस्था थोपी जाए जो कि उसकी अपनी प्रज्ञा के लिए विदेशी हो।"[22]

श्रीमन्नारायण भारतीय परंपराओं की पृष्ठभूमि में भावी भारत के संविधान की कामना करते थे साथ ही यह दुर्भाग्यपूर्ण मानते थे कि प्राचीन भारत की संस्थाओं का अध्ययन जरूरी नहीं है। उन्होंने इस संदर्भ में लिखा है, "यद्यपि यह अपेक्षणीय है कि भारतीय परंपराओं की पृष्ठभूमि पर एक संविधान का निर्माण किया जाए। दुर्भाग्य से हमारे अधिकतम नेताओं ने प्राचीन भारतीय संस्थाओं के अध्ययन की आवश्यकता ही नहीं समझी। राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के इस पक्ष पर अकेले गांधी जी लगातार जोर देते रहे।"[23]

अपनी पुस्तक का नाम Gandhian Constitution रखने का कारण बताते हुए उन्होंने लिखा है, "मैंने इसीलिए स्वराज के लिए स्वदेशी संविधान तैयार करने की दिशा में मार्गदर्शन के लिए उनसे (गांधी जी से) संपर्क किया। उन्होंने इस तरह के एक संविधान की आवश्यकता को समझते हुए इसकी सराहना और कृपापूर्वक मेरे मार्गदर्शन के लिए भी सहमत हो गए। मैंने इस संविधान को 'गांधीवादी संविधान' कहने का निर्णय लिया क्योंकि गांधी जी किसी अन्य की तुलना में भारतीय संस्कृति और परंपराओं को अधिक निभाते और व्यक्त करते हैं।"[24] इन्होंने गांधी-दर्शन के अनुरूप 'विकेंद्रित' को भावी संविधान का बीज-विचार माना है। इसे महज यूटोपियन नहीं बल्कि व्यवहारिक और संभव होने वाला कहा है, "यह पुस्तिका कोई समग्र संविधान होने का दावा नहीं करती जिसे कि एक साथ ही हमारे पूरे देश में किया जा सके। यह केवल उन मूलभूत लक्ष्यों एवं आदर्शों की एक रूपरेखा प्रस्तुत करती है जिन्हें स्वतंत्र भारत के भविष्य में सन्निहित किया जाना चाहिए। मैं जोर देकर कहना चाहूँगा कि विकेंद्रीकृत लोकतंत्र का विचार कोई कपोलकल्पना नहीं है, यह आवश्यक रूप से व्यावहारिक तथा लाभकारी है।"[25] अपने इस काम की उपादेयता और सार्थकता को बताते हुए उन्होंने लिखा है, "आम चुनावों के बाद संविधान सभा के सामने एक बड़ी चुनौती खड़ी होने वाली है और वह है एक उपयुक्त संविधान के निर्माण की। यदि उस मोड़ पर यह कृति हमारे नेताओं और आम जनता में देसी परंपराओं पर आधारित संविधान के निर्माण की आवश्यकता संबंधी समझ जगाने में सफल होती है तो मुझे मेरे श्रम का पूरा पुरस्कार मिल जाएगा।"[26]

भारत की संविधान - सभा ने

श्रीमन्नारायण की कामना की कितनी परवाह की, यह कहने की आवश्यकता नहीं। पर दुनिया में कुछ ऐसे देश हैं जिन्होंने अपने संविधान- निर्माण में अपनी पुरातनता, परंपराओं और संस्कृतियों का भरपूर ख्याल रखा था।[27] यहाँ यह कहना जरूरी है कि श्रीमन्नारायण सरीखे लोगों का आग्रह अपनी परंपरा और संस्कृति के उज्ज्वल पक्ष पर ही है। देशानुकूल और युगानुकूल कसौटी पर ही इनका ध्यान रखना था।

श्रीमन्नारायण किस तरह की शासन-व्यवस्था की कामना करते थे, इसे समझाने के लिए उन्होंने लिखा, "पहला बिंदु जिसे साफ-साफ समझ लेना जरूरी है वह है सभी देशों और हर समय के लिए 'सर्वोत्तम संविधान' जैसा कुछ नहीं है। शासन का स्वरूप अतीत की परंपराओं तथा वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार सुनिश्चित किया जाना चाहिए।"[28]

विगत परंपराओं और वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर निर्मित सरकार की व्यवस्था को श्रेष्ठ मानने की सिफारिश करने के साथ सभी देशों और सदा के लिए किसी भी 'संविधान को सर्वश्रेष्ठ' मानने से अस्वीकार किया। इन्होंने भारत के लिए श्रेष्ठ शासन पद्धति की प्रस्तावना से पहले यूरोपीय और भारतीय राजनीतिक सिद्धांतों में 'राज्य-सत्ता' की कार्यप्रणाली के लिहाज से चिंतको का दो मोटा विभाजन किया है। एक वर्ग में उन लोगों को रखा है जो 'राज्य-सत्ता' को ज्यादा महत्व देते हैं। व्यक्ति-सत्ता की कीमत पर एसे लोग राजसत्ता का महिमामंडन करते हैं। नागरिकों को अनुशासित और नियंत्रित करने के नाम पर राज्य-सत्ता अंतत: व्यक्ति को राजनीतिक मशीन का महज एक पुर्जा बनाने में परिणत होती है। इसी राजनीतिक अवधारणा का विकास तानाशाही, निरंकुश या अधिनायकवादी रूप में होता है। दूसरी तरह के राजनीतिक चिंतक व्यक्ति को सभी चीजों की कसौटी मानकर चलते हैं। ऐसे लोगों के लिए व्यक्ति की स्वतंत्रता और उसका विकास सर्वोच्च है। राजसत्ता का कार्य व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करना भर है। ऐसे चिंतक व्यक्ति को साध्य मानते हैं, साधन नहीं। श्रीमन्नारायण का मानना है कि इन दोनों के सहमेल से अच्छी व्यवस्था निर्मित होती है। ये दोनों पद्धतियाँ एकांकी हैं और अनुपयुक्त भी।

तानाशाही, निरंकुश या अधिनायकवादी व्यवस्था के खतरों के वर्णन के बाद इन्होंने 'रूसी लोकतंत्र' की शासन प्रणाली से असहमति प्रकट की है। दुनिया में उपरोक्त शासन प्रणाली का उदाहरण दिखाने के पश्चात संसार के लिए लोकतंत्र को एकमात्र विकल्प बताया है। यह शासन व्यवस्था लोगों को वैध अधिकार दिलाने के साथ समाज और राज्य के प्रति भी कुछ निश्चित कर्तव्य का पालन करने की कामना करती है। लोकतंत्र की श्रेष्ठता इसलिए भी है कि केंद्रीकृत शासन व्यवस्था का कोई भी ढंग अंतत: कुलीन वर्ग की तरफ ही जाता है। लोकतंत्र एकमात्र ऐसी शासन व्यवस्था है जो व्यक्ति और राजसत्ता के हितों का सामंजस्य करने में सक्षम साबित होती है।

अब प्रश्न उठता है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था अगर सबसे बेहतरीन शासन पद्धति है तो समस्या किस बात की है। गांधी जी 'संसदीय लोकतंत्र' को अपना आदर्श क्यों नहीं मानते? इतना स्पष्ट है कि लोकतंत्र भी कई तरह का है। संसदीय लोकतंत्र उसमें से एक है। यह लोकतंत्र की एकमात्र शासन प्रणाली नहीं। गांधी जी लोकतंत्र के जिस धाम की कामना करते हैं, वह क्या है? कहाँ यह दोनों ढंग भिन्न हो जाते हैं? लोकतंत्र को किस रास्ते बढ़ना चाहिए ताकि यह गांधी दर्शन के अनुरुप हो। श्रीमन्नारायण ने बताया है, कि "'अहिंसा और विकेंद्रीकरण' के रास्ते इसे चलना होगा।"[29] इन्होंने गांधी जी का नाम लेकर लिखा है कि इनके मुताबिक, "लोकतंत्र को केवल अहिंसा से ही बचाया जा सकता है क्योंकि लोकतंत्र को जब तक हिंसा से बचाया जाएगा, यह कमजोर लोगों की सुरक्षा नहीं कर सकेगा।"[30] गांधी जी का आशय स्पष्ट है। इनके अनुसार लोकतंत्र में हिंसा के लिए जगह होगी तो यह कमजोर की रक्षा नहीं कर पाएगा। इतना ही नहीं लोकतंत्र भी अपनी रक्षा नहीं कर पाएगा। लोकतंत्र से गांधी जी का आशय क्या है? "लोकतंत्र की मेरी अवधारणा यह है कि इस अधीन सबसे कमजोर को भी वही अवसर प्राप्त हों जो कि सब्से मजबूत व्यक्ति को प्राप्त हो सकता है और यह हिंसा के माध्यम से तो कभी हो नहीं सकता।"[31]

लोकतंत्र की महत्ता और अर्थवत्ता गांधी जी के लिए है कि इसमें कमजोर व्यक्ति के हितों की रक्षा हो और कमजोर व्यक्ति को भी वही अवसर प्राप्त हो जो सबसे मजबूत को हासिल है। अवसर की समानता को ठीक से स्पष्ट करने के लिए कमजोर को अतिरिक्त अवसर भी देना होगा। क्या गांधी जी की बात का यह आशय नहीं है? क्या प्रतिनिधियों की संख्या के जरिए लोकतंत्र और इसके द्वारा हासिल किए जाने वाले उद्देश्यों की रक्षा नहीं हो सकती? गांधी जी का कहना है कि "मैं इसे पूर्णतया भ्रांत धारणा मानता हूँ कि प्रतिनिधियों की संख्या अधिक होने से कार्य संचालन बेहतर होता है या कि इससे लोकतंत्र के सिद्धांत की रक्षा होती है। जैसे-तैसे चुने गए 6000 प्रतिनिधियों की तुलना में ऐसे पंद्रह सौ प्रतिनिधि हर हाल में लोकतंत्र कि बेहतर ढंग से रक्षा कर सकते हैं जो जनता के हितों के प्रति सतर्क हों, खुले दिमाग के हों और सत्यनिष्ठ हों। गांधी जी लोकतंत्र के आनुपातिक प्रतिनिधित्व को बेहतर व्यवस्था नहीं मानते थे। उन्होंने बताया है कि "लोकतंत्र का सार यही है कि प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र के सभी तरह के हितों का प्रतिनिधित्व करें। यह सही है कि इसमें

तानाशाही, निरंकुश या अधिनायकवादी व्यवस्था के खतरों के वर्णन के बाद इन्होंने 'रूसी लोकतंत्र' की शासन प्रणाली से असहमति प्रकट की है। दुनिया में उपरोक्त शासन प्रणाली का उदाहरण दिखाने के पश्चात संसार के लिए लोकतंत्र को एकमात्र विकल्प बताया है। यह शासन व्यवस्था लोगों को वैध अधिकार दिलाने के साथ समाज और राज्य के प्रति भी कुछ निश्चित कर्तव्य का पालन करने की कामना करती है। लोकतंत्र की श्रेष्ठता इसलिए भी है कि केंद्रीकृत शासन व्यवस्था का कोई भी ढंग अंतत: कुलीन वर्ग की तरफ ही जाता है

विशेष हितों के लिए विशेष प्रतिनिधित्व की कोई मनाही नहीं है और न होनी चाहिए, पर यह प्रतिनिधित्व उसकी कसौटी नहीं है। वह तो अपूर्णता का चिन्ह है।"[32] संसदीय लोकतंत्र में इसकी संभावना ज्यादा रहती है। यह व्यक्ति को 'कुछ हितों' तक केंद्रित करता है। अपने दौर में गांधी ने संसदीय लोकतंत्र को पश्चिमी देशों में देखा था। इसकी दशा-दिशा उन्हें चिंतित करती थी, श्रीमन्नारायण ने लिखा है, "पश्चिमी लोकतंत्र आज जिस तरह से कार्य करता है, वह वस्तुतः तरलीकृत नाजीवाद या फासीवाद ही है। लोकतंत्र और हिंसा दोनों साथ-साथ चल ही नहीं सकते। जो राज्य आज केवल कहने के लिए लोकतांत्रिक बन गए हैं उन्हें या तो साफ तौर पर सर्वसत्तावादी हो जाना चाहिए या फिर उन्हें साहस करके अहिंसक हो जाना चाहिए।"[33]

पश्चिमी लोकतंत्र की नाजीवाद या फासीवाद में परिणति गांधी जी ने देखी थी। हिटलर हो या मुसोलिनी दोनों लोकतंत्र के ही परिणाम थे। इसलिए सच्चे मायने में लोकतंत्र की स्थापना गांधी जी लोकतंत्र और अहिंसा के अभेद संबंध में ही देख पाते थे। गांधी जी लोकतंत्र के महल का शिल्प ही नहीं, अपितु अंतर्वस्तु को भी लोकतांत्रिक बनाने के लिए अहिंसा के साथ विकेंद्रीकरण को जरूरी मानते थे। बगैर विकेंद्रीकरण के लोकतंत्र की स्थापना के लिए अहिंसा भी अपूर्ण साबित होगा। श्रीमन्नारायण इसके लिए आर्थिक समानता को आवश्यक तत्व मानते हैं उन्होंने लिखा है, "पूँजीवादी समाज शोषणकेंद्रित होता है और हर तरह के शोषण का सार हिंसा है। अतएव, शोषण को पूरी तरह समाप्त करने के लिए एक अहिंसक समाज या राज्य की स्थापना करनी होगी। ऐसा एक समाज जो कि जरूरी है, आर्थिक स्वतंत्रता और समता पर आधारित होगा क्योंकि आर्थिक समता के बिना सही अर्थों में राजनीतिक लोकतंत्र नहीं हो सकता।"[34]

वास्तविक राजनीतिक लोकतंत्र के लिए भी आर्थिक बराबरी आवश्यक है। इन्होंने प्रश्न किया है कि आर्थिक बराबरी और स्वतंत्रता की स्थापना कैसे की जाए? एक रास्ता सोवियत कम्युनिज्म का है। पर यह मार्ग हिंसा से लैस है, इसलिए उपयुक्त नहीं।

गांधी की ग्राम-स्वराज की कल्पना एक स्तर पर भारत की परंपरा, प्राचीन राज-व्यवस्था से जुड़ती है तो दूसरे स्तर पर मानव-सभ्यता के विकास के साथ अर्जित आवश्यक मूल्यों से भी। इसे पुनरुत्थानवादी सोच नहीं, अपितु नवजागरण का विचार माना जाना चाहिए। इसमें भारतीय सभ्यता-संस्कृति की विकास-यात्रा का अक्षय कोष है। गाँव केंद्रित 'भावी भारत का स्वप्न' आधुनिक भारत को स्वीकार्य नहीं था

"एक रास्ता तो सोवियत साम्यवाद का है, जिसका व्यवहार में अर्थ है 'सर्वहारा की तानाशाही' या 'लगानजीवी' वर्ग का निर्मम दमन। यहाँ तक कि सर्वहारा का जीवन भी इस हद तक विनियमित कर दिया गया है कि स्वतंत्रता या लोकतंत्र वहाँ लगभग शून्य है। यह उसी तरह का निदान हो गया जो कि रोग से भी निकृष्ट है।"[35] सोवियत कम्युनिस्टों ने जिस मार्ग को अपनाया उसे रोग से ज्यादा बुरा उपचार को इन्होंने माना। ऐसे में प्रश्न उठा कि "अहिंसक लोकतंत्र के लिए कौन सा तरीका होगा? बिना किसी लाग लपेट के श्रीमन्नारायण ने कहा विकेंद्रीकरण।"[36] उन्होंने साफ शब्दों में लिखा है, "हिंसा की तार्किक परिणति केंद्रीकरण है; जबकि अहिंसा का सार है विकेंद्रीकरण। गांधी जी हमेशा आर्थिक और राजनीतिक सत्ता के कमोबेश उस रूप में विकेंद्रीकरण के पक्षधर रहे हैं जैसे कि आत्मसंपन्न एवं स्वशासित ग्राम समुदायों में रहा है। वे ऐसे समुदायों को अहिंसक संगठन के आदर्श के रूप में देखते हैं।"[37]

गांधी जी ने अपने ख्यालों के सच्चे लोकतंत्र के बारे में बताते हुए लिखा है, "भारत के सच्चे लोकतंत्र में गाँव को इकाई माना जाएगा...सच्चा लोकतंत्र केंद्र में बैठे बीस लोगों के द्वारा नहीं चलाया जा सकता। इसका संचालन तो नीचे से हर गाँव के लोग करेंगे।"[38] गाँव गांधी जी के सपनों के लोकतंत्र का आधार था। लोकतांत्रिक व्यवस्था की संरचना इसी पर निर्मित होनी थी। क्या वह प्राचीन भारत के ग्राम गणराज्य को हू-ब-हू लागू करना चाहते थे? उत्तर है - बिल्कुल नहीं। श्रीमन्नारायण ने लिखा है, "निश्चित रूप से गांधी जी का अभिप्राय यह नहीं है कि प्राचीन भारतीय गाँवों को बिलकुल पुराने रूप में ही पुनर्जीवित कर दिया जाए; यह न तो संभव है और न ही अभीष्ट। आज के बदले हुए समय की परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप आवश्यक परिवर्तन तो किए ही जाने चाहिए। ऐसा भी नहीं है कि पुराने ग्रामीण समुदाय सभी तरह की कमियों से पूरी तरह मुक्त रहे हों। यद्यपि यह स्वीकार किया जा सकता है ये ग्रामीण समुदाय अधिकतम विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था एवं स्थानीय स्वशासन के रूप में अपने आप में आदर्श आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्था के अंकुर समेटे हुए हैं। इसीलिए गांधी जी का निर्द्वंद्व विचार है कि भविष्य में भारत का संविधान अवश्य ही सुसंबद्ध तथा समन्वित ग्रामीण समुदायों पर आधारित होगा, अपने सकारात्मक एवं प्रत्यक्ष लोकतंत्र, अहिंसक कुटीर अर्थव्यवस्था तथा मानवी संपर्क के साथ।"[39] गांधी जी के गाँव केंद्रित अहिंसक लोकतंत्र की कल्पना में आर्थिक बराबरी का उद्देश्य भी समाहित था। इन दोनों के सहमेल से निर्मित होता था, उनके सपनों का लोकतंत्र।

गांधी की ग्राम-स्वराज की कल्पना एक स्तर पर भारत की परंपरा, प्राचीन राज-व्यवस्था से जुड़ती है तो दूसरे स्तर पर मानव-सभ्यता के विकास के साथ अर्जित आवश्यक मूल्यों से भी। इसे पुनरुत्थानवादी सोच नहीं, अपितु नवजागरण का विचार माना जाना चाहिए। इसमें भारतीय सभ्यता-संस्कृति की विकास-यात्रा का अक्षय कोष है।[40] गाँव केंद्रित 'भावी भारत का स्वप्न' आधुनिक भारत को स्वीकार्य नहीं था। अपने राजनीतिक उत्तराधिकारी जवाहरलाल नेहरू को 5 अक्टूबर 1945 को लिखे पत्र में उन्होंने लिखा कि "हिंद स्वराज में मैंने लिखा है, उस राज्य पद्धति पर मैं कायम हूँ। यह सिर्फ कहने की बात नहीं है लेकिन जो चीज मैंने 1909 में लिखी है, उसी का अनुभव मैंने आज तक पाया है। आखिर

में मैं एक ही उसे मानने वाला रह जाऊँ, उसका मुझको जरा-सा भी दुख नहीं होगा। क्योंकि मैं जैसा सत्य पाता हूँ उसी का मैं साक्षी बन जाता हूँ।"[41] क्या यह कहने की जरूरत है कि जिस राज्य पद्धति की चर्चा गांधी जी ने पत्र में की है, उसका केंद्र गाँव और समाज है। इसी पत्र में उन्होंने गाँवों की अपनी कल्पना के बारे में बताया है कि मेरी कल्पना के गाँव को धरती पर बनना है। "आधुनिक शास्त्र की कदर करते हुए पुरानी बात को मैं आधुनिक शास्त्र की निगाह से देखता हूँ तो पुरानी बात इस नए लिबास में मुझे बहुत मीठी लगती है। अगर ऐसा समझोगे कि मैं आज की देहातों की बात करता हूँ तो मेरी बात नहीं समझोगे। मेरा देहात, आज मेरी कल्पना में है। आखिर में तो हर एक मनुष्य अपनी कल्पना की दुनिया में ही रहता है। इस काल्पनिक देहात में देहाती जड़ नहीं होगा, शुद्ध चौतन्य होगा। वह गंदगी में, अंधेरे कमरे में जानवर की जिंदगी बसर नहीं करेगा, मर्द और औरत दोनों आजादी से रहेंगे और सारे जगत के साथ मुकाबला करने को तैयार रहेंगे। वहाँ न हैजा होगा, न मरकी (प्लेग) होगा, न चेचक होंगे। कोई आलस्य में रह नहीं सकता है, न कोई ऐश-आराम में रहेगा। सबको शारीरिक मेहनत करनी होगी। इतनी चीज होते हुए मैं ऐसी बहुत-सी चीज का ख्याल करा सकता हूँ जो बड़े पैमाने पर बनेगी। शायद रेलवे भी होगी, डाकघर-तारघर भी होंगे।"[42] गांधी जी के गाँव को आधुनिक मानस वाले नेताओं ने खारिज किया। इस बात की उपेक्षा करते हुए कि वह यथार्थ गाँव की नहीं कल्पित गाँव की बात कह रहे हैं। भारत की संविधान-सभाओं में इस मुद्दे पर बहसें हुई पर गाँव को महत्व नहीं मिला। पत्रकार रामबहादुर राय ने इस दु:खद प्रसंग की रोचक कथा बयान की है।[43] आखिर इसके कारण क्या थे, आशीष नंदी ने लिखा है, "भारतीय जमीन पर औपनिवेशिक असर की मुखालफत के ऊपरी तौर पर सीधे और सरल प्रतीत होने वाले तौर-तरीकों के अंदरूनी पहलू-पेचीदगियों से संपूरित थे। उस दौर में, भारतीय समाज में मौजूद परंपरा प्रदत्त जड़ता और औपनिवेशिक जकड़बंदी से संघर्ष करना फिर भी आसान था, बनिस्बत उन औपनिवेशिक मूल्यों के जो, इस संघर्ष के दौरान ही अंत:सलिला की तरह, हमारे भीतर अपनी पैठ बना रहे थे।"[44] नंदी के इस विश्लेषण के दायरे में संविधान सभा में सक्रिय रहे कांग्रेसी नेता और गांधी के अनुयायी आते हैं डॉ० अंबेडकर, बेनेगल नरसिंह राव जैसे लोग नहीं जो औपनिवेशिक सत्ता को भारत की कथित जड़ता और जहालत खत्म करने वाला मानते थे।

गांधी भारत को सात लाख गाँवों का देश मानते थे। अपने सपनों का गाँव गढ़कर इसे वास्तविक अर्थ में स्वराज का आधार भी बनाना चाहते थे और अधिरचना भी। वे संसदीय लोकतंत्र को लोकतंत्र का महज एक ढंग मानते थे। यह ढंग उनका आदर्श नहीं था। उदयन वाजपेई ने अपने आलेख 'संसदीय लोकतंत्र मृत्युशैय्या पर है' में आग्रह किया है कि "गांधी के बाद से हमें पता है कि लोकतंत्र के दूसरे रास्ते भी हैं। उन्हें विकल्प नहीं कहना चाहिए, क्योंकि वास्तविक लोकतंत्र वही है, जिसका इशारा गांधी ने किया था।"[45] गांधी जी संसदीय लोकतंत्र के उत्थान काल में ही इसकी सीमाएँ देख रहे थे। समाजशास्त्री आनंद कुमार का आलेख उदयन वाजपेई के विचारों के आलोक में पढ़ने पर संसदीय लोकतंत्र में अंतर्निहित परेशानियाँ स्पष्ट होती हैं। आनंद कुमार ने "स्वराज और बहुदलीय चुनाव व्यवस्था के अंतर्विरोधों में इसका विश्लेषण किया है।"[46] अब प्रश्न उठता है कि गांधी जी संसदीय लोकतंत्र के आधार पर गाँव आधारित लोकतंत्र को क्यों वास्तविक लोकतंत्र मानते थे, जिसके लिए वे निजी तौर पर प्रयासरत रहने की बात कहते थे। गांधी जी संसदीय लोकतंत्र में पूँजी, बाजार और सत्ता की ताकत का अत्यधिक दबाब देते थे। वे इसे पिरामिड वाली व्यवस्था मानते थे, जिसमें सत्ता अंतत: ऊपर सबसे कम संख्या में केंद्रित होती है, भले ही इसका नाम संसद भी क्यों न हो। इसके स्थान पर वे सामुद्रिक वलय (Ocean Circle) को ज्यादा लोकतांत्रिक मानते, जिसमें कमजोर लोगों का हक सिर्फ सुरक्षित होगा। सामुद्रिक वलय की इस धारणा को इस उदाहरण से समझा जा सकता है। किसी तालाब के ठहरे पानी में एक कंकड़ फेंकने पर उसमें एक वृत्त बनता है, फिर एक बड़ा वृत्त बनता है। यह प्रक्रिया जब तक जारी रहती है, वृत्त बनता जाता है। हर घेरा वृत्त अपने अगले वृत्त के अधीन भी रहता है, स्वतंत्र और स्वायत्त भी। दूसरे शब्दों में कहें तो छोटे वृत्त की ऊर्जा से ही उसका अगला बड़ा वृत्त बनता है।

गांधी जी की कल्पना थी कि गाँवसभा के व्यक्ति अपने प्रतिनिधियों को चुनें। वे प्रतिनिधि तालुका, तालुका वाले जिला, जिला वाले राज्य और राज्य वाले देश के लिए प्रतिनिधि का चयन करें। इस प्रक्रिया में सत्ता का केंद्र सबसे निचले स्तर पर यानी गाँव में रहेगा, सबसे ऊपरी वलय यानी संसद के पास नहीं। इसमें सत्ता केंद्रित नहीं बल्कि सात लाख गाँव में विकेंद्रित होगी। गाँव को अपने लिए निर्णय लेने और संसाधन रखने के हक होंगे। गांधी जी ने लिखा है, "आजादी नीचे से शुरू होनी चाहिए। हर एक गाँव में जम्हूरी सल्तनत या पंचायत का राज होगा। उसके पास पूरी सत्ता और ताकत होगी। इसका मतलब यह है कि हर एक गाँव को अपने पाँव पर खड़ा होना होगा - अपनी जरूरतें खुद पूरी कर लेनी होंगी ताकि

गांधी भारत को सात लाख गाँवों का देश मानते थे। अपने सपनों का गाँव गढ़कर इसे वास्तविक अर्थ में स्वराज का आधार भी बनाना चाहते थे और अधिरचना भी। वे संसदीय लोकतंत्र को लोकतंत्र का महज एक ढंग मानते थे। यह ढंग उनका आदर्श नहीं था। उदयन वाजपेई ने अपने आलेख 'संसदीय लोकतंत्र मृत्युशैय्या पर है' में आग्रह किया है कि गांधी के बाद से हमें पता है कि लोकतंत्र के दूसरे रास्ते भी हैं। उन्हें विकल्प नहीं कहना चाहिए, क्योंकि वास्तविक लोकतंत्र वही है, जिसका इशारा गांधी ने किया था

वह अपना सारा कारोबार खुद चला सके यहाँ तक कि वह सारी दुनिया के खिलाफ अपनी रक्षा खुद कर सके। उसे तालीम देकर इस हद तक तैयार करना होगा कि वह बाहरी हमले के मुकाबले में अपनी रक्षा करते हुए मर मिटने के लायक बन जाए। इस तरह आखिर हमारी बुनियाद व्यक्ति पर होगी। इसका यह मतलब नहीं कि पड़ोसियों पर या दुनिया पर भरोसा न रखा जाए; या उनकी राजी-खुशी से कोई मदद न ली जाए। कल्पना यह है कि सब लोग आ-नाद होंगे और सब एक-दूसरे पर अपना असर डाल सकेंगे। .....ऐसा समाज अनगिनत गाँवों का बना होगा। उसका फैलाव एक के ऊपर एक के ढंग पर नहीं, बल्कि लहरों की तरह एक के बाद एक की शक्ल में होगा। जिंदगी मीनार की शक्ल में नहीं होगी, जहाँ ऊपर की तंग चोटी के नीचे चौड़े पाए पर खड़ा होना पड़ता है। वहाँ तो समुद्र की लहरों की तरह जिंदगी एक के बाद एक गहरे की शक्ल में होगी और व्यक्ति हमेशा अपने गाँव के खातिर मिटने को तैयार रहेगा। गाँव अपने इर्द-गिर्द के गाँवों के लिए मिटने को तैयार होगा। इस तरह आखिर सारा समाज ऐसे लोगों का बन जाएगा, जो उद्धत बनकर कभी किसी पर हमला नहीं करते, बल्कि हमेशा नम्र रहते हैं और अपने में समुद्र की उस शान को महसूस करते हैं, जिसके वे जरूरी अंग हैं।"[47] संसदीय लोकतंत्र मीनार की शक्ल में होता है। मीनार की शक्ल वाली व्यवस्था केंद्रीकरण का कारण बनती है और परिणाम भी। केंद्रीकरण में सत्ता मुट्ठी भर लोगों के पास रहती है। केंद्रीकरण से हिंसा भी जन्म लेती है। सत्ता के केंद्रीकरण और हिंसा को अनुस्यूत करने वाली शासन प्रणाली गांधी जी को स्वीकार्य नहीं हो सकती थी। पंचायती राज पर आधारित व्यवस्था को विकेंद्रीकरण और संसदीय लोकतंत्र को केंद्रीकरण से जोड़कर देखने के साथ ही गांधी जी विकास के केंद्रीकरण एवं विकेंद्रीकरण की अवधारणा को भी इससे संबद्ध मानते थे। गांधी धर्म, राजनीति, विकास के मॉडल आदि सभी आयामों के मध्य आवयविक (Organic) और परस्पर संबद्धता देखते थे। प्रकृति, पर्यावरण और पारिस्थितिकी को भी इससे जुड़ा देखते थे। सत्ता और विकास के केंद्रीकरण के लिए

गांधी की कल्पना वाली ग्राम-केंद्रित व्यवस्था में सत्ता नीचे से ऊपर की ओर जाती है। गांधी को इस व्यवस्था से उम्मीद क्या थी? उन्होंने बताया है कि जब पंचायत राज स्थापित हो जाएगा तब ऐसे भी अनेक काम कर दिखाएगा, जो हिंसा कभी नहीं कर सकती। जमींदारों, पूंजीपतियों और राजाओं की मौजूदा सत्ता तभी तक चल सकती है, जब तक कि सामान्य जनता को अपनी शक्ति का भान नहीं होता। अगर लोग जमींदारी और पूँजीवाद की बुराई से सहयोग करना बंद कर दें, तो वह पोषण के अभाव में खुद ही मर जाएंगी। पंचायत राज में केवल पंचायत की आज्ञा मानी जाएगी। और पंचायत अपने बनाए हुए कानून के द्वारा ही अपना कार्य करेगी

संसदीय लोकतंत्र उर्वर जमीन तैयार करती है, सामुद्रिक वलय वाले मॉडल में इसकी संभावना न के बराबर है। इसके साथ ही इस केंद्रीकरण वाले संसदीय लोकतंत्र में गाँव को अपनी ही देश के शहर-नगरों का आंतरिक उपनिवेश बनने को अभिशप्त होना था। स्थानीय संस्कृति, परंपरा और लोक ज्ञान की भी उपेक्षा होनी थी। इसलिए गांधी जी इससे असहमत थे।

गांधी की कल्पना वाली ग्राम-केंद्रित व्यवस्था में सत्ता नीचे से ऊपर की ओर जाती है। गांधी को इस व्यवस्था से उम्मीद क्या थी? उन्होंने बताया है कि "जब पंचायत राज स्थापित हो जाएगा तब ऐसे भी अनेक काम कर दिखाएगा, जो हिंसा कभी नहीं कर सकती। जमींदारों, पूंजीपतियों और राजाओं की मौजूदा सत्ता तभी तक चल सकती है, जब तक कि सामान्य जनता को अपनी शक्ति का भान नहीं होता। अगर लोग जमींदारी और पूँजीवाद की बुराई से सहयोग करना बंद कर दें, तो वह पोषण के अभाव में खुद ही मर जाएंगी। पंचायत राज में केवल पंचायत की आज्ञा मानी जाएंगी। और पंचायत अपने बनाए हुए कानून के द्वारा ही अपना कार्य करेगी।"[48]

गांधी की कल्पना के पंचायती राज और वर्तमान पंचायती राज में क्या फर्क है? कहना होगा कि आज का पंचायती राज रूप और अंतर्वस्तु दोनों मायने में गांधी की कल्पना से भिन्न है। मौजूदा पंचायती राज में निर्णय संसद करती है और गाँव में उसका पालन मात्र होता है। मौजूदा पंचायती राज के पास अधिकार नहीं है, यह ऊपर से आने वाली नीतियों को लागू करने के लिए विवश है।

अपनी कल्पना के इस स्वराज के आधार पर गांधी जी एक नई सभ्यता का स्वप्न देख रहे थे। बहुधा उन्होंने इसे 'रामराज्य' कहकर भी संबोधित किया है। इसकी खूबियों को बताते हुए लिखा है कि "धर्म की भाषा में आप इसे 'पृथ्वी पर भगवान का राज्य' कह सकते हैं। राजनीतिक शब्दावली का प्रयोग करें तो कह सकते हैं कि यह आदर्श लोकतंत्र है, जिसमें स्वामित्व या अस्वामित्व, रंग, नस्ल, जाति तथा लिंग के आधार पर की जाने वाली सभी प्रकार की असमताएँ नष्ट हो जाएंगी। इसमें भूमि और राज्य जनता के होंगे। न्याय त्वरित, समीचीन तथा सस्ता होगा। वहाँ आस्था, वाक् तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होगी। यह सब होगा स्वेच्छा से अपनाई गई नैतिक संयम की विधि के कारण। ऐसा राज्य सत्य और अहिंसा पर आधारित होगा तथा इसमें उन्नतिशील, प्रसन्न एवं आत्मसंपन्न गाँव तथा ग्रामीण समुदाय होंगे।"[49]

गांधी जी इस विचार को लोगों ने कोरी कल्पना माना। ऐसे लोगों के लिए श्रीमन्नारायण ने लिखा है, "मेरी समझ से संवैधानिक शासन का गांधीवादी विचार कोई कपोलकल्पना नहीं, बल्कि आंतरिक आर्थिक संघर्षों के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय युद्धों का भी एक व्यावहारिक तथा दीर्घकालिक समाधान है। जो लोग ऐसे विचारों को असंगत और अव्यावहारिक कहकर मजाक उड़ाते हैं उन्हें समग्र युद्ध के संत्रास को याद करना चाहिए।

यदि हम वास्तव में दिल से यह चाहते हैं कि ऐसी घटनाएँ भविष्य में दुबारा किसी भी परिस्थिति में न घटें तो हमें अपने आर्थिक और राजनीतिक संगठनों का शीर्ष से आधार तक पूरी तरह जीर्णोद्धार करना ही होगा।"[50] गांधी के इस स्वप्न, यूटोपिया के विकल्प की महत्ता को समझाने के लिए यह उदाहरण देखना आवश्यक है। "जैसा कि सर विलियम वेबरिज कहते हैं, अब कल्पनालोक (यूटोपिया) और हमारी वास्तविक दुनिया के बीच चयन करने का अवसर नहीं रह गया है। अब हमें चयन कल्पनालोक और नरक के बीच करना है। क्या हम नरक चुनेंगे या फिर 'गांधीवादी कल्पनालोक'?[51] श्रीमन्नारायण की यह बात बेहद तीखी है। क्या यह हमें संसदीय लोकतंत्र के बारे में पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित कर सकती है?

संदर्भ

1. गांधी जी का यह आलेख 26-2-1921 के यंग इंडिया में प्रकाशित हुआ। गणेश एंड कंपनी, मद्रास से इसी साल (1921) में प्रकाशित 'हिंद स्वराज्य' के चौथे संस्करण की भूमिका के रूप में भी यह छपा। हिंद स्वराज-मोहनदास करमचंद गांधी, नवजीवन, अहमदाबाद, अक्टूबर 2019 पृष्ठ-18
2. आशीष नंदी ने अपनी पुस्तक 'द इंटीमेट एनिमी' में उस दौर के भारतीय मानस का अध्ययन पेश किया है। देखें- जिगरी दुश्मन : उपनिवेशवाद के साये में आत्मक्षय और आत्मोद्धार - आशीष नंदी, अनुवाद- अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण - 2019
3. हिंद स्वराज, पृष्ठ - 36
4. आखरी तोइफा (स्वाधीनता आंदोलन से संबंधित कहानियां)- प्रेमचंद- नई किताब प्रकाशन, दिल्ली, पहला संस्करण, 2004, पृष्ठ - 179, प्रेमचंद की ऐसी चिंताओं की अभिव्यक्ति में विकास के विश्लेषण के लिए देखें - 'अथ: साहित्य पाठ और प्रसंग' राजीव रंजन गिरि, अनुज्ञा बुक्स दिल्ली, संस्करण 2014, का 'स्वाधीनता आंदोलन की कहानियां' शीर्षक अध्याय 90-97
5. गबन- प्रेमचंद के लिए देखें - हिंदी समय डॉट कॉम
6. एस. एन. अग्रवाल, 'गांधियन कांस्टीट्यूशन फॉर फ्री इंडिया', किताबिस्तान, इलाहाबाद, 1946
7. भारतीय संविधान : अनकही कहानी राम बहादुर राय-प्रभात पेपर बैक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2021, पृष्ठ-13-14
8. 'गांधियन कांस्टीट्यूशन फॉर फ्री इंडिया', के आमुख के तौर पर प्रकाशित गांधी जी के अभिमत के हिंदी अनुवाद का इस लेख में उपयोग किया गया है संपूर्ण गांधी वांग्मय, खंड 82, पृष्ठ 144, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार नवंबर 1991
9. वही, पृष्ठ 144
10. वही, पृष्ठ 144
11. वही, पृष्ठ 144
12. वही, पृष्ठ 144
13. वही, पृष्ठ 144
14. वही, पृष्ठ 144
15. वही, पृष्ठ 144
16. वही, पृष्ठ 144
17. वही, पृष्ठ 144
18. वही, पृष्ठ 144
19. वही, पृष्ठ 144
20. 'गांधियन कांस्टीट्यूशन फॉर फ्री इंडिया', पृष्ठ - 10
21. वही, पृष्ठ - 10
22. वही, पृष्ठ - 11
23. वही, पृष्ठ - 13
24. वही, पृष्ठ - 13
25. वही, पृष्ठ - 14
26. वही, पृष्ठ - 14
27. डॉ० जे. के. बजाज ने अपने शोध आलेख संविधान की औपनिवेशिक पृष्ठभूमि और सुधार के कुछ उपाय में कैरोल ग्लक के अध्ययन 'जापान्स मॉडर्न मिथ्स : आईडियोलॉजी इन दि लेट मीजी पीरियड', एवं चीन के संविधान 'दि कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ दि पीपल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना' के हवाले से बताया है कि वहाँ के संविधान में किस तरह अपने देश की पुरातन संस्कृति, परंपरा को शामिल किया गया है। देखें- 'मंथन' भारतीय संविधान विशेषांक-2, अप्रैल - जून 2019, प्रधान संपादक - डॉ० महेश चंद्र शर्मा, एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, पृष्ठ - 13 - 21
28. 'गांधियन कांस्टीट्यूशन फॉर फ्री इंडिया', पृष्ठ - 15
29. वही, पृष्ठ - 36
30. वही, पृष्ठ - 36, 37
31. महात्मा गांधी के विचार-आर. के. प्रभु-यू. आर.राव. नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 1994, पृष्ठ-327
32. वही पृष्ठ
33. 'गांधियन कांस्टीट्यूशन फॉर फ्री इंडिया', पृष्ठ -37
34. वही, पृष्ठ - 37
35. वही, पृष्ठ - 37
36. वही, पृष्ठ -38
37. वही, पृष्ठ -38, 39
38. महात्मा गांधी के विचार, पृष्ठ-327
39. 'गांधियन कांस्टीट्यूशन फॉर फ्री इंडिया', पृष्ठ -39
40. पत्रकार बनवारी ने 'भारत का स्वायत्त और महात्मा गांधी' के अध्याय-दो (हिंद स्वराज्य) में इसका विचारोत्तेजक विश्लेषण किया है। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018
41. सम्पूर्ण गांधी वांग्मय, खंड - 81, पृष्ठ-344
42. वही पृष्ठ ; सुधीर चंद्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016
43. 'भारतीय संविधान:अनकही कहानी' का 'मसौदे से गाँव गायब' अध्याय देखें । पृ-246-255
44. गांधीवाद रहे न रहे, संपादक-राजीव रंजन गिरि, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ-114 पर उद्धृत ।
45. गांधी विचार समागम (2-3अक्टूबर-गांधी सार्धशती) पटना. शिक्षा विभाग, बिहार सरकार एवं आई.टी.एम.यूनिवर्सिटी, ग्वालियर द्वारा प्रकाशित-पृ-74-78
46. वही, पृष्ठ-87-90
47. मेरे सपनों का भारत-गांधी जी, संग्राहक - आर.के.प्रभु. नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, जून-2015, पृ-105-106
48. वही, पृष्ठ-107
49. 'गांधियन कांस्टीट्यूशन फॉर फ्री इंडिया', पृष्ठ -72
50. वही, पृष्ठ-72-73
51. वही, पृष्ठ 72-73

जितेन्द्र के. बजाज

पंचायती राज और विकेंद्रित राज्य-व्यवस्था पर धर्मपाल का अनुशीलन

भारत की व्यवस्था शुरू से ही विकेंद्रित रही है। इसकी पुष्टि स्वयं अंग्रेज अफसरों के लेखन से भी होती है। इसका व्यापक और गहन विश्लेषण इतिहासकार धर्मपाल जी की रचनाओं में उपलब्ध है। एक दृष्टि

धर्मपाल,(19 फरवरी 1922 से 24 अक्टूबर 2006) जिनकी जन्म शताब्दी हम शीघ्र ही मनाने जा रहे हैं, भारत के एक असाधारण इतिहासकार थे। उन्होंने अनेक ऐसी पुस्तकें रचीं जो भारतीय समाज और राज्य-व्यवस्था के विभिन्न आयामों को भारतीय दृष्टि से प्रस्तुत करती हैं, कुशलतापूर्वक प्रामाणिक दस्तावेजों से जुटाई सामग्री पर आधारित उनकी पुस्तकों ने ब्रिटिश पूर्व भारत के पिछड़ेपन ओर निष्क्रिय होने पर बने मतैक्य को भंग कर दिया और भारतीय समाज का ऐसा वृहत् चित्र प्रस्तुत किया जो कि अपने राजनीतिक विचारों और व्यवस्थाओं के साथ-साथ विज्ञान, तकनीक और शैक्षिक प्रविधियों की दृष्टि से भी अत्यधिक उन्नत एवं संभ्रांत था। उनके द्वारा रचित साहित्य ने तथा 1980 और 1990 के दशक में असंख्य ऐसे युवकों, जो कि प्राय: संभ्रांत शैक्षिक संस्थाओं से संबद्ध थे, के साथ हुए संवाद से नई पीढ़ी के असंख्य युवकों को ब्रिटिश पूर्व भारत के प्रति गहरे आत्मगौरव से भर दिया।

गांधी जी की महासागरीय वृत्तपरक राज्य-व्यवस्था

धर्मपाल जी और उनकी रचनाएँ गांधी जी से प्रेरित थीं। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि उनकी कृतियों में अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के भारत की विकेंद्रित जीवनशैली का चित्रण मिलता है। गांधी जी के लिए विकेंद्रीकरण केवल राजनीतिक-संरचना का एक स्वरूप भर नहीं था बल्कि यह भारतीय समाज का आधारभूत तत्व था। यहाँ तक कि यह धर्माधारित किसी भी मानवीय समाज का आधार था। सभी भारतीय विद्वानों की तरह गांधी जी की भी यह मान्यता थी कि हर प्राणी में देवत्व का अंश होता है और यह देवत्व सभी में जन्मजात है, इसलिए इसको न केवल स्वीकार किया जाना चाहिए बल्कि इसकी प्रभुसत्ता भी मानी जानी चाहिए। एक ऐसा समाज जो ऐसे लोगों से निर्मित है जिसका हर व्यक्ति देवत्व से मंडित है उसे किसी एकात्मक राज्य द्वारा जो संपूर्ण प्रभुतासंपन्न हो, शासित नहीं किया जा सकता। ऐसे समाज में प्रभुसत्ता व्यापक रूप से विभाजित रहती है। प्रत्येक व्यक्ति परिवार एवं आस-पड़ोस सहित स्थानीय और सामुदायिक क्रिया-कलापों को चलाने में भी भाग लेता है तथा व्यापक क्षेत्रीय, प्रांतीय और राष्ट्रीय राज्य प्रबंधन में भी भाग लेता है।

भारत की यह अवधारणा कि प्रत्येक व्यक्ति दैवी गुणों से संपन्न है और इसलिए संप्रभुतासंपन्न है को स्वाधीनता दिवस पर गांधी जी ने ठोस अभिव्यक्ति देते हुए 'महासागरीय वृत्त' की राज्य व्यवस्था कहा था जिसके केंद्र में सदा ऐसा व्यक्ति रहता है जो गाँव के लिए अपने को न्योछावर करने के लिए तत्पर रहता है, और गाँव, ग्राम समूह के लिए और इस प्रकार यह क्रम तब तक चलता है जब तक कि संपूर्ण इकाई ऐसे व्यक्तियों का समूह नहीं बन जाती जो कि कभी अहंकार में भी आक्रामक नहीं होते, बल्कि महासागर वृत्त की गरिमा का भाग बनकर सदा विनम्र और उसका अभिन्न अंग बने रहते हैं।"[1] दैवी सृष्टि के अज्ञात विस्तार में मनुष्यमात्र का उद्भव एक क्षणिक प्रस्फुटन से अधिक कुछ नहीं है यह धारणा भारतीय भाषाओं के ग्रंथों में अनेक स्थानों पर मिलती है। जब गांधी जी ने 'महासागरीय वृत्तपरक' राज्य-व्यवस्था को प्रस्तावित किया तब संभवत: उनके मस्तिष्क में यही बात रही होगी।

सभी में व्याप्त देवत्व और प्रभुत्व का विचार

सत्याग्रह के केंद्र में भी रहा होगा जिसे गांधी जी ने अपने प्रारंभिक सार्वजनिक जीवन में 1906 में गढ़ा था। यह वह समय था जब उन्होंने दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों को अंग्रेज द्वारा गढ़े विभेदकारी कानूनों द्वारा, मनुष्यता के निम्न स्तर पर गिराने के लिए षड्यंत्र के विरुद्ध तीव्र आंदोलन का नेतृत्व किया था ताकि उनके सम्मान की रक्षा हो सके। उस समय गांधी जी का तर्क यही था कि जो कानून मनुष्यों को समान महत्व या अधिकार नहीं देता वह मानव में निहित देवत्व का अपमान करता है और इसलिए ऐसे कानूनों का विरोध करना राजनीतिक ही नहीं, हमारा कर्तव्य भी है। गांधी जी का सत्याग्रह में अन्यायपूर्ण कानूनों का विरोध करना और इससे उत्पन्न सभी परिणामों को भुगतने के लिए तैयार रहना, एक प्रकार से मनुष्यमात्र में निहित देवत्व को श्रद्धासुमन अर्पित करने के समान था।

सत्याग्रह और विकेंद्रीकरण परस्पर संबद्ध हैं। दोनों का उत्स मानव प्रकृति की मूलभूत समझ और सृष्टि में उसके स्थान से संबद्ध है। गांधी जी ने बार-बार कहा है, सत्याग्रह के बिना, कोई भी स्वराज, स्वशासन नहीं हो सकता। जब तक लोग अन्यायपूर्ण कानूनों का विरोध करने का साहस अर्जित नहीं करते और अपने दैवी सम्मान और संप्रभुता के अनुरूप अपने सार्वजनिक कार्यों को अपने रीति-रिवाजों, कानूनों और अपने परिवार, समाज और स्थान द्वारा विहित धर्मों के अनुसार परिचालित नहीं करते, स्वशासन संभव नहीं।[2]

धर्मपाल के साहित्य में, जिसमें ब्रिटिश शासन से पूर्व अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय समाज और राज्य-व्यवस्था का ब्रिटिश दस्तावेजों के आधार पर, सजीव चित्रण किया गया है उसमें सत्याग्रह और विकेंद्रित कार्यप्रणाली अर्थात पंचायती राज पर विस्तार से विचार किया गया है। उनकी तीन पुस्तकें विशेष रूप से इन विषयों से संबंधित है। परंतु विकेंद्रित राज्य-व्यवस्था के प्रति भारतीयों की पसंद उन पुस्तकों में भी अंकित है जो राजनीति अथवा सामाजिक संगठनों से सीधे संबंधित नहीं हैं। इस निबंध में हम उनके संपूर्ण साहित्य में विकेंद्रीकरण पर जो चिंतन है उस पर विचार करेंगे।

विकेंद्रित राज्य-व्यवस्था में तकनीक

उनकी ऐसी ही एक पुस्तक 'अठारहवीं शताब्दी में भारतीय विज्ञान और तकनीक' है जो भारत में आए विदेशी पर्यवेक्षकों के तद्युगीन वृत्तांतों पर आधारित है।[3] 1971 में प्रकाशित यह पुस्तक, अनेक भारतीयों के लिए जिनमें विद्यार्थी और अनेक वरिष्ठ वैज्ञानिक भी हैं, भारत की संभ्रांत और परिष्कृत विज्ञान और तकनीक से परिचित करवाने वाली प्रथम पुस्तक थी जो विभिन्न क्षेत्रों में ब्रिटिश पूर्व भारत में विकसित हुई थीं। धर्मपाल जी द्वारा संकलित वृत्तांतों को पढ़ना एक शिक्षाप्रद और संतोषजनक अनुभूति देता है तथा भारत की उपलब्धियों के प्रति आदर और विस्मय का भाव भी उत्पन्न करता है। इन अत्यधिक परिष्कृत और कुशल तकनीकों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ऐसा प्रतीत होता है कि यह भारत की अत्यधिक विकेंद्रित कार्यप्रणाली के अनुसार विकसित की गई है। धर्मपाल जी ने ब्रिटिश पूर्व की इन तकनीकों के इस गुण पर भूमिका में लिखा है कि "सत्रहवीं, अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोपीयों द्वारा समाज और इसके अनुसार विज्ञान, तकनीक और राजनीति विषयक जो दृष्टिकोण था, वह गैर यूरोपीय समाजों के, इन विषयों से संबद्ध दृष्टिकोण से पूरी तरह भिन्न था। इसके परिणामस्वरूप गैर यूरोपीय संसार के विज्ञानों और तकनीकों का लक्ष्य और विकास भी यूरोपीयों से बिलकुल भिन्न था। इसके साथ ही, भारत जैसे कुछ देशों में, इनका गठन भी विकेंद्रित राजनीति के अनुरूप हुआ था और भारत में अपने कार्य-यंत्रों और कार्यस्थलों को विशालकाय और भव्य बनाने की ओर ध्यान नहीं था। लोहे और इस्पात की भट्ठियों, बुआई के हलों का लघु आकार और बनावट की सरलता, वास्तव में सामाजिक और राजनीतिक परिपक्वता तथा इनके निर्माण में प्रयुक्त प्रविधियों और सिद्धांतों की समझ से विकसित थी। अठारहवीं शताब्दी के भारतीय औजार और प्रविधियाँ अनगढ़ होने के स्थान पर अत्यधिक परिष्कृत, सिद्धांतों और सौंदर्य चेतना से संपन्न थे।"

इस पुस्तक में एक निबंध ऐसी ऊर्जा संरक्षक, परिष्कृत और छोटी लौह भट्टियों पर है जो यहाँ के इस्पात निर्माताओं के पास थीं,[4] इन भट्टियों में अन्य पदार्थों के साथ-साथ 'वूट्ज इस्पात जिसकी माँग विश्व के अनेक भागों में थी जिसमें कैंब्रिज में फेराडें के प्रयोगों के लिए भी इसकी माँग थी। धर्मपाल ने अपनी भूमिका में अनुमान लगाया है कि अठारहवीं शताब्दी में भारत में इसे बनाने वाली 10,000 भट्टियाँ थी जिनमें प्रतिवर्ष 20 टन इस्पात तैयार होता था। इस प्रकार भारत का कुल इस्पात उत्पादन 2 लाख टन वार्षिक था। इतनी मात्रा में उत्पादन की कल्पना 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक नहीं की जा सकती थी जबकि लोहे और इस्पात का उत्पादन नवविकसित औद्योगिक राष्ट्रों द्वारा आधुनिक केंद्रीकृत विधियों से होने लगा।

"इस पुस्तक के एक अन्य अध्याय में चेचक के विरुद्ध टीकाकरण पर अभियान विषयक है।[5] इसमें वर्णन किया गया है किस प्रकार एक स्वायत्त विधि के द्वारा संपूर्ण जनसंख्या का टीकाकरण होता था। साल दर साल, टीकाकरण करने वाले लोग अपने पूर्व निर्धारित क्षेत्र में सुनिश्चित प्रथा के अनुसार

जाते थे और टीकाकरण करते थे जिसका खर्चा उपभोक्ता परिवार और स्थानीय लोग उठाते थे। टीकाकरण करने वाले टीके में प्रयुक्त सामग्री का अपने स्तर पर संग्रह, निर्माण, संरक्षण करते थे। इस सुनिधि द्वारा प्रत्येक व्यक्ति का टीकाकरण सुनिश्चित किया जाता था और इसमें केंद्रीकृत उत्पादन, बजट, विनियोजन, निरीक्षण और नियंत्रण की आवश्यकता नहीं रहती थी।

विकेंद्रित राज्य-व्यवस्था में शिक्षा

सर्वाधिक पढ़ी जाने वाली उनकी अन्य पुस्तक है जिसमें अंग्रजों के आगमन से पूर्व भारत की शिक्षा प्रणाली का वर्णन है। इसका मुख्य आधार मेजर थामस मुनरो द्वारा आदेशित भारतीय शिक्षा-प्रणाली का सर्वेक्षण है जो कि 1822 में मद्रास का गवर्नर था। मद्रास प्रेसिडेंसी के 21 जिलों के कलेक्टरों द्वारा स्वदेशी स्कूलों और उच्च शिक्षा के केंद्रों के विषय में प्रेषित विवरणों से भारत में प्रचलित शिक्षा प्रणाली की समग्रता, परिष्कृति और प्रसार का एक आकर्षक चित्र उभरता है। मद्रास प्रेसिडेंसी में वर्तमान तमिलनाडु, कर्नाटक के कुछ भाग, आंध्र और केरल सम्मिलित थे। इस पुस्तक में डब्ल्यू. एडम (1835-38) की रिपोर्ट तथा जी. डव्ल्यू. लिटनर (1822) की रिपोर्टों के उद्धरण भी हैं जो क्रमश: बंगाल और पंजाब की शिक्षा से संबंधित हैं।

इस व्यापक और स्कूली और उच्च शिक्षा के तंत्र का आकर्षक पक्ष यह था कि यह सारे देश में प्रचलित थी और स्कूल जाने योग्य अधिकांश लोगों को जाति और समुदाय के भेदभाव के बिना उपलब्ध थी और यह पूरी तरह सामुदायिक और स्थानीय लोगों द्वारा गठित और उनके दिए हुए साधनों से परिचालित थी। यह किसी प्रांतीय अथवा केंद्रीय संस्था की सहायता अथवा निरीक्षण की अपेक्षा नहीं रखती थी। जब अंग्रेजों ने स्वदेशी शिक्षा प्रणाली पर अपनी शिक्षा प्रणाली थोपनी प्रारंभ की तो सर्वप्रथम उन्होंने 'सार्वजनिक शिक्षा विभाग स्थापित' किया जो कि पाठ्यक्रम निर्धारित करता, अध्यापकों की भर्ती और प्रबंधन देखता, आर्थिक प्रावधान करता और सभी स्तरों पर केंद्रीय निरीक्षण और नियंत्रण की व्यवस्था करता था। स्वदेशी शिक्षा प्रणाली सहज रूप से विकेंद्रित थी। ब्रिटिश प्रणाली सहज ही केंद्रित थी। किसी भी चीज को व्यवस्थित करने का उन्हें एक ही ढंग आता था और वह था एक केंद्रीय विभाग की स्थापना करना और उसकी शाखाएँ जिलों और निचले स्तरों तक खोलना। धर्मपाल की रचनाओं में भारतीय और ब्रिटिश कार्यप्रणाली की विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्नता को दर्शाया गया है।

सविनय अवज्ञा; सत्ता के विकेंद्रीकरण का निश्चय

धर्मपाल की एक अन्य पुस्तक में बनारस और बिहार के तथा अन्य अनेक भागों में 1810-11 में, विदेशी सत्ता द्वारा थोपे गए गृह-कर के विरुद्ध फैले सविनय अवज्ञा आंदोलन का वर्णन है।[7] भारतीयों को यह टैक्स एक अतिवादी नवाचार लगा जो कि भारत की इस परंपरागत धारणा को तोड़ती थी कि गृहस्वामी अपने घर में सर्वप्रभुतासंपन्न होता है, इसलिए यह टैक्स अवांछित था। इस पुस्तक ने स्थापित किया कि गांधी जी द्वारा प्रचारित सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा अथवा सविनय आज्ञाभंग की विधियाँ उनकी अपनी खोज नहीं थीं बल्कि भारतीय समाज-व्यवस्था में स्वीकृत व्यवहारों की पुनर्स्थापना थी। गांधी जी जानते थे कि यह प्रथा भारतीय मानस में गहरे पैठी हुई है। 1909 में रचित 'हिंद स्वराज' में गांधी जी ने लिखा, "यह तथ्य है कि राष्ट्र के रूप में भारत सामान्य रूप से सविनय अवज्ञा को जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रयोग करता है। जब हमारे शासक हमें क्षुब्ध करते हैं तो हम उनसे सहयोग करना बंद कर देते हैं।"[8]

धर्मपाल की यह पुस्तक भारतीय राज्य-व्यवस्था के अनेक अंगों से परिचित करवाती है। एक अन्य बहुत महत्वपूर्ण तथ्य जिसे यह रेखांकित करती है वह है सत्याग्रह में किस प्रकार विकेंद्रित प्रणाली का प्रयोग होता है। बनारस में नियुक्त मजिस्ट्रेट अपनी संप्रेषित सूचना में लिखता है, "शहर में व्याप्त सविनय अवज्ञा आंदोलन को, घुड़सवारों द्वारा खदेडा जाना बहुत आसान होता परंतु "उनमें नेता अथवा मुखिया कौन है, यह पता ही नहीं चलता और इस प्रकार वे घुडसवारों की मार से बच जाते हैं।" किसी नेता और मुखिया के अभाव में ब्रिटिश सत्ता को स्थिति से निपटने में अधिक कठिनाई होती थी। बनारस के मजिस्ट्रेट के अनुसार इस आंदोलन में 'हजारों लुहार, कुनवी और कोरी' शामिल थे तथा अन्य जातियों से भी हजारों लोग स्वेच्छा से उनमें आ जुड़ते थे। यह सभी जातियाँ अपने-अपने 'समुदाय की व्यवस्थानुसार' भाग लेकर आंदोलन में मतैक्य और एकसूत्रता बनाए रखती हैं। नए टैक्स के विरोध में प्रदर्शन करने वाले लोगों के लिए रसद का प्रबंधन भी वैसी ही विकेंद्रित विधि से होता था जिसके परिणामस्वरूप बनारस का मजिस्ट्रेट दुखपूर्वक लिखता है, "सत्याग्रहियों को ईंधन, तेल तथा अन्य खाद्य सामग्री प्रभूत मात्रा में उपलब्ध है, जबकि शहर में अनाज के सिवा कुछ भी उपलब्ध नहीं है।" अंग्रेजों के लिए स्वत:स्फूर्त दिखने वाले इस विकेंद्रित आंदोलन को संभालना एक नई चुनौती थी और उससे निपटना उन्हें नहीं आता था। आगे चलकर गांधी जी के सविनय अवज्ञा आंदोलनों ने ब्रिटिश सरकार को अनेक वर्ष इसी प्रकार संभ्रमित किया। यहाँ तक कि जनरल स्मट को भी गांधी जी के सत्याग्रह से, दक्षिण अफ्रीका में निपटना कठिन लगा था और उसने ब्रिटिश संसद में स्वीकार किया था "एशिया के लोग एक प्राचीन सभ्यता से संबंधित हैं, उनके साथ बर्बर लोगों जैसा बर्ताव नहीं किया सकता।"[9] ऐसा प्रतीत होता है कि विकेंद्रित कार्यप्रणाली ओर संरचना, इस प्राचीन सभ्यता की प्रमुख विशेषता है।"

भारत की संवैधानिक राज्य-व्यवस्था में पंचायती राज

जिन तीन पुस्तकों का वर्णन हमने ऊपर किया है उनका संबंध पंचायती राज से नहीं है और न ही विशेष रूप से विकेंद्रित राज्य-व्यवस्था से है। इनका संबंध भारतीय राज्य-व्यवस्था के विभिन्न आयामों से है जिनमें से प्रत्येक विकेंद्रित रूप से कार्य करने के लिए निर्मित है। जैसा कि हमने उल्लेख किया है, यह तीनों पुस्तकें यूरोपीय और ब्रिटिश पर्यवेक्षकों के अनुभवों और पर्यवेक्षणों पर आधारित हैं। धर्मपाल जी ने छठे दशक के मध्य से लेकर लगभग दस वर्ष का समय ब्रिटिश अभिलेखागारों में ऐसी सामग्री एकत्र करने में व्यतीत किया जिससे ब्रिटिश लोगों ने भारतीय समाज और राज्य-व्यवस्था को किस

तरह देखा इसकी अंतर्दृष्टि प्राप्त हो सके। अभिलेखागारों में अपने को सीमित करने के पूर्व लगभग दो दशक तक धर्मपाल जी सार्वजनिक गतिविधियों में लगे रहे थे जिनका संबंध ग्रामीण संस्थाओं को समझने और पुष्ट करने से था। इस कालावधि में उन्होंने दो पुस्तकें लिखीं जिनका सीधा संबंध भारत में पंचायती राज से था।

इनमें से पहली पुस्तक 'पंचायती राज ऐज द बेसिस ऑफ इंडियन पॉलिटी'[10] है, जो कि भारत की संविधान निर्मात्री समिति में हुए उस विचार विमर्श वाद-विवाद का संकलन है जो कि भारत की संवैधानिक व्यवस्था में पंचायती राज के स्थान को लेकर हुआ। भारतीय संविधान का निर्माण करते समय भारतीय राज्य-व्यवस्था की इकाई व्यक्ति को माना गया न कि गाँव को। यह शास्त्रीय राज्य-व्यवस्था के विपरीत था जिसमें गाँव को मूलभूत इकाई माना जाता था। यह महात्मा गांधी के अधीन लडे गए स्वाधीनता संग्राम की आत्मा के भी विरुद्ध था। अनेक राष्ट्र निर्माता, संभवत: अधिकांश राष्ट्र निर्माता इस बात को लेकर अप्रसन्न थे क्योंकि वे इसे गांधीवादी आदर्शों के साथ छल समझते थे। उन्होंने अपनी छले जाने की इस भावना को भावुकतापूर्ण वक्तव्यों में प्रकट किया। उनकी मुख्य शिकायत यह थी कि जिन लोगों ने भारत के संविधान का निर्माण किया है उनके पास विश्व भर के संविधानों को खोजने ओर पढ़ने का तो समय था परंतु उन्हें भारत के भीतर झाँकने और भारत की शास्त्रीय राज्य-व्यवस्था को जानने का समय नहीं था।

इस वाद-विवाद (विचार-विमर्श) को यह बहाना बनाकर समाप्त कर दिया गया कि अब इतना समय नहीं बचा है कि गाँव को राज्य-व्यवस्था की मूल इकाई मानकर, संविधान की पुन: रचना की जाए। ग्राम पर आधारित विकेंद्रित राज्य-व्यवस्था के पक्षधरों के केवल इतनी ही छूट दी गई कि पंचायती राज्य व्यवस्था का उल्लेख, कानूनी रूप से बाध्यता रहित, राजकीय नीति के निर्देशक सिद्धांतों में कर दिया गया। यह अंतत: संविधान का 40वाँ अनुच्छेद बना जिसमें कहा गया, "राज्य ऐसे कदम उठाएगा जिससे पंचायतों का गठन किया जाए और उन्हें ऐसी शक्तियाँ और अधिकार दिए जाएँ जिससे वे स्वशासन की इकाइयों के रूप में कार्य कर सकें।" इसके चालीस से भी अधिक वर्ष बीत जाने पर संविधान में 73वें एवं 74वें संशोधन द्वारा, स्वशासन की इन इकाइयों को औपचारिक स्थान संविधान में IX (नवां) और IX&A (नवां-ए) भाग जोड़कर किया गया। धर्मपाल ने जिस तीव्र भावपूर्ण वाद-विवाद का उल्लेख अपनी पुस्तक में किया है उसमें संविधान निर्माताओं का उद्देश्य पंचायतों को राज्य-व्यवस्था की मूल इकाई बनाना था न कि वे इसे केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों के नीचे पंचायती राज की तीसरी कड़ी के रूप में जोड़ने की बात कर रहे थे।

पंचायती राज पर अपनी दूसरी पुस्तक 'द मद्रास पंचायत सिस्टम'[11] में धर्मपाल जी ने सरकारी तंत्र में प्रयुक्त कार्यविधि का वर्णन किया है। छठे दशक में उन्होंने तमिलनाडु में पंचायती राज का जो सर्वेक्षण किया उसका वर्णन है। इस सर्वेक्षण की भूमिका में धर्मपाल जी ने 'मद्रास प्रेसिडेंसी' में प्रारंभिक समय से लेकर 1882 में रिपन प्रस्तावों के फलस्वरूप 1884 में पारित कानूनों तक, यहाँ पर स्थानीय स्वशासन से संबद्ध संस्थाओं का इतिहास दिया है। निचले स्तर की गैर सरकारी संस्थाओं को संपूर्ण सत्राधिकार देने का यह प्रथम प्रयास अधिक सफल न हो सका। बाद में 1920 के कानून द्वारा स्थानीय संस्थाओं के अधिकार क्षेत्र को विस्तार देने के कार्य में सफलता अवश्य मिली ओर ऐसा प्रतीत होता है कि काम एक दशक तक पर्याप्त कुशलता के साथ हुआ। 1930 के पश्चात ब्रिटिश शासन की सहज केंद्रीकरण की प्रवृत्तियाँ हावी होने लगीं। अनेक नियमों और कानूनों द्वारा स्थानीय संस्थाओं की आर्थिक और कार्यकारी स्वायत्तता कतर दी गई। धर्मपाल जी ने इसका विस्तार से सजीव वर्णन किया है। पूरे ब्रिटिश शासन में कुतरने की यह प्रक्रिया जारी रही। जब तक ब्रिटिश शासन भारत से समाप्त हुआ उन्होंने ऐसा क्रियात्मक और नियामक ढाँचा स्थापित कर दिया था जिससे स्थानीय संस्थाओं के हाथ पूरी तरह बाँध दिए गए थे और उनमें अपने स्तर पर पहले करने की कोई संभावना शेष न रह गई थी। केवल मद्रास ही नहीं, भारत के अन्य भागों में भी ऐसा ही हुआ था जहाँ पर ऐसी ही ऐतिहासिक यात्रा स्थानीय संस्थाओं और स्वशासन की रही।

स्वतंत्र भारत में पंचायती संस्थाओं को सुदृढ करने के बहुत प्रयास किए गए हैं। विभिन्न राज्यों ने ऐसी संस्थाओं को स्थापित करने और उनके सशक्तीकरण के लिए अनेक कानून परित किए हैं। 73वें और 74वें संशोधनों द्वारा इन्हें संवैधानिक मान्यता और संरक्षण प्राप्त हुआ है। परंतु इन्हें जो भी शक्तियाँ प्रदान की गई हैं वे आज भी ब्रिटिश शासन द्वारा पीछे छोड़े गए प्रक्रियात्मक और नियामक ढाँचे द्वारा बाधित हो रही हैं। धर्मपाल ने अपने मद्रास (तमिलनाडु) के सर्वेक्षण में इन नियमों और प्रविधियों द्वारा पंचायती राज में आने वाली बाधाओं का वर्णन किया है। वह अनेक दंतकथाओं के माध्यम से यह बताया करते थे कि किस तरह ब्रिटिश औपनिवेशिक राज द्वारा छोड़े गए नियमों और प्रविधियों से स्थानीय संस्थाएँ नकारा हो गई हैं। आइए उनके प्रकाशित भाषणों में से एक दंतकथा का वर्णन करें। वह बताते हैं कि किस प्रकार तमिलनाडु में रविवार को काम न करने के आदेश द्वारा जिसे क्रिश्चियन विश्राम का दिन कहते हैं, पंचायतों का मिल पाना असंभव हो गया था।[12]

"1964-65 में तमिलनाडु में पंचायतों के अध्ययन के प्रारंभिक दिनों में मैंने पाया कि पंचायत भवनों के अभाव में पंचायत सभा नहीं हो पाती थी और इसकी जगह नियम विहित सभा का कार्य परिसंचरित प्रस्ताव द्वारा संपन्न मान लिया जाता था। इसे जानते हुए कि गुटबाजी के कारण किसी अन्य सदस्य अथवा अध्यक्ष के घर पर सभा करने को राजी नहीं थे, मैंने कहा कि वे रविवार को गाँव के स्कूल में सभा क्यों नहीं कर लेते क्योंकि 1964 में भी तमिलनाडु में हर गाँव में, स्कूल की छोटी-बड़ी इमारत होती ही थी। उन्होंने कहा कि सोमवार से शनिवार तक पाठशाला चलती है। इसलिए इन दिनों वहाँ बैठक नहीं हो सकती, मैंने सुझाव दिया कि वे रविवार को वहाँ पंचायत की बैठक कर लें। उन्होंने बताया कि सरकारी कायदे-कानूनों के अनुसार रविवार को पंचायतों का कोई कार्य करना निषिद्ध है। एक आध वर्ष के पश्चात् मुझे पता चला कि रविवार को कोई भी सरकारी कार्य न करने का प्रावधान 1800 में पारित किया गया था जो कि ब्रिटेन में 'सैबथ दिवस' (विश्राम दिवस) "कार्य न करने के आदेश

का सख्ती से पालन करने कानून के पश्चात् आया था जिसके अनुसार ब्रिटेन में रविवार को सार्वजनिक कार्य करने पर रोक लगा दी गई थी। कहना न होगा कि यह कानून जिसके अनुसार नाटकों का सार्वजनिक मंचन, दुकानों आदि को खोलना और यहाँ तक कि अपने धुले कपड़ों को अपने घर के पिछवाड़े वाले आँगन में सूखने के लिए रविवार को डालना वर्जित था जो न्यूनाधिक मात्रा में ब्रिटेन में निकट अतीत तक जारी रहा। यहाँ अनेक लोग जानते हैं कि 'सैबथ', रविवार के प्रावधानों का पालन, आधुनिक इजराइली राज्य में और भी सख्ती से किया जाता है।

इसमें किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि ऐसी पंचायतों के प्रति लोगों में किसी प्रकार का अपनत्व का भाव पैदा नहीं हुआ और लोगों ने इन्हें भी केंद्रीकृत सरकार का ही विस्तार माना। जिन विषयों को वे बहुत महत्वपूर्ण समझते थे उन्हें निपटाने के लिए वे अपनी पुरानी परंपरागत पंचायतों में जाते थे। धर्मपाल एक अन्य दंतकथा में इस परिहासपूर्ण और त्रासद स्थिति का वर्णन करते हुए कहते है।"[13]

1961 में राजस्थान पंचायतों के अध्ययन के दौरान प्रारंभिक घटनाओं में से एक ऐसी थी जिसने मुझमें ग्रामीण जीवन की अलग ही समझ पैदा की। किसी एक विशेष गाँव में जो संभवत: सवाई माधोपुर जिले में था, हमें पता चला कि गाँव में सिंचाई के लिए तालाब हे। क्योंकि मुझे ग्राम पंचायत के ब्योरों में तालाबों का कहीं कोई उल्लेख नहीं मिला इसलिए मैने ग्रामीणों से पूछा कि इन तालाबों का कभी कुछ हुआ था। उन्होंने वास्तव में बताया कि कभी-कभार इनकी मरम्मत की जाती थी। यह पूछने पर कि उनकी मरम्मत कौन करता था तो उन्होंने कहा 'हमने' उनकी मरम्मत की थी। मैंने पूछा कि 'हमने' का अर्थ क्या यह है कि पंचायत ने यह कार्य किया था। उन्होंने कहा कि इसका अर्थ पंचायत नहीं था बल्कि जिन लोगों के खेत उन तालाबों के पानी से सिंचित होते थे, उन्होंने मरम्मत करवाई थी। उन्होंने आगे बताया किस तरह इस कार्य के लिए धन और मजदूरों की व्यवस्था की गई थी। जब मैंने पूछा कि मरम्मत का काम पंचायत ने क्यों नहीं करवाया तो उनका कहना था कि यह काम पंचायत के जिम्मे नहीं था। जब मैंने पूछा कि तो फिर पंचायत का क्या काम है, तो उन्होंने बताया कि पंचायत का काम 'विकास' करना है और सरकार चाहती है कि हम वही करें। उनकी समझ के अनुसार तालाबों की मरम्मत के काम को विकास कार्य नहीं माना जा सकता। इसलिए उनका मानना था कि तालाबों की मरम्मत करना उनका अपना काम था और उसे सदियों से चली आ रही प्रथा के अनुसार उन्हें ही करना था।

धर्मपाल का साहित्य इस तरह विकेंद्रित राज्य व्यवस्था का आकर्षक अवलोकन प्रस्तुत करता है जो शास्त्रीय राज्य व्यवस्था और उसके सिद्धांतों और प्रणालियों को रेखांकित करता है और जो कि प्राचीनतम काल से भारतीय सार्वजनिक जीवन में विद्यमान रही हैं। यह इस बात को भी बताता है कि किस तरह सहज रूप से विकसित सर्वव्यापी विकेंद्रित प्रणाली को अंग्रेजों द्वारा तोड़ा गया और इससे संबद्ध तकनीकों और ढाँचों को नष्ट किया गया। क्योंकि कोई भी केंद्रीय-व्यवस्था गाँव तक कुशलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकती थी। इसलिए अंग्रेजों ने आगे चलकर एक स्तर तक स्थानीय स्वशासन स्थापित करने का प्रयास किया। परंतु इस कार्य हेतु स्थापित स्थानीय संस्थानों को केंद्रीय प्रणाली द्वारा थोपे गए नियमों और विनियमों द्वारा बाधित किया गया जिनकी व्यवस्था और व्याख्या समय-समय पर केंद्रीय प्रणाली करती रहती थी। स्वाधीनता के पश्चात भी नियमों-विनियमों और प्रविधियों का दमघोंटू ढाँचा लगभग वैसा ही बना रहा। यह स्थानीय स्वशासन के सशक्तीकरण के हमारे सारे सदिच्छा भरे प्रयासों पर पानी फेर रहा है।

धर्मपाल की रचनाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि भारत की विकेंद्रित रूप से कार्य करने की विधि और अंग्रेजों की केंद्र नियंत्रित और विनियमित प्रणाली, दो अलग-अलग दुनियाओं से संबंधित हैं। दोनों के बीच किसी मध्यमार्ग को खोज पाना असंभव ही है।

संदर्भ

1. कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, खंड 85, पृ. 32-34। हरिजन, 28-7-1946 में भी।
2. सभी राजनीतिक कार्रवाइयों के धर्म में समन्वयन संबंधी गांधी जी की दृष्टि पर विस्तृत विमर्श के लिए देखें जे.के. बजाज एवं एम.डी. श्रीनिवास, मेकिंग ऑफ अ हिंदू पैट्रियट, हर आनंद, दिल्ली 2021।
3. धर्मपाल, इंडियन साइंस ऐंड टेक्नोलॉजी इन द एटींथ सेंचुरी: सम कंटेंपरेरी यूरोपियन अकाउंट्स, धर्मपाल क्लासिक्स एडीशन, राष्ट्रोत्थान साहित्य, बंगलौर 2021। प्रथम प्रकाशन, बिब्लिया इंपेक्स, दिल्ली 1971।
4. धर्मपाल, वही, अध्याय: मेजर जनरल फ्रैंक्लिन, द मोड ऑफ मैन्यूफैक्चरिंग आइरन इन सेंट्रल इंडिया (सिर्का 1829), पृ.237-270।
5. धर्मपाल, वही, अध्याय: जे.जेड. हॉलवेल, ऐन अकाउंट ऑफ द मैनर ऑफ इनोक्यूलेटिंग फॉर द स्मॉल पॉक्स इन द ईस्ट इंडीज (एडी 1767), पृ. 169-187।
6. धर्मपाल, द ब्यूटीफुल ट्री: इंडिजिनस इंडियन एजूकेशन इन द एटींथ सेंचुरी, धर्मपाल क्लासिक्स एडीशन, राष्ट्रोत्थान साहित्य, बंगलौर 2021। प्रथम प्रकाशन, बिब्लिया इंपेक्स, दिल्ली 1983।
7. धर्मपाल, सिविल डिसओबेडिएंस ऐंड इंडियन ट्रडिशन विद सम अर्ली नाइंटींथ सेंचुरी डॉक्यूमेंट्स, धर्मपाल क्लासिक्स एडीशन, राष्ट्रोत्थान साहित्य, बंगलौर 2021। प्रथम प्रकाशन, सर्व सेवा संघ प्रकाशन,वाराणसी 1971।
8. एम.के. गांधी, हिंद स्वराज, सेंटर फॉर पॉलिसी स्टडीज, चेन्नई 2011, खंड तीसरा, पृ.83-84। प्रथम प्रकाशन फीनिक्स 1910।
9. जे.के. बजाज एवं एम.डी. श्रीनिवास, मेकिंग ऑफ अ हिंदू पैट्रियट, हर आनंद, दिल्ली 2021, पृ. 122-124।
10. धर्मपाल, पंचायत राज ऐज द बेसिस ऑफ इंडियन पॉलिटी: ऐन एक्सप्लोरेशन इंटू द प्रोसीडिंग्स ऑफ द कॉन्स्टीट्युएंट असेंब्ली, धर्मपाल क्लासिक्स एडीशन, राष्ट्रोत्थान साहित्य, बंगलौर 2021। प्रथम प्रकाशन, अवार्ड, नई दिल्ली 1962।
11. धर्मपाल, द मद्रास पंचायत सिस्टम वॉल्यूम सेकंड: अ जनरल असेसमेंट, बिब्लिया इंपेक्स, नई दिल्ली 1972।
12. धर्मपाल, सम ऐस्पेक्ट्स ऑफ अर्लियर इंडियन सोसाय्टी ऐंड पॉलिटी ऐंड देअर रेलिवेंस टु द प्रेजेंट, न्यू क्वेस्ट पब्लिकेशंस, पुणे 1987, पृ.8-9।
13. धर्मपाल, वही, पृ. 7।

डॉ. शिवशक्ति बक्सी

श्रीगुरुजी एवं पं. दीनदयाल उपाध्याय की दृष्टि में पंचायती राज

भारत के सामाजिक-आर्थिक ढाँचे की आधारशिला चिरकाल से प्रचलित पंचायत प्रणाली ही रही है। श्री गुरुजी और दीनदयाल जी की दृष्टि में इसकी प्रासंगिकता और अपेक्षित स्वरूप

भारत की स्वतंत्रता के साथ अनेक प्रकार की चुनौतियाँ भी सामने आईं। भारत-विभाजन से उपजे हुए प्रश्न एवं समस्याएँ तो थीं ही, साथ ही स्वतंत्र भारत के स्वरूप, संवैधानिक व्यवस्था, शासन तंत्र, आर्थिक प्रणाली जैसे विषयों पर भी अनेक मत थे। ध्यान देने योग्य है कि साम्राज्यवादी शक्तियों से राष्ट्र का संघर्ष उस समय के एक विशेष वैश्विक पृष्ठभूमि में हुआ, जब पूरे विश्व में विभिन्न प्रकार की विचारधाराओं के आधार पर नए मार्ग खोजने का क्रम चल रहा था। 'पूँजीवाद' एवं 'समाजवाद' के विचार, इनके अंदर के आंतरिक विमर्शों से, विभिन्न प्रकार की विचारधाराओं में अभिव्यक्त हो रहे थे। भारतीय परिस्थितियों में ये विचारधाराएँ कितनी सार्थक हो सकती थीं अथवा इनके अंधानुकरण के क्या परिणाम हो सकते थे, इस पर भी देश में व्यापक बहस छिड़ी हुई थी। 'स्वराज्य' की कल्पना के भी विभिन्न आयामों पर चर्चा होती रही तथा इसके किसी निश्चित स्वरूप की व्याख्या के भी प्रयास होते रहे। भारतीय परिस्थितियों में भारतीय विचार, चिरकाल से चले आ रहे इसकी सामाजिक, प्रशासनिक एवं आर्थिक संस्थाओं की प्रासंगिकता की भी विवेचना, इस पूरे वैचारिक बहस का एक महत्वपूर्ण आयाम था।

इस व्यापक बहस के परिणामस्वरूप 'ग्राम स्वराज' एवं 'पंचायती राज' जैसी अवधारणाओं के आधार पर स्थानीय शासन की व्यवस्था पर चर्चा शुरू हुई। प्राचीन काल से ही ग्रामीण जीवन में पंचायतों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। यह एक ऐसी संस्था रही जिस पर भारत के ग्रामीण जीवन के विभिन्न पहलू केंद्रित रहे एवं इसके सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन के नियमन एवं संचालन में पंचायतों ने महती भूमिका निभाई। 'श्रीगुरुजी' माधव सदाशिव गोलवलकर के अनुसार, "प्राचीन काल से प्रचलित ग्राम-पंचायत प्रणाली हमारे देश के आर्थिक-सामाजिक ढाँचे की आधारशिला रही है। समाज के विविध वर्द्धमान दायरों से अष्टप्रधान समिति का गठन ही पंचायत है। यह अष्ट सदस्यीय मंत्रिपरिषद् राजा की परामर्शदात्री होती है। पंचायत का दायित्व व्यावसायिक होता है।[1]"

आगे वे उस समय की व्यवस्था का उल्लेख करते हुए लिखते हैं; "वस्तुतः उन दिनों का जीवन आज जैसा नहीं था। उस समय मुख्यतः चार व्यवसायिक समूह होते थे। पहला समूह उन लोगों का था जो भौतिक और आध्यात्मिक विज्ञानों के अध्ययन-अध्यापन के प्रति समर्पित थे। दूसरे में वे लोग थे, जिनको प्रशासन चलाने का दायित्व सौंपा गया था। तीसरा वर्ग व्यापारियों का था और चौथे वर्ग में वे लोग थे, जो कृषि व संबंधित हस्तकलाओं में संलग्न था। एक पाँचवाँ समूह भी था, जो जंगल में रहकर शिकार एवं वन्योत्पादों से अपनी जीविका चलाता था। इन्हें 'निषाद' कहा जाता था। संपूर्ण समाज के हित में पंचायत में इन पाँचों वर्गों का प्रतिनिधित्व होता था।[2]"

इस प्रकार से यदि देखा जाए तब पंचायत व्यवस्था न केवल स्थानीय शासन-प्रशासन एवं न्याय व्यवस्था से संबंधित रही, बल्कि ग्रामीण समाज के आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था के संचालन का भी दायित्व उस पर रहा। सबसे महत्वपूर्ण बात यह रही कि लोकतंत्र के मूल सिद्धांतों का स्वीकार करने वाली ये संस्थाएँ प्रतिनिधित्वात्मक रहीं एवं समाज के हर वर्ग का विश्वास इन्हें प्राप्त रहा। भारतीय समाजिक जीवन में पंचायतों ने प्राचीन काल से ही स्थानीय स्तर पर 'स्वशासन', राजनीतिक एवं आर्थिक विकेंद्रीकरण एवं लोकतांत्रिक प्रणाली का उच्च स्तरीय आदर्श प्रस्तुत किया, जिस कारण से अनेक आक्रमणों के पश्चात भी सामाजिक जीवन की परांपरागत

व्यवस्थाएँ अक्षुण्ण रही। साथ ही समय-समय पर पंचायतों के माध्यम से स्थानीय स्तर पर निर्माण कार्य हुए जो आज भी समाज में उदाहरण के रूप में वर्तमान हैं। इन्हीं उच्च परंपराओं को देखते हुए गांधी जी ने ग्राम-स्वराज की कल्पना की थी, परंतु भारतीय संविधान जब बना, तब 'ग्राम-स्वराज्य' का स्वप्न उसमें परिलक्षित नहीं हो पाया। जयप्रकाश नारायण ने अपनी पुस्तक 'विचार यात्रा' में लिखा है, ''जब संविधान का संपूर्ण मसविदा तैयार हो गया तब किसी ने, श्री संस्थानम् ने या श्री टी. प्रकाशम् ने, ध्यान खींचा कि गांधी जी ने 'ग्राम स्वराज्य' की कल्पना को स्वराज्य के ढाँचे की बुनियाद माना था; किंतु हमारा संविधान तो इससे सर्वथा विपरीत बन गया है। उन्होंने संविधानसभा के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद से बात की। डॉ. राजेंद्र प्रसाद को धक्का लगा। उन्होंने तुरंत संविधान सभा के कानून निष्णात डॉ. राव को बुलवाया और उनके सामने यह बात रखी। डॉ. राव ने कहा कि अब यदि हम ग्राम स्वराज्य की बुनियाद बनाकर यह संविधान सुधारने बैठेंगे तो उसका सारा स्वरूप ही बदल जाएगा। नेहरू और सरदार के कानों तक भी बात पहुँच गई। उन्हें भी लगा कि अब संविधान सुधारने में बहुत वक्त लग जाएगा। इस संबंध में कुछ आवेशपूर्ण चर्चाएँ भी हुईं, परंतु इन सबसे अंत में मात्र इतना ही निष्कर्ष निकला कि संविधान में एक धारा बढ़ी जिसमें राज्यों को यह निर्देश दिया गया कि संविधान के मूल मार्गदर्शक सिद्धांतों को ध्यान में रखकर ग्रामपंचायत को स्वशासन की इकाई माना जाए। राष्ट्रीय क्रांति के केंद्र रूप गांधी जी के इस राजनीतिक विचार को हमारे संविधान में मात्र इतना ही स्थान मिल सका। मैं ऐसा मानता हूँ कि उल्टी दिशा में जाने की यह पहली महत्वपूर्ण शुरुआत थी।[3]''

संविधान में 'ग्राम स्वराज' के विषय को उतना महत्व नहीं दिया जा सका, जितना गांधी जी अपने विचारों में देते थे। श्री गुरुजी के विचारों के आधार पर पं. दीनदयाल उपाध्याय ने 'अखंड मंडलाकार पंचवलयी एकात्मक राज्य' की संकल्पना को देश के सामने रखा। श्री गुरुजी ने अपनी पुस्तक 'विचार दर्शन में लिखा, "हमारे शास्त्रकारों ने सृष्टि का स्वरूप मंडलाकार माना है। इसलिए केंद्र से बाहर की ओर क्रमशः वर्धमान मंडल बनाकर और उसके अनुसार ही प्रत्येक मंडल की अपनी विशेषता बनाए रखते हुए तथा उसका अगले मंडल और इस प्रकार संपूर्ण सृष्टि के साथ संबंध स्थापित कर शासन का विकास होना चाहिए।

- ग्रामों को केंद्र मानकर आसपास के ग्रामों के मंडल बनाए जाएँ। उन मंडलों का विकास करते हुए, जिसके अंदर भौगोलिक या व्यावसायिक संपर्क से निर्मित विशिष्टता के कारण आदान-प्रदान की समान परिभाषा उत्पन्न हुई है, ऐसे बड़े मंडल बनाने चाहिए।
- इस प्रकार के विकास में यदि भाषिक प्रांत बने या एक से अधिक भाषाओं का एक प्रांत बने तो भी कोई आपत्ति नहीं।
- हमारे शासन का स्वरूप पंचायती था और उसकी मूल इकाई ग्राम थी। जन-जन की भावना को व्यक्त करने वाले प्रतिनिधि पंचों को हमने परमेश्वर का ही रूप माना। 'पंच परमेश्वर' की कहावत इसका प्रमाण है।
- आगे भी इसी पद्धति का विकास होना चाहिए। यह नीचे से विकसित होकर ऊपर तक जाए। समान वर्णों अथवा समान उद्योगों के प्रतिनिधि मर्यादित क्षेत्रों में जाएँ और उनकी प्रतिनिधि सभा, उस सभा के आगे बड़ी प्रतिनिधि सभा, इस प्रकार शासन की पूरी व्यवस्था होनी चाहिए। यही मोटा-सा सूत्र है।[4]''

उपरोक्त विचारों के आधार पर पं. दीनदयाल उपाध्याय ने 'एकात्मक शासन' को अपने विभिन्न लेखों एवं भाषणों के माध्यम से प्रतिपादित किया। डॉ. महेशचंद्र शर्मा ने अपनी पुस्तक 'दीनदयाल उपाध्याय: कर्तृत्व एवं विचार' में उनके विचारों के आधार पर एकात्मक शासन के विभिन्न आयामों को चिन्हित किया है, जो इस प्रकार हैं;

"1. भारत का संवैधानिक शासन 'राज्यों का संघ' नहीं वरन् एक देश, एक संस्कृति व एक राष्ट्र अवधारणा वाला 'एकात्मक राज्य' होगा।
2. 'एकात्मक राज्य', इकाइयों का संघ नहीं, वरन् इकाइयाँ उसकी अंगभूत घटक होंगी।
3. एकात्मक राज्य की विभिन्न अंगभूत इकाइयों को संवैधानिक स्वायत्तता व प्रशासनिक सत्ताएं प्राप्त होंगी।
4. पंचायत व जनपदों को संवैधानिक स्वायत्ता होगी, इनकी निर्वाचित जनप्रतिनिधि सभाएं होंगी।
5. केंद्रीय संसद को देशभर के लिए विधान बनाने का अधिकार रहेगा। जनपद व पंचायत प्रतिनिधि सभाओं को क्षेत्रीय उपविधियों के निर्माण तथा संसद को विधान विशेष के लिए अभिस्ताव करने का अधिकार रहेगा।
6. विकासखंड व प्रदेशों को प्रशासनिक सत्ताएँ रहेंगी। प्रदेश केंद्र से तथा विकासखंड जनपद से सत्ता प्राप्त करेंगे।
7. इस प्रकार यह- तीन संवैधानिक तथा दो प्रशासनिक-पंचवलयी व्यवस्था होगी।

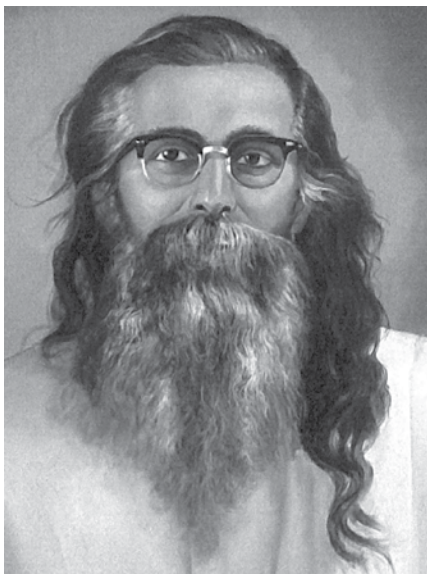
माधव सदाशिव गोलवलकर 'श्रीगुरुजी'

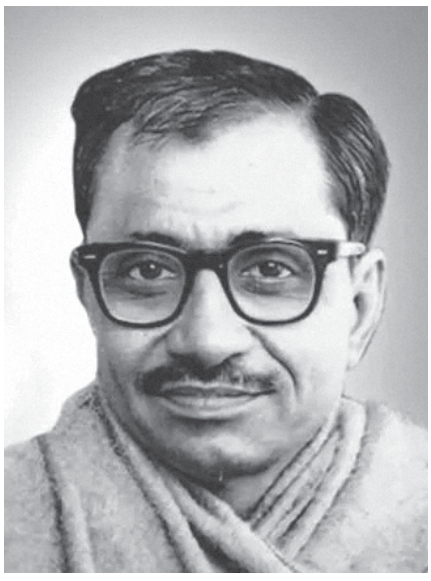
पं. दीनदयाल उपाध्याय

8. शक्ति एवं साधनस्रोतों का इस प्रकार नियमन किया जाएगा कि प्रत्येक आत्मनिर्भर होकर उत्तरदायी स्वायत्तता का उपभोग कर सके।[5]''

श्री गुरुजी एवं पं. दीनदयाल उपाध्याय द्वारा व्याख्यायित 'अखंड मंडलाकार पंचवलयी एकात्मक राज्य' शासन व्यवस्था में ग्रामों को न केवल केंद्र माना गया, बल्कि पंचायती शासन व्यवस्था को भारतीय स्वरूप की अभिव्यक्ति तथा ग्राम को मूल इकाई मानते हुए इनके इर्द-गिर्द अन्य व्यवस्थाओं के विकास की कल्पना की गई। ग्राम पंचायतों को राजनैतिक एवं आर्थिक विकेंद्रीकरण के मूल में रखते हुए स्वशासन, उत्तरदायी स्वायत्तता, आत्मनिर्भरता, स्वदेशी एवं लोकतांत्रिक मूल्यों के अनुरूप शासन व्यवस्था विकसित करने का विचार इस परिकल्पना में सन्निहित रहा। ऐसा नहीं है कि पंचायती राज में आ गई विकृतियाँ उनके नजरों से ओझल थी। श्री गुरुजी ने कहा था, ''आजकल प्राय: पंचायत-राज का उद्घोष सुनाई पड़ता है, परंतु संपूर्ण तंत्र विकृत हो गया है। व्यावसायिक योजना का स्थान जातिवाद व गुटवाद ने ले लिया है। पंचायत में प्राय: कुख्यात गुंडों का चयन हो जाता है। जातिवाद की दुहाई, धन का प्रलोभन, भय तथा शारीरिक आक्रमण निर्णायक तत्व बन गए हैं। व्यावसायिक गुणों की धज्जियाँ उड़ा दी गई हैं। जो भी हो, विकृतियों को ठीक तो करना ही होगा।[6]''

आज भी पंचायती राज इन कुवृत्तियों का दंश झेल रहा है। परंतु यदि हम उस काल के वैचारिक बहसों के संदर्भ में देखें तो 'पूँजीवाद' एवं 'समाजवाद' से प्रेरित व्यवस्थाओं में अतिकेंद्रीकरण के कारण लोकतांत्रिक मूल्यों पर कई प्रकार के आघात हो रहे थे। कई देशों में तानाशाही प्रवृत्ति सत्ता पर हावी रही और उसकी परिणति भारत में भी हम 'आपातकाल' के रूप में देख सकते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि राजनीतिक एवं आर्थिक केंद्रीकरण से व्यक्ति की स्वतंत्रता बाधित होती है और मुट्ठी भर लोगों का एकाधिकार स्थापित हो जाता है। स्वतंत्रता के पश्चात भारत ने लोकतंत्र को अपनाया जो प्राचीनकाल से ही भारतीय जनमानस में रचा, बसा था- चाहे ऋग्वेद काल की सभा, समिति या विधाता की व्यवस्था हो या बाद के काल में गणसंघ हों, हर व्यवस्था में लोकतांत्रिक मूल्यों के महत्व को देखा जा सकता है। यहाँ तक कि राजतंत्रीय व्यवस्था में भी 'धर्म' की प्रमुखता के कारण लोकतांत्रिक मूल्यों के महत्व से इंकार नहीं किया जा सकता। साथ ही, देशभर के लाखों गाँवों में पंचायतों की जीवंत व्यवस्था के कारण लोकतांत्रिक आधार पर राजनैतिक एवं आर्थिक स्वशासन, स्वायत्तता, आत्मनिर्भरता एवं प्रतिनिधित्वात्मक लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था बहुत ही सुदृढ़ रूप से स्थापित थी। इन पंचायतों के पास न केवल शासन-प्रशासन से संबंधित अधिकार थे बल्कि न्यायिक एवं आर्थिक क्षेत्र में भी इनकी प्रमुख भूमिका थी। ये सांस्कृतिक-सामाजिक-आध्यात्मिक मूल्यों के संरक्षण एवं संवर्धन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। हजारों वर्षों से पंचायत व्यवस्था के अंतर्गत भारतीयों ने ऐसी स्वशासन की व्यवस्था विकसित की, जो कई आक्रांताओं के आक्रमण के सामने भी नहीं डगमगाए एवं देश की सांस्कृतिक एकता के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक व्यवस्था को स्थानीय स्तर पर, मूल इकाई के रूप में अक्षुण्ण रखा। यही कारण है कि श्रीगुरुजी एवं पं. दीनदयाल उपाध्याय ने औपनिवेशिक शासन के दौरान पंचायतों में कुछ कुवृत्तियों के प्रवेश के बाद भी इनके परिष्कार के साथ इन्हें 'एकात्मक शासन' व्यवस्था के मूल में रखा।

इसमें कोई दो मत नहीं कि प्राचीनकाल से ही पंचायतों ने ग्रामीण जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जिस बात को श्रीगुरुजी एवं पं. दीनदयाल उपाध्याय शुरू से ही कहते रहे, उसे बाद के दिनों में भी नीति निर्माताओं ने स्वीकार किया और पंचायती राज व्यवस्था के संवैधानिक आधार को दृढ़ करने के लिए संवैधानिक संशोधन भी किए गए

इसमें कोई दो मत नहीं कि प्राचीनकाल से ही पंचायतों ने ग्रामीण जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जिस बात को श्रीगुरुजी एवं पं. दीनदयाल उपाध्याय शुरू से ही कहते रहे, उसे बाद के दिनों में भी नीति निर्माताओं ने स्वीकार किया और पंचायती राज व्यवस्था के संवैधानिक आधार को दृढ़ करने के लिए संवैधानिक संशोधन भी किए गए। आज देश में पंचायती राज का एक व्यापक स्वरूप दिखाई दे रहा है। परंतु कुछ कुवृत्तियां जो कि लोकतांत्रिक निर्वाचन पद्धति में दिखाई देती हैं, वह पंचायतों में भी दिख रही हैं। श्री गुरुजी ने इस ओर शुरू में ही इशारा किया था और पंचायत के लिए सर्वसम्मत अथवा निर्विरोध चुनाव पर बल दिया था। आज इसका एक सफल प्रयोग 'समरस पंचायत' के रूप में गुजरात में देखा जा सकता है जो प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने अपने मुख्यमंत्रित्व काल में वहां शुरू किया था। किसी भी व्यवस्था के उत्तरोत्तर प्रगति के लिए सकारात्मक परिवर्तन आवश्यक होते हैं और पंचायतों में और भी कई सुधारों की आवश्यकता महसूस की जाती है। इस दृष्टि से श्री गुरुजी एवं पं. दीनदयाल उपाध्याय के 'एकात्मक शासन' व्यवस्था के मूल विचार; जिनमें राजनैतिक एवं आर्थिक विकेंद्रीकरण के साथ-साथ स्थानीय स्वशासन, उत्तरदायी स्वायत्तता, स्वदेशी एवं आत्मनिर्भरता प्रमुख है; को ध्यान में रखना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि इन सिद्धांतों को अपनाया जाए तब लोकतांत्रिक मूल्यों के अनुरूप पंचायती राज की व्यवस्था और भी अधिक सुदृढ़ एवं समृद्ध होगी।

संदर्भ

1. गोलवलकर, मा.स.; विचार नवनीत, ज्ञान गंगा प्रकाशन, जयपुर, राजस्थान; पृ. 29
2. वही, पृ. 29-30
3. शर्मा, डॉ. महेश चन्द्र; दीनदयाल उपाध्याय: कर्तृत्व एवं विचार, वसुधा पब्लिकेशंस प्रा. लि., नई दिल्ली, 1994, पृ. 214-215 से उद्धृत
4. वही; पृ. 212-213
5. वही; पृ. 211-212
6. गोलवलकर, मा.स.; विचार नवनीत, ज्ञान गंगा प्रकाशन, जयपुर, राजस्थान; पृ. 30

आनंद कुमार

लोहिया का 'चौखंभा राज' सहभागी राष्ट्र निर्माण का समाजवादी रास्ता

राज्य-व्यवस्था और समाज के संबंधों के देशीकरण की प्रमुख अभिकल्पनाओं में से एक है डॉ. राम मनोहर लोहिया की चौखंभा राज की अवधारणा। 'चौखंभा राज' का एक वस्तुनिष्ठ विश्लेषण

भारत के लिए आजादी के 75 साल का उत्सव आत्मविश्वास के संवर्धन का अपूर्व अवसर है। यह सभी भारतीय स्त्री-पुरुषों में 1857 से 1947 के बीच के समस्त ज्ञात-अज्ञात स्वतंत्रता-सेनानियों की वीरता और त्याग के प्रति श्रद्धाभाव पैदा करता है। देशवासियों में अपनी विरासत के प्रति गर्व की भावना जागती है। इसके साथ ही यह उत्सव-वर्ष हमें अब तक की स्वराज-यात्रा की प्रगति की समीक्षा की आवश्यकता के प्रति सजग करता है।

एक नव-स्वाधीन राष्ट्र के रूप में हमारी क्या दशा और दिशा है? अगर सब कुछ ठीक है तो हमें यथावत गतिशील बने रहना है। लेकिन यदि हम जनसाधारण के जीवनस्तर में जरूरी बेहतरी में बाकी लोकतांत्रिक दुनिया से पिछड़ रहे हैं तो समीक्षा करके दोष-सुधार का कर्तव्य पूरा करना चाहिए। अगर राष्ट्रीय आजादी के लाभ में हिस्सेदारी की दृष्टि से देश के किसी हिस्से में असंतोष है अथवा जनसंख्या के कुछ वर्गों-समुदायों-समूहों में आक्रोश है तो आत्मसंशोधन की जरूरत को स्वीकारना चाहिए। लेकिन यदि दिशा ठीक है तो गति बढ़ानी चाहिए। आज राष्ट्रनिर्माण की दिशा को लेकर कुछ बड़ी राजनीतिक, आर्थिक या सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याएँ सामने हैं तो दिशा परिवर्तन में संकोच नहीं करना चाहिए। वैकल्पिक मार्गों के बारे में सोचना चाहिए। अन्यथा अतीत की भूलों से वर्तमान के सवालों को ढंकना भावी पीढ़ियों के प्रति गैर-जिम्मेदारी मानी जाएगी। यही राष्ट्रीयता का तकाजा है। यह युग-धर्म का निर्देश है।

यह निबंध भारतीय राज्य-व्यवस्था और समाज के संबंधों के देशीकरण (विऔपनिवेशीकरण) और लोकतंत्रीकरण के विमर्श के संदर्भ में डॉ। राममनोहर लोहिया द्वारा 'चौखंभा राज' के नाम से प्रवर्तित सहभागी राष्ट्रनिर्माण की एक समाजवादी योजना के बारे में है। समाजवादियों ने इस पाँच-सूत्रीय योजना को नवोदित भारतीय लोकतंत्र को गाँवों और कस्बों तक प्रभावशाली विकेंद्रित शासनपद्धति के रूप में स्थापित करने के लिए स्वराज के पहले दशक में प्रस्तुत किया था। सहभागी राष्ट्रनिर्माण का यह एक वैकल्पिक लोकतांत्रिक मार्ग कई स्तरों पर जनप्रतिनिधियों की हिस्सेदारी को बुनियादी जरूरत बनाता है।

डॉ. लोहिया ने 'चौखंभा राज' को भारत के लोकतंत्रीकरण का जनपथ बताते हुए अब्राहम लिंकन की मशहूर परिभाषा को नया विस्तार दिया। लिंकन के अनुसार लोकतंत्र किसी देश की जनता की, जनता के द्वारा, जनता के लिए सत्ता-संचालन की पद्धति है। लेकिन यह परिभाषा 'जनता' की अवधारणा में निहित अस्पष्टताओं की उपेक्षा करती है। लोहिया ने इसको स्पष्ट और सगुण बनाते हुए बताया कि लोकतंत्र वस्तुतः एक तरफ समुदाय की, समुदाय द्वारा, समुदाय के लिए और दूसरी तरफ समस्त मानवता की, मानवता के द्वारा, मानवता के लिए निर्मित शासन पद्धति है। इसकी नींव में वयस्क मताधिकार से चुनी हुई ग्राम-पंचायत की सरकार, बीच में जिला पंचायत, राज्य-सरकार, और सबसे ऊपर केंद्रीय सरकार की चार स्तंभों पर आधारित राज्यसत्ता बनानी चाहिए। दुनिया में लोकतंत्र के पर्याप्त विकास के आधार पर अंततः राष्ट्रों के समूह के शिखर पर विश्व-सरकार की व्यवस्था होनी चाहिए। इसी संरचना से हम विश्व के 2/3 हिस्से (नव-स्वाधीन राष्ट्र समूह) को भूख और 1/3 भाग (पूर्व साम्राज्यवादी देश समूह) को युद्ध की दुहरी

चुनौती से स्थायी मुक्ति दिला सकेंगे।[1] चौखंभा राज की योजना मार्क्स और गांधी दोनों द्वारा मनुष्यों के एक आदर्श समाज में राज्यसत्ता की अप्रासंगिकता की कल्पना को सहभागी राज्यसत्ता की रचना के रूप में व्यावहारिकता का आधार देती है। वस्तुत: राज्यसत्ता के विमर्श और लोकतंत्र के रूप को भारतीय धरातल प्रदान करने में लोहिया का यह योगदान उनको लोकतंत्र के सिद्धांतकारों और शिल्पियों में अब्राहम लिंकन[2] और हेराल्ड लास्की[3] के समकक्ष स्थापित करता है।

अब लोहिया के निधन के पाँच दशक बाद राज्यसत्ता की समाज से बढ़ती दूरी के कारण सहभागी राष्ट्रनिर्माण की चौखंभा राज योजना की फिर से याद आने लगी है। इधर नेताशाही-थैलीशाही-अफसरशाही के गठबंधन के खिलाफ देशभर में अनेक रूपों में जनमत प्रकट हुआ है। असंतुष्ट मतदाताओं ने भ्रष्टाचार के खिलाफ वोट की ताकत से सरकारें बदली हैं। स्वराज को सुराज में बदलने के आंदोलनों की लहरें चल रही हैं। राजनीति को अपराधीकरण से बचाने के लिए चौतरफा सरोकार बढ़ रहे हैं। संसदीय प्रणाली में धनबल, बाहुबल और मीडिया प्रचारबल के त्रिदोष से समूचा लोकतंत्र प्रदूषित हो गया है। इस संदर्भ में एक बेहतर विकल्प के रूप में डॉ. लोहिया द्वारा प्रतिपादित चौखंभा राज के सुझाव की लोकतांत्रिक राष्ट्रनिर्माण के लिए नई प्रासंगिकता बन रही है।[4]

इस संदर्भ में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि लोहिया के चौखंभा राज की योजना को गांधी के सपनों के भारत और जयप्रकाश के भारतीय राज्यव्यवस्था के पुनर्निर्माण के प्रस्ताव से जोड़कर देखने से ही सहभागी-राष्ट्रनिर्माण में निहित संभावनाओं की पूरी तस्वीर और उसकी महत्ता सामने आएगी।[5] यह आलेख निम्नलिखित सात भागों में संगठित किया गया है:

1.भूमिका, 2.राष्ट्रनिर्माण के दस अंतर्विरोध, 3. लोकतंत्र के देशज रूप और आकार की तलाश, 4. स्वराज का गांधी -लोहिया-जे. पी. विमर्श, 5. संविधान और सहभागिता, 6. चौखंभा राज अर्थात् सहभागी राष्ट्रनिर्माण, 7. कुछ निष्कर्ष।

राष्ट्रनिर्माण के दस अंतर्विरोध

वैसे भी विदेशी राज से मुक्ति संघर्ष में अगस्त-क्रांति (1942-1946) के बाद 1947 में मिली आधी-अधूरी विजय के बाद लोकतांत्रिक राष्ट्रनिर्माण का सही रास्ता चुनना भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की सबसे बड़ी चुनौती थी। क्योंकि स्वाधीनोत्तर भारत के नवनिर्माण के संदर्भ में दस बड़े अंतर्विरोध स्पष्ट थे : 1. गाँव बनाम शहर, 2. खेती बनाम उद्योग, 3. प्रभुजातियाँ बनाम वंचित जातियाँ, 4. सांस्कृतिक समुदाय बनाम समग्र राष्ट्र, 5. शिक्षित बनाम निरक्षर, 6. स्वदेशी बनाम पश्चिमीकरण, 7. सांप्रदायिकता बनाम राष्ट्रीयता, 8. परंपरा बनाम परिवर्तन, 9. केंद्रीकरण बनाम विकेंद्रीकरण, और 10. बहुदलीय संसदीय राज्यव्यवस्था बनाम सहभागी लोकतंत्र।

पिछले ७५ बरसों में, इनमें से कुछ सुलझ गए - जैसे वंचित जातियों के लिए न्यायपूर्ण सहयोग या भाषाई आधार पर राज्यों का पुनर्गठन। कई अंतर्विरोधों का समाधान किया जा रहा है - जैसे गाँवों के जीवनस्तर में सुधार; शिक्षा का संवैधानिक अधिकार; निरक्षरता उन्मूलन; स्वदेशी और पश्चिमीकरण के बीच राष्ट्रहित के अनुकूल संवाद; परंपराओं और परिवर्तन के बीच आधुनिकीकरण के जरिये स्वस्थ संतुलन। लेकिन कुछ अंतर्विरोध अभी तक अनुत्तरित हैं - जैसे सर्वधर्म समभाव का विस्तार; सहभागी लोकतंत्र की प्रगति; केंद्रीकरण बनाम विकेंद्रीकरण, आदि।

इस चर्चा में दो उदाहरण सामने रखना इस निबंध की प्रासंगिकता के लिए उपयोगी होगा। क्योंकि दोनों ही सत्ता और समाज के संदर्भ में क्रमश: 1) स्वाधीनोत्तर समाज में राज्य और नागरिक संबंध, और 2) अधिकारी -तंत्र और विकेंद्रीकरण से संबंधित हैं। भारतीय लोकतंत्र निर्माण के आरंभिक दशक में जनसाधारण की भूमिका के अनुभवों के आधार पर जयप्रकाश नारायण (जे. पी.) ने यह महत्वपूर्ण प्रश्न रखा था कि 'लोकतंत्र के सामने शायद सबसे कठिन प्रश्न यह है कि जब स्वतंत्रता रहती है तो उसका दुरुपयोग होता है और राज्य के हस्तक्षेप की आवश्यकता पड़ती है, और जब राज्य का हस्तक्षेप होता है तो स्वतंत्रता की कटौती होती है। तब कैसे स्वतंत्रता की रक्षा की जाए और उसका दुरुपयोग भी रोका जाए?'।

इसके उत्तर में जे. पी. ने इंगित किया कि इस दुविधा का कोई राजनैतिक समाधान नहीं है; केवल नैतिक उपाय है। क्योंकि स्वतंत्रता का पूरक पहलू जिम्मेदारी या 'दायित्व' होता है। यदि व्यक्ति सामाजिक उत्तरदायित्व उठाने के लिए तैयार नहीं हैं और अपनी स्वतंत्रता के उपयोग से अपना स्वार्थवर्धन करते हैं; दूसरों के हितों की उपेक्षा करते हैं या हानि पहुँचाते हैं तो किसी-न-किसी प्रकार का राज्यवाद अनिवार्य हो जाएगा।

यहीं गांधी जी के न्यासिता (ट्रस्टीशिप) के सिद्धांत की उपयोगिता और बुद्धिमत्ता प्रकट होती है। इसीलिए राज्यवाद और सर्वसत्तावाद का एकमात्र उत्तर न्यासिता (ट्रस्टीशिप) है। परंतु अपनी आवश्यकताओं को स्वेच्छापूर्वक सीमित किए बिना न्यासिता को आचरण में उतारा नहीं जा सकता। दूसरे शब्दों में, भौतिकवाद या भौतिक सुख-सुविधाओं की अमर्यादित छूट की अस्वीकृति लोकतंत्र की रचना और रक्षा के लिए अति आवश्यक है।

लोहिया के निधन के पाँच दशक बाद राज्यसत्ता की समाज से बढ़ती दूरी के कारण सहभागी राष्ट्रनिर्माण की चौखंभा राज योजना की फिर से याद आने लगी है। इधर नेताशाही-थैलीशाही-अफसरशाही के गठबंधन के खिलाफ देशभर में अनेक रूपों में जनमत प्रकट हुआ है। असंतुष्ट मतदाताओं ने भ्रष्टाचार के खिलाफ वोट की ताकत से सरकारें बदली हैं। स्वराज को सुराज में बदलने के आंदोलनों की लहरें चल रही हैं। राजनीति को अपराधीकरण से बचाने के लिए चौतरफा सरोकार बढ़ रहे हैं

भारत जैसे साम्राज्यवादी शोषण से जर्जर हो चुके राष्ट्र में सत्ताधारियों और शक्तिवानों को 'स्वतंत्रता' के नाम पर भ्रष्टाचार और भोग-विलास की छूट नहीं दी जा सकती। अन्यथा देश का जन- तक साधारण स्वराज का लाभ कभी नहीं पहुँच सकेगा।[6]

अब विकेंद्रीकरण का संदर्भ देखें। इन 75 वर्षों के स्वराज में ब्रिटिश राज के दो सौ सालों में अंग्रेजों की सुविधा के लिए बनाई गई केंद्रीकृत राज्यव्यवस्था में बुनियादी सुधार हो सका है या देश अभी भी अफसरशाही के आगे नतमस्तक होने को अभिशप्त है? हमारा स्वराज अंग्रेजों के 'कलक्टर राज' से कितना फासला और 'अपने देश में अपना राज' के सपने से कितनी निकटता बना सका है? क्योंकि यह भारत जैसे लम्बी विदेशी गुलामी से निकले विराट राष्ट्र के लिए लोकतंत्र की प्रगति की मुख्य कसौटी है।

समाजवादियों ने तो ब्रिटिश राज की बनाई 'दो खंभा सरकार' (केंद्र और राज्य की सरकारें) को उपनिवेशवाद का अभिशाप मानते हुए 'चौखंभा सरकार' (केंद्र, राज्य, जिला और गाँव सरकार का परस्पर पूरक ढाँचा) की स्थापना का सुझाव दिया। इसी प्रस्ताव को मार्क्सवादी विचारक ई. एम. एस. नंबूदरीपाद ने 'चार स्तंभों वाला लोकतंत्र' (फोर पिलर डेमोक्रेसी) की पहचान दी है। स्वराज के बाद के शुरुआती सत्रह बरसों तक प्रधानमंत्री रहे जवाहरलाल नेहरू द्वारा बलवंतराय कमेटी (1956) की संस्तुतियों के आधार पर 1959 से 1964 के बीच एस. के. डे के सहयोग से संवर्धित 'पंचायती राज और सामुदायिक विकास' का अभियान इसी के समानांतर माना जा सकता है। लेकिन नेहरू के निधन के बाद उनकी उत्तराधिकारी श्रीमती इंदिरा गांधी ने 1966 में पंचायती राज और सामुदायिक विकास मंत्रालय को ही समाप्त कर दिया और 'प्रधानमंत्री कार्यालय' के रूप में सत्ता के केंद्रीकरण का नया प्रतिमान बनाया। 1975-'77 में इमरजेंसी राज के रूप में सत्ता के केंद्रीकरण के भयानक रूप को जनता ने जाना और 1977 के चुनावों में अधिनायकवाद के रास्ते पर आगे बढ़ रही कांग्रेस और प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी को सत्ताच्युत करके दंडित किया।

दूसरी तरफ, भारतीय राज्यव्यवस्था को वस्तुत: संघीय बनाने के लिए पश्चिमी बंगाल की वामपंथी मोर्चा सरकार, आंध्र प्रदेश की तेलुगुदेशम सरकार और कर्नाटक की जनता पार्टी सरकार ने सत्ता की प्रक्रिया में ग्राम पंचायतों को हिस्सेदार बनाने की जरूरत को फिर से प्राथमिकता दी। राजस्थान में भारतीय जनता पार्टी की सरकार ने अंत्योदय और सूचना के अधिकार को स्वीकार कर स्थानीय स्तर पर लोकशाही द्वारा नौकरशाही को जवाबदेह बनाने की संभावना को अंकुरित किया। 1984 में राजीव गांधी के प्रधानमंत्री बनने पर शासन की घटती साख के समाधान के लिए एक बार फिर विकेंद्रीकरण को प्रोत्साहन दिया गया। इसके लिए 1992 में भारतीय संविधान में 73वाँ और 74वाँ संशोधन करके जिला परिषद् और नगरपालिकाओं को नई महत्ता प्रदान की गई। इसके एक दशक बाद 2005 में सूचना अधिकार कानून और 2006 में वनसंपदा अधिकार कानून बनाकर शासनतंत्र में जन-हिस्सेदारी की गुंजाइश को बढ़ाया गया। 2005 से लागू महात्मा गांधी रोजगार गारंटी कानून के जरिये निर्धन ग्रामीण स्त्री -पुरुषों को 'काम के अधिकार' की गारंटी ने देश को आर्थिक लोकतंत्र की दिशा में कई कदम आगे बढ़ाया है।

फिर भी सत्ता के विकेंद्रीकरण के बारे में शोधकर्ताओं की राय है कि हमारा देश अपने संविधान में स्वराज की प्रतिबद्धता के बावजूद 'कलक्टर राज' में ही फँसा हुआ है।[7] डॉ. लोहिया ने इसे नेताशाही, थैलीशाही और अफसरशाही का त्रिगुट

कहा था। इसी सच के विरुद्ध भारत जन आंदोलन के संयोजन में मध्य भारत के आदिवासियों ने 'हमारे गाँव में हमारा राज' का अभियान चलाया। आजादी बचाओ आंदोलन में भी इस विवशता को दूर करने की गूँज रही है। मजदूर किसान संघर्ष समिति (राजस्थान), नर्मदा बचाओ आंदोलन (मध्य प्रदेश/ महाराष्ट्र) और समाज परिवर्तन समुदय (कर्नाटक) स्वराज के इसी अधूरेपन को अपने अभियानों का मुद्दा बनाए हुए हैं।

लोकतंत्र के देशज रूप और आकार की तलाश

इन सभी अंतर्विरोधों से मुक्ति के मार्ग को ब्रिटिश राज से संघर्ष के दौरान 'स्वराज' कहा गया था। इसीलिए भारत के राष्ट्रीय आंदोलन ने 1930 से 'पूर्ण स्वराज' को ही अपना सर्वोच्च लक्ष्य घोषित बनाया। संविधान सभा ने इसे न्याय और समता आधारित लोकतंत्र के आदर्श को राष्ट्रीय लक्ष्य स्वीकार। आजादी की लड़ाई में पूर्ण समर्पण के साथ योगदान करने के बाद समाजवादियों ने स्वराज को 'गरीब का राज' और 'किसान-मजदूर राज' के रूप में साकार करने के लिए कांग्रेस से अलग होकर लोकतांत्रिक राष्ट्रनिर्माण का आंदोलन चलाया। इसमें गाँव और गरीब के योगदान की प्राथमिकता का दबाव था। समाजवादी देश में बिना खेती और उद्योगों में उत्पादन के आधुनिकीकरण के भोग के आधुनिकीकरण की ओर मुड़ना खतरनाक मानते थे।

राष्ट्र में लोकतांत्रिक नव-निर्माण का उत्साह पैदा करने के लिए सत्ता में सभी प्रदेशों को न्यायपूर्ण हिस्सेदारी के साथ ही राष्ट्रीय एकतामूलक स्थानीय सामुदायिक स्वशासन अर्थात गाँव और जिले में नौकरशाही की तुलना में जनप्रतिनिधियों को महत्वपूर्ण बनाने की जरूरत मानी गई। पूंजी और श्रम की दुहरी समस्या का समाधान राष्ट्रनिर्माण में सभी स्त्री-पुरुषों की आत्मप्रेरित हिस्सेदारी में ('एक घंटा देश को!') बताया गया। आर्थिक और राजनीतिक सुधार की एकजुटता के जरिये बुनियादी जरूरतों को नियोजित तरीके से पूरा करने को स्वराज की कसौटी बनाया गया।[8]

यह याद रखना जरुरी है कि भारत में 1765 में बक्सर के युद्ध में बंगाल के नवाब की पराजय के बाद ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल का आर्थिक नियंत्रण हासिल हुआ था। तबसे 1857-'60 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बीच भारत में इस ब्रिटिश कंपनी के राजनीतिक प्रभाव क्षेत्र का लगातार विस्तार हुआ। इसमें उसने एक तरफ देशी रजवाड़ों को अपने अधीन किया और दूसरी तरफ यूरोप के अन्य साम्राज्यवादी देशों को पराजित किया। इसमें 1799 में मैसूर के सुलतान टीपू सुलतान की ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों हार का विशेष महत्व माना जाता है।

समकालीन दुनिया के इतिहास में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी का भारत पर शासन अकाल, भ्रष्टाचार[9] और आर्थिक दोहन[10] के लिए याद किया जाता है। हम यहाँ सिर्फ अकालों की सूची प्रस्तुत कर रहे है। विशेषज्ञों के अनुसार 1769 और 1861 के बीच ईस्ट इंडिया कंपनी शासित भारत में पांच भयानक अकाल पड़े और हर अकाल में लाखों स्त्री-पुरुष, बच्चे और मवेशी मृत्यु के शिकार हुए - 1769/'70 बंगाल में (20 लाख की मृत्यु); 1783-'84 में उत्तर भारत के प्रदेशों में (1 करोड़ 10 लाख व्यक्तियों की मृत्यु); 1791-'92 में मद्रास प्रेसिडेंसी में (1 करोड लोगों की मौत); 1837-'38 में आगरा-राजपुताना-दिल्ली क्षेत्र में (8 लाख लोगों की मृत्यु); 1860-'61 आगरा-दिल्ली-हिसार में (20 लाख लोगों की मृत्यु)। 1860 से भारत की लगाम ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया ईस्ट इंडिया कंपनी से अपने हाथों में ले ली। लेकिन ब्रिटिश ताज की हुकूमत के आठ दशकों में भी सात भयानक अकाल पड़े - 1865-'67 में ओडिशा-बिहार और मद्रास में; 1868-'70 में राजपुताना में; 1883-'84 में बिहार में; 1876-'78 में बम्बई और मद्रास प्रेसिडेंसी के इलाकों में; 1896-'97 में पूरे ब्रिटिश भारत में; 1899-1900 में बंबई और पंजाब में; और 1943-'44 में बंगाल प्रेसीडेंसी में। हर अकाल में लाखों निर्दोष लोगों की मृत्यु हुई।

ब्रिटिश राज के दौरान भारत की परिस्थिति के बारे में तीन विशेष बातों को ध्यान में रखना चाहिए : एक, भारत की दो सदियों की गुलामी में ब्रिटेन की संसद ने साम्राज्यवाद के दरोगा की शर्मनाक भूमिका अपनाई। 1215 में 'मैग्ना कार्टा' और 1689 में 'बिल ऑफ राइट्स' स्वीकारा गया। 1707 में ब्रिटिश संसद स्थापित हुई और 1918 में 'जन-प्रतिनिधित्व कानून' पारित किया गया। लेकिन सात शताब्दियों के दौरान उत्पन्न लोकतंत्रीकरण की लहरों से भारत में ब्रिटिश राज के चरित्र में कोई सुधार नहीं आया।

दूसरे, 1765 से 1947 के बीच के ब्रिटिश साम्राज्य की रचना क) राजनीतिक सत्ता के केंद्रीकरण, ख) सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन के विखंडन, ग) आर्थिक दोहन, और घ) जन-साधारण को भयग्रस्त और शक्तिहीन बनाने के आधार पर की गई थी। इसलिए भारत में स्वराज का अर्थ देश की व्यवस्था को कम से कम इन चारों दोषों से मुक्ति होना चाहिए।

तीसरे, ब्रिटिश राज ने 1835 से उपनिवेशवादी भूस्वामित्व नीति, शिक्षानीति और भाषानीति अपना कर ब्रिटिश वर्चस्वता के बिचौलिए की भूमिका निभाने के लिए एक ऐसा प्रशिक्षित समूह तैयार किया जो

ब्रिटिश राज के दौरान भारत की परिस्थिति के बारे में तीन विशेष बातों को ध्यान में रखना चाहिए एक, भारत की दो सदियों की गुलामी में ब्रिटेन की संसद ने साम्राज्यवाद के दरोगा की शर्मनाक भूमिका अपनाई। 1215 में 'मैग्ना कार्टा' और 1689 में 'बिल ऑफ राइट्स' स्वीकारा गया। 1707 में ब्रिटिश संसद स्थापित हुई और 1918 में 'जन-प्रतिनिधित्व कानून' पारित किया गया। लेकिन सात शताब्दियों के दौरान उत्पन्न लोकतंत्रीकरण की लहरों से भारत में ब्रिटिश राज के चरित्र में कोई सुधार नहीं आया

पूरी तरह से ब्रिटिश राज पर आश्रित था और भारत के 'पश्चिमीकरण' का समर्थक था। विदेशी राज के दौरान गाँव पर शहर का वर्चस्व था और गाँव-शहर दोनों पर ब्रिटिश राज के देशी समर्थकों (नवाबों, राजाओं, जमींदारों, सरकारी कर्मचारियों, ब्रिटिश सेना में शामिल व्यक्तियों, ब्रिटिश कंपनियों के एजेंटों, वकीलों, आदि) का बोलबाला था। खेती की कमाई से शहरो में एक विलासी वर्ग पनप चुका था। देशी कुटीर-उद्योगो के मुकाबले विदेशी कंपनियों को प्राथमिकता दी गई । पश्चिम से आयातित वस्तुओं के धंधे में जादा लाभ था।

प्रभुजातियों का दबदबा और वंचित जातियों का बहिष्करण था। पश्चिमी शिक्षा के डिग्रीधारी व्यक्तियों के आगे निरक्षरों की कोई गिनती नहीं थी। पश्चिमीकरण के मुकाबले स्वदेशी की प्रक्रियाएं शक्तिहीन थी। जातिवाद और सांप्रदायिकता की प्रवृत्ति ब्रिटिश राज की 'बांटो और राज करो' की नीति से प्रोत्साहित थी। 1888 में लार्ड रिपन के प्रस्ताव से लेकर 1935 के 'गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट' के जरिये स्वशासन के अवसरों के विस्तार की अनेकों कागजी कार्यवाहियों के बावजूद ब्रिटिश राज की आत्मा वायसराय और ब्रिटिश महारानी के हाथों में सत्ता के निर्बाध केंद्रीकरण में बसती थी। इसलिए बिना राजसत्ता के विकेंद्रीकरण के जरिये सहभागी लोकतंत्र की रचना-यात्रा के देश पर इस वर्ग के वर्चस्व का अंत असंभव था।

भारतीय समाज में स्त्री, अस्पृश्यता, धार्मिक अस्मिता, सांस्कृतिक विरासत और आत्मगौरव के संदर्भ में परंपरा और परिवर्तन को लेकर उन्नीसवीं शताब्दी से समाज सुधारकों द्वारा प्रोत्साहित आत्ममंथन सबसे बड़ा आतंरिक मोर्चा था। लेकिन विदेशी शासन ने हमारी प्रतिभा को कुंठित किया और हम आत्मविकास की प्रक्रिया में बाकी दुनिया से पिछड़ गए। विदेशी राज के परिणामस्वरूप भारत पावर लूम (1785) और भाप इंजन (1789) से जुडी औद्योगिक क्रांति के दौरान हाशिये पर रहा। इसका उद्योगीकरण प्रथम विश्वयुद्ध के समाप्त होनेतक अवरुद्ध रखा गया। भारत ब्रिटेन का उपनिवेश होने के कारण फ्रेंच राज्यक्रांति (1789) से शुरू लोकतांत्रिक सुधारों का अवसर गँवा चुका था। इसीलिए दुनिया में ज्ञान-विज्ञान के बढ़ते आलोक के बावजूद भारत विदेशी राज के अँधेरे में फंसा रहा।

1947 में अंग्रेजों के भारत छोड़ते समय देश के अधिकाँश स्त्री-पुरुष निरक्षरता और निर्धनता के दो पाटों के बीच दबे हुए थे। कुल 35 करोड़ की जनसंख्या में से 80% स्त्री-पुरुष गाँवों में और 6 करोड़ शहरों में रहते थे और एक औसत भारतीय की अनुमानित जीवन अवधि मात्र 32 बरस थी। धार्मिक पहचान की दृष्टि से यह एक बहुधर्मी समाज जरुर था क्योंकि देश की कुल जनसंख्या में 84% हिंदू, 9.8 प्रतिशत मुस्लिम, 2.3% ईसाई, 1.9% सिख, 0.7% बौद्ध, 0.46% जैन और 0.43 प्रतिशत प्रकृतिपूजक और अन्य आस्था-समूहों से जुड़े स्त्री-पुरुष थे। फिर भी मुस्लिम लीग द्वारा मुसलामानों कोएक अलग राष्ट्र बताते हुए पकिस्तान बनवाने में सफल होना पूरे देश में सांप्रदायिक अविश्वास और हिंसा का कारण बन चुका था।

दूसरी तरफ, दो सौ बरस के ब्रिटिश राज के बाद भी पूरे देश के 77% पुरुष और 89% स्त्रियाँ निरक्षरता से पीड़ित थे। खेती योग्य कुल जमीन (268 करोड़ एकड़) के मात्र 33% में खेती हो रही थी और देश में गंभीर अन्न-संकट था। कश्मीर में पाकिस्तान की मदद से हमला हो गया था। कई बड़े रजवाड़े और नवाब भारत संघ में विलय की बजाय साम्राज्यवादी ब्रिटेन की मदद से अलग अस्तित्व बनाए रखने के जुगाड़ में थे। ऐसे माहौल और परिवेश में अधकतम लोगों की अधिकतम साझेदारी से लोकतान्त्रिक राष्ट्रनिर्माण के अलावा कोई और उपाय देशहितकारी नहीं रह गया था।

स्वराज का गांधी-लोहिया

स्वराज के प्रकाश को हर गाँव और प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचाने की चुनौती के कई समाधान देश के नीति-निर्माताओं के सामने थे। इस संदर्भ में 'आजादी' और 'रोटी' के बीच प्राथमिकता की समस्या सबसे ऊपर थी। नीतिनिर्माण, नियोजन और प्रबंधन में केंद्रीकरण बनाम विकेंद्रीकरण का सवाल भी अत्यंत जटिल था। यह सबको मालूम था कि 'पहले आजादी' की पूँजीवादी विधि को यूरोप के उपनिवेशवादी देशों ने अपनाया था

-जे.पी. विमर्श

स्वराज के प्रकाश को हर गाँव और प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचाने की चुनौती के कई समाधान देश के नीति-निर्माताओं के सामने थे। इस संदर्भ में 'आजादी' (स्वतंत्रता के विविध अधिकार) और 'रोटी' (भूख और बेकारी) के बीच प्राथमिकता की समस्या सबसे ऊपर थी। नीतिनिर्माण, नियोजन और प्रबंधन में केंद्रीकरण बनाम विकेंद्रीकरण का सवाल भी अत्यंत जटिल था। यह सबको मालूम था कि 'पहले आजादी' की पूँजीवादी विधि को यूरोप के उपनिवेशवादी देशों ने अपनाया था। अपने नागरिकों के हित संवर्धन के लिए दूसरे देशों को उपनिवेश बनाने में इन देशों के नीति निर्माता श्रेष्ठ जनों को कोई दुविधा नहीं हुई। उनको 'राष्ट्रवाद' की आड़ थी। रूसी और चीनी क्रांतियों के बाद 'लोकतांत्रिक केंद्रीकरण' के कम्युनिस्ट रास्ते के नाम पर अधिनायकवाद का काहिरा (मिस्र) से जकार्ता (इंडोनेशिया) तक तीसरी दुनिया में प्रसार हुआ था। उनको रूस और चीन की तात्कालिक सफलताओं से प्रेरणा मिली थी। शीतयुद्ध के तकाजे के कारण सोवियत संघ और कम्युनिस्ट चीन ने पश्चिम के उपनिवेशवाद के शिकार रह चुके देशों में गृहयुद्ध की प्रवृत्तियों और अधिनायकवादी ताकतों को सहारा भी दिया। लेकिन इन दोनों तरीकों में स्वतंत्रता के अधूरेपन की समस्या थी। राजनीतिक बनाम आर्थिक अधिकारों का सवाल था।

इन दोनों से अलग समाजवादियों ने नव-स्वाधीन देशों में 'कम पूँजी, सांस्कृतिक विविधता और सघन जनसंख्या' के सच के बीच राष्ट्रीय आजादी और एकता को बनाए रखने की चुनौती को पहचानने पर जोर दिया। बिना समता और संपन्नता का

संयोग बनाए दोनों लक्ष्य आधे-अधूरे रहेंगे। फिर 'न्याय और व्यवस्था' की आड़ में जनसाधारण के जनतांत्रिक अधिकार पर आँच आएगी। सीमित साधनों पर प्रभु वर्गों, दबंग समुदायों और पश्चिमीकरण में आगे क्षेत्रों की दावेदारी से राष्ट्र की एकता ही खतरे में पड़ सकती है।

दूसरे शब्दों में, स्वराज को सार्थकता देने के लिए 1) राष्ट्रीय एकता, 2) समावेशी लोकतंत्र, 3) न्यायमूलक अहिंसा, 4) गतिशील विकेंद्रीकरण और 5) संभव समता के बीच निरंतर समन्वय को अनिवार्य माना गया। इस संदर्भ में 'गरीबी और गुलामी के योजनाबद्ध निर्मूलन के लिए आर्थिक और राजनीतिक विकेंद्रीकरण' आधारित समाजवादी दिशा अपनाने की सैद्धांतिक विवेचना 1951 और 1962 के बीच डॉ. रामनोहर लोहिया ने नीति-वक्तव्यों और दो चुनाव घोषणापत्रों के माध्यम से देश के सामने रखी।[11] समाजवादियों ने इस योजना पर बल देने के लिए साठ के दशक में 'चौखंभा' नामक हिंदी साप्ताहिक भी प्रकाशित किया। राजनीतिक समीक्षकों के अनुसार 'चौखंभा राज्य व्यवस्था' का सिद्धांत डॉ. लोहिया का आधुनिक राजनीतिक चिंतन और जनतांत्रिक विमर्श में एक अनूठा योगदान है।[12]

ऐतिहासिक दृष्टि से स्वराज के संकल्प को लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक से जोड़ा जाता है क्योंकि लोकमान्य तिलक ने 1916 में होमरूल लीग की स्थापना समारोह में प्रथम उद्घोष किया था कि 'स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम इसे लेकर रहेंगे।'। यह उल्लेखनीय है कि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के पथप्रदर्शक आचार्य नरेंद्रदेव लोकमान्य तिलक के अनुयायी थे। इसी क्रम में 1923 में देशबंधु चितरंजन दास और भारतरत्न डॉ. भगवानदास ने स्वराज की एक रुपरेखा प्रस्तुत करके एक राष्ट्रव्यापी विमर्श को आधार भी दिया।[13] नरेंद्रदेव जी काशी विद्यापीठ में शिक्षक के रूप में डॉ. भगवानदास जी के निकट सहयोगी रहे और काशी विद्यापीठ कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की आधारभूमि था।

पूर्ण स्वराज को कांग्रेस का लक्ष्य बनाने के लिए जवाहरलाल नेहरू और सुभाष बोस ने 1929 में इंडिया इंडिपेंडेंस लीग की स्थापना की थी और इसमें नरेंद्रदेव उनके सहयोगी थे। इसी मंच के प्रयासों से दिसंबर, 1929 में संपन्न कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में 'पूर्ण स्वराज' का संकल्प स्वीकार किया गया था। आचार्य नरेंद्रदेव और डॉ. लोहिया के प्रयास से कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने भी पटना में 1934 में अपनाए गए उद्देश्यों में भारत के पूर्ण स्वराज को अपना लक्ष्य घोषित किया था।

गांधी जी ने 1931 में 'यंग इंडिया' में लिखा कि 'स्वराज एक पवित्र शब्द है; यह एक वैदिक शब्द है जिसका अर्थ आत्म-शासन और आत्मसंयम है। अंग्रेजी शब्द 'इंडिपेंडेंस' अक्सर सब प्रकार की मर्यादाओं से मुक्त निरंकुश आजादी का या स्वच्छंदता का अर्थ देता है; वह अर्थ स्वराज शब्द में नहीं है।'[14] 'हमारे सपनों के स्वराज में नस्ल या धर्म के भेदों को कोई स्थान नहीं हो सकता। उस पर शिक्षितों या धनवानों का एकाधिपत्य नहीं होगा - सबके कल्याण के लिए होगा। सबकी गिनती में किसान तो आते ही हैं, किन्तु लूले, लंगड़े, अंधे और भूख से मरने वाले लाखों-करोड़ों मेहनतकश मजदूर भी अवश्य आते हैं।'[15] उन्होंने यह भी बताया कि 'स्वराज से मेरा अभिप्राय लोकसम्मति के अनुसार होने वाला भारतवर्ष का शासन।'[16] गांधी जी की यह चेतावनी थी कि 'सच्ची लोकशाही केंद्र में बैठे हुए बीस आदमी नहीं चला सकते। वह तो नीचे से हरेक गाँव के लोगों द्वारा चलाई जानी चाहिए।'[17] इस आदर्श को गांधी ने 'ग्राम-स्वराज' का विशेषण दिया।

गांधी मार्ग के अनुयायियों ने इस आदर्श को परिभाषित करने में आचार्य विनोबा भावे के 'स्वराज्य-शास्त्र' से प्रकाश पाया।[18] विनोबा ने मानव-सापेक्ष स्वयंपूर्ण अहिंसक निर्दोष शासन पद्धति की रचना में ग्रामीणों के सहयोग से निर्मित स्वायत्त गाँवों की बुनियाद पर बनी प्रांतीय, राष्ट्रीय और वैश्विक व्यवस्था की जरूरत पर बल दिया था। गांधी -चिंतन को 1949 में श्रीमन्नारायण ने गांधीवादी संविधान की एक रूपरेखा के रूप में प्रकाशित किया।[19]

इसी क्रम में जयप्रकाश नारायण ने 1959 में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना के लिए बनाए गए भारतीय संविधान के शुरुआती दशक के खट्टे-मीठे अनुभवों के आलोक में 'भारतीय राज्य-व्यवस्था के पुनर्निर्माण' की एक योजना प्रस्तुत की। जे. पी. ने ध्यान दिलाया कि पाश्चात्य राज्य-व्यवस्था मनुष्य के सामाजिक स्वभाव और समाज के वैज्ञानिक संगठन दोनों के विरुद्ध है। पश्चिम में स्थापित संसदीय लोकतंत्र का सबसे गंभीर दोष केंद्रीकरण की और उसकी सहज प्रवृत्ति है। सत्ता और प्रशासन के केंद्रीकरण का एक स्वाभाविक परिणाम अधिकारी-तंत्र पर निर्भरता है। इस अधिकारीतंत्र की स्वेच्छाचारिता का प्रतिरोध कठिन होता है। एक छोर पर राष्ट्रीय राज्य है और दूसरे छोर पर वैयक्तिक मतदाता और बीच में शून्य। वर्तमान लोकतंत्र की राज्य-व्यवस्था का निर्माण जिस ईंट से होता है वह वैयक्तिक मतदाता है। लोकतंत्र की संपूर्ण प्रक्रिया मतों के गणित पर आधारित है और व्यक्तिगत मतदाता समाज के परमाणु के रूप में मत देता है। इसमें एकाकी मतदाता दीन एवं असहाय बन जाता है। क्योंकि सत्ता-संचालन राजनीतिक दलों, उद्योगपतियों, बैंकरों, शक्तिशाली श्रमिक

इसी क्रम में जयप्रकाश नारायण ने 1959 में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना के लिए बनाए गए भारतीय संविधान के शुरुआती दशक के खट्टे-मीठे अनुभवों के आलोक में 'भारतीय राज्य-व्यवस्था के पुनर्निर्माण' की एक योजना प्रस्तुत की। जे. पी. ने ध्यान दिलाया कि पाश्चात्य राज्य-व्यवस्था मनुष्य के सामाजिक स्वभाव और समाज के वैज्ञानिक संगठन दोनों के विरुद्ध है। पश्चिम में स्थापित संसदीय लोकतंत्र का सबसे गंभीर दोष केंद्रीकरण की और उसकी सहज प्रवृत्ति है। सत्ता और प्रशासन के केंद्रीकरण का एक स्वाभाविक परिणाम अधिकारी-तंत्र पर निर्भरता है

संगठनों और अन्य सुसंगठित हित-समूहों के बीच शक्ति-संतुलन से होता है। लोकतंत्र की संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं में सहजीवन की अभिव्यक्ति नहीं होती। जबकि मनुष्य का समाज से संबंध जीवित काया से जीवित कोषाणु जैसा होता है।

जयप्रकाश नारायण की मान्यता थी कि गांधी जी ने संसदीय लोकतंत्र को बहुत पहले ही विफल घोषित कर दिया था।[20] उनके द्वारा इंगित वैकल्पिक योजनाएँ भारत की परंपरा, मनुष्य के वास्तविक स्वभाव और मानव समाज के लिए कहीं अधिक सुसंगत थीं। क्योंकि समुदाय, स्व-विकास और सामुदायिक जीवन का स्व-नियमन प्राचीन भारतीय राज्य-व्यवस्था के विशिष्ट लक्षण रहे हैं। सही ढंग से राज्य-व्यवस्था का अन्वेषण सामाजिक पुनर्निर्माण की वृहत्तर समस्या का ही एक अंग है। क्योंकि मनुष्य अकेला और दूसरों से कटा हुआ है। सामाजिक एकीकरण और मानव समुदाय का फिर से निर्माण करना ही मूल चुनौती है। वर्तमान भारतीय गाँव समुचित समुदाय नहीं हैं। वे किसी काल में ऐसे समुदाय थे लेकिन जाति, वर्ग, वंश, धर्म, राजनीति - ये सब उन्हें विभाजित करते हैं। सच्चे समुदाय में समागम होता है और उसमें सहकार और साहचर्य होता है। हितों की समानता होती है और विविधता में एकता की भावना होती है। पश्चिमी देशों में औद्योगीकरण और नगरीकरण की सघनता और व्यापकता के कारण ऐसे समुदायों का निर्माण कठिन हो सकता है। परंतु हम भारत के लोग और एशिया के अन्य अनेक देश इस उपक्रम का सूत्रपात करने का लिए अत्यंत अनुकूल स्थिति में हैं। हमारी कल्पना का समाज 'नगरीय' और 'ग्रामीण' में विभाजित न होकर सामुदायिक समाज होगा। विज्ञान के विकास के कारण नगर और ग्राम के बीच की विभाजन रेखा मिथ्या हो गई है। सामुदायिक राज्य-व्यवस्था ही उस सहभागी लोकतंत्र की गारंटी हो सकती है जो हमारा आदर्श है और सभी लोकतंत्रवादियों का आदर्श होना चाहिए। अतः आज हमें उन तरीकों एवं साधनों की खोज करनी चाहिए जिनके माध्यम से अधिकाधिक लोग अधिकाधिक स्वशासन कर सकें। क्योंकि जिस हद तक लोकतंत्र सही अर्थ में सहभागी बनेगा उसी हद तक अधिनायकवाद की बाढ़ को रोका जा सकेगा।

जयप्रकाश नारायण की मान्यता थी कि गांधी जी ने संसदीय लोकतंत्र को बहुत पहले ही विफल घोषित कर दिया था। उनके द्वारा इंगित वैकल्पिक योजनाएँ भारत की परंपरा, मनुष्य के वास्तविक स्वभाव और मानव समाज के लिए कहीं अधिक सुसंगत थीं। क्योंकि समुदाय, स्व-विकास और सामुदायिक जीवन का स्व-नियमन प्राचीन भारतीय राज्य-व्यवस्था के विशिष्ट लक्षण रहे हैं। सही ढंग से राज्य-व्यवस्था का अन्वेषण सामाजिक पुनर्निर्माण की वृहत्तर समस्या का ही एक अंग है। क्योंकि मनुष्य अकेला और दूसरों से कटा हुआ है। सामाजिक एकीकरण और मानव समुदाय का फिर से निर्माण करना ही मूल चुनौती है। वर्तमान भारतीय गाँव समुचित समुदाय नहीं हैं। वे किसी काल में ऐसे समुदाय थे लेकिन जाति, वर्ग, वंश, धर्म, राजनीति - ये सब उन्हें विभाजित करते हैं

यह जरूर ध्यान में रखना चाहिए कि जयप्रकाश नारायण के विश्लेषण में बहुदलीय प्रणाली में निहित सत्ता प्रतिस्पर्धा के कारण विकसित अवसरवादी नेतृत्व, प्रतिपक्षियों के चरित्र हनन की प्रवृत्ति और चुनाव प्रणाली का धनबल आदि से बढ़ते प्रदूषण के समाधान के रूप में दलविहीन लोकतंत्र की तरफ जाने की जरूरत पर बल दिया गया है। यह निष्कर्ष महात्मा गांधी द्वारा आजादी के बाद शुरू सत्ता की होड़ से बचने के लिए कांग्रेस के विसर्जन और सत्ता की दौड़ से अलग रचनात्मक काम और सत्याग्रह के जरिये चरित्र निर्माण और राष्ट्रनिर्माण के उपकरण के रूप में लोकसेवक संघ की स्थापना के सुझाव से जुड़ता है। यह नतीजा मार्क्सवाद से मोहभंग के बाद एम. एन. रॉय द्वारा जन समितियों के जरिये बहुदल प्रणाली को महत्वहीन बनाने की जरूरत से भी प्रभावित रहा है। लेकिन डॉ. लोहिया के सोच में बहुदलीय प्रणाली और लोकतांत्रिक चुनावों के दोषों के निदान के लिए 1. राष्ट्रीयता-उन्मुख सभी प्रगतिशील संगठनों की निकटता के जरिये एक जनहितकारी दल की स्थापना, 2. कार्यक्रम आधारित संयुक्त मोर्चों के अभियानों, 3. अनेक एकसूत्रीय मंचों की रचना, और 4. अन्यायों के निर्मूलन के लिए निरंतर सत्याग्रह को प्राथमिकता दी गई थी।

भारतीय संविधान और सहभागिता

यह सही है कि इस प्रसंग में 'विविध ता में एकता' के सिद्धांत की धुरी पर राष्ट्रीय आंदोलन के सबसे व्यापक मंच के तौर पर कांग्रेस द्वारा क) बहुभाषीय और बहुधर्मीय राष्ट्रीयता, तथा ख) मौलिक नागरिक अधिकारों में आस्था को स्वतंत्रता की निर्णायक लड़ाई का आधार बनाया गया था। इसके साथ ही देश के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रश्नों के समाधान के लिए 1. स्वतंत्रता, 2. संप्रभुता, 3. राष्ट्रीय एकता और अखंडता, और 4. संसदीय लोकतंत्र के चार स्तंभों पर निर्मित आधुनिक राष्ट्र-राज्य को सबसे बड़ी जरूरत बताया गया। इससे क) लोकतंत्र के आधार पर 'राष्ट्र-निर्माण' और ख) न्याय, स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व के आधार पर 'नागरिकता-निर्माण' की दुहरी जरूरत की पहचान की गई।

अपने आधे-अधूरे जनादेश[21] और अति-असंतुलित बनावट[22] के बावजूद भारत की संविधान सभा द्वारा 1949 में अपनाए गए संविधान के प्रथम पृष्ठ में ही 'प्राक्कथन' के रूप में इसी दिशा का स्पष्ट शब्दों में आकर्षक तरीके से वर्णन किया गया है:

'हम भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक,

राजनीतिक और आर्थिक न्याय; विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता; प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए; तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए इस संविधान को आत्मार्पित करते हैं.'। इसी दिशा को भारतीय राज्य के नीति-निर्देशक तत्व के रूप में मान्यता दी गई है।

लेकिन इस संविधान में सहभागी लोकतंत्र और जनसाधारण की सहभागिता के लिए जरुरी प्रतिबद्धता की कमी रही है। यह सत्ता के विकेंद्रीकरण में केंद्र और राज्य सरकार से नीचे जिला परिषद, नगरपालिका और ग्राम-पंचायत तक जाने में संकोचग्रस्त रहा। इस दिशा में किए गए संविधान संशोधनों के बावजूद केंद्र और राज्य के नीचे की सत्ता-व्यवस्था में लोकतंत्र की सुगंध और ऊर्जा नहीं है। राष्ट्रनिर्माण में आत्मविश्वास से जुटे हुए स्त्री-पुरुषों की कतारों की बजाय बेलगाम सत्ताधीशों और नौकरशाही के सामने याचक-भाव से झुके हुए असहाय जनसाधारण ही हमारी अबतक की लोकतंत्र रचना का अंतिम सत्य है। इस संविधान ने देशवासियों को नागरिक के रूप में मतदान के अधिकार के अलावा कोई और जिम्मेदारी नहीं दी है। जैसे जनप्रतिनिधि वापसी का अधिकार, दलों पर अपने घोषणापत्र के प्रति जिम्मेदारी का अंकुश, संवैधानिक पदों पर आसीन व्यक्तियों के कार्यों में पारदर्शिता और जवाबदेही की माँग, आदि। इसमें शिक्षा, स्वास्थ्य और आजीविका के सवाल पर निर्गुणता का दोष है। इसलिए सरकारें बदलने के बावजूद इन जरुरी मोर्चों पर संसाधन संवर्धन के प्रति उपेक्षा भाव की निरंतरता का सच हमारे स्वराज की सीमित सार्थकता को बेपर्दा करता रहता है। डॉ. लोहिया के लिए इसका यह अर्थ नहीं था कि मौजूदा संविधान को खारिज करते हुए सहभागी लोकतंत्र को संभव बनाने के लिए एक नयी संविधान सभा के लिए अभियान चलाएँ। वह स्वतंत्रता, न्याय, समता, सर्वधर्म समभाव, लोकतंत्र और विश्व बंधुत्व के आदर्शों के लिए राष्ट्रीय आंदोलन के दौर से देखे गए सपनों को साकार करने के लिए संविधान में सुधार के पक्षधर थे।

चौखंभा राज योजना अर्थात सहभागी राष्ट्रनिर्माण

इस विस्तृत पृष्ठभूमि के आधार पर यह बताना उचित होगा की चौखंभा राज की रचना करके भारतीय समाज और राज्य-व्यवस्था में स्वराज का प्रकाश और लोकतंत्र का उत्साह फैलाते हुए सहभागी राष्ट्रनिर्माण का आवाहन करने वाले डॉ. लोहिया कौन थे? इस जानकारी के बाद चौखंभा राज की उनकी योजना का संदर्भ, प्रमुख बातें और प्रासंगिकता को समझना आसान होगा।

'चौखंभा राज' की योजना के प्रस्तावक डॉ. राममनोहर लोहिया भारतीय समाजवादी आंदोलन के अग्रणी नायक और सिद्धांतकार थे। एक मध्यमवर्गीय व्यापारी परिवार में जन्मे डॉ. लोहिया को फैजाबाद, मुंबई, बनारस, कोलकाता और बर्लिन में शिक्षित होने का सुअवसर मिला था। बचपन में ही उनकी माँ चन्द्रावती का देहांत हो गया था और पिता हीरालाल 1921 से गांधी के प्रभाव से अपना पारिवारिक व्यवसाय छोड़कर असहयोग आंदोलन के रचनात्मक पक्ष से जुड़ गए थे। वह 1930 के नमक आंदोलन में सत्याग्रह में जेल भी गए थे। वह राममनोहर को बाल्यावस्था से ही कांग्रेस के अधिवेशनों में ले जाते थे। इससे राममनोहर का 1933 तक अपनी शिक्षा पूरी करके राष्ट्रीय आंदोलन में कूद पढ़ना स्वाभाविक था। उन्होंने 1942 के 'अंग्रेजों, भारत छोड़ो!' आंदोलन में अदम्य साहस का प्रदर्शन करते हुए बम्बई और कलकत्ता से 'कांग्रेस रेडियो' के जरिये स्वतंत्रता की लड़ाई को आगे बढाया था।

डॉ. लोहिया इससे पूर्व स्वराज के सिपाही के रूप में 1939 और 1940 में ब्रिटिश राज द्वारा गिरफ्तार किए जा चुके थे। उन्होंने 1946 में ब्रिटिश कैद से रिहाई के बाद जून और सितम्बर, 1946 में ही पुर्तगाली शासन से गोवा की आजादी की मशाल प्रज्वलित करने के लिए भी जून और सितम्बर में दो बार सत्याग्रह किया। लोहिया को भारत की आजादी के कुछ ही महीनों के बाद नेपाल में राणाशाही के खात्मे के लिए आंदोलन के समर्थन में प्रदर्शन का नेतृत्व करने के लिए दिल्ली में जेल में बंद रखा गया। 1948 और 1966 के बीच के वर्षों में उन्होंने किसानों और नौजवानों से लेकर मणिपुर और नागालैंड के लोगों के सवालों पर सत्याग्रह किए। 1964 में उन्होंने अमरीका में रंगभेद के खिलाफ भी गिरफ्तारी दी। नेहरू के कार्यकाल में वह प्रतिपक्ष के सबसे मुखर नेता थे जिसे आजादी के बाद भी अनेकों बार कैद किया गया।

डॉ. लोहिया के विचार समग्र को क) निराशा के कर्तव्य के दर्शन, ख) इतिहास चक्र के सिद्धांत, और ग) सप्तक्रांति के कार्यक्रमों की त्रिवेणी में समाहित किया जा सकता है। लोहिया ने देश को खर्च पर सीमा, दाम बांधो, जाति तोड़ो, नर-नारी समता, अंग्रेजी हटाओ, हिन्द-पाक महासंघ, हिमालय बचाओ, सप्तक्रांति और विश्व-सरकार जैसे क्रांतिकारी कार्यक्रम दिए। द्रौपदी को भारतीय नारी का आदर्श और गांधी को दुनिया के भविष्य का पथप्रदर्शक मन। लोहिया गजनी, गोरी और बाबर को विदेशी लुटेरे और रजिया, रसखान, जायसी और शेरशाह को सभी देशवासियों का पुरखा बताया। उनकी प्रार्थना थी कि 'हे भारतमाता! हमें राम की मर्यादा, कृष्ण का उन्मुक्त हृदय और शिव का मस्तिष्क प्रदान करो।'।

उन्हें सत्याग्रही समाजवाद के महानायक के साथ ही 'गैर-कांग्रेसवाद' की राजनीति के सफल प्रवर्तक के रूप में भी याद किया जाता है। आजादी, लोकतंत्र, सत्याग्रह, राष्ट्रीयता, विश्वबंधुत्व और समाजवाद उनके मुख्य सरोकार थे। लेकिन वह व्यक्तिकेन्द्रित 'वादों' के खिलाफ थे। इसीलिए उन्होंने 'मार्क्सवादी' या 'मार्क्स विरोधी' अथवा 'गांधीवादी' या 'गांधीविरोधी' जैसी खेमेबंदियों से दूर रहने की जरूरत पर बल दिया।

उनके चिंतन की व्यापकता के अनुमान के लिए 9 खण्डों में उपलब्ध राममनोहर लोहिया रचनावली और 16 खण्डों में प्रकाशित 'लोकसभा में लोहिया' का उल्लेख अप्रासंगिक नहीं होगा। लोहिया की रचनाओं में से 'मार्क्स, गांधी एंड सोशलिजम', 'इतिहास चक्र', 'जातिप्रथा', 'भाषा', 'इंटरवल डूरिंग पोलिटिक्स', तथा 'भारत, चीन और उत्तरी सीमाएं' कालजयी रचनाएं मानी जाती हैं। 23 मार्च 1910 को अकबरपुर (फैजाबाद) में जन्में डॉ. राममनोहर लोहिया का 57 बरस की आयु में 12 अक्तूबर 1967 को नई दिल्ली में

निधन हो गया।

डॉ. लोहिया के चौखंभा राज की योजना का मूल उद्देश्य नव-स्वाधीन भारत में सहभागी राष्ट्रनिर्माण का मार्ग प्रशस्त करना था। इसमें राजनीतिक सत्ता, आर्थिक क्षमता, टेक्नोलाजी सुधार, स्थानीय संसाधन और जनसाधारण की जिम्मेदारी का संगम किया गया था। इसे लोकतन्त्र को समावेशी बनाने और नागरिकता निर्माण की प्रक्रिया में हर देशवासी को शामिल करने का उपाय भी मानते थे। 1951 से 1962 की अवधि में उन्होंने इस विचार को समाजवादी पुस्तिकाओं (1951, 1957) से लेकर सोशलिस्ट पार्टी के दो चुनाव घोषणापत्रों (1957, '62) के महत्वपूर्ण अंग के रूप में बार-बार देश के सामने रखा। इन सबका एक साथ अध्ययन करने से यह स्पष्ट है कि डॉ. लोहिया द्वारा प्रस्तुत चौखंभा राज योजना के मुख्यत: सात आयाम थे:

1. देश के समस्त सरकारी राजस्व के 1/4 अंश को गाँव, नगर और जिला पंचायत को दिया जाए और योजना से जुड़े खर्च के 1/4 हिस्से को गाँव, नगर और जिला पंचायत के जरिये किया जाए।
2. पुलिस-व्यवस्था को गाँव, नगर और जिला पंचायत के अंतर्गत उनकी समितियों की निगरानी में संचालित किया जाए।
3. जिले में कलक्टर (जिलाधीश) के पद को समाप्त करते हुए उसकी जिम्मेदारियों को जिले की विभिन्न समितियों को सौंपा जाए। यह भी जरुरी है कि प्रशासन में निर्वाचन की व्यवस्था को बढाने और नामांकन और मनोनयन की व्यवस्था को कम करने पर यथासंभव बल दिया जाय।
4. खेती, उद्योग और अन्य सभी राष्ट्रीयकृत संपदाओं का स्वामित्व यथासंभव गाँव, नगर और जिला पंचायत को सौंपा जाए।
5. आर्थिक, राजनीतिक और प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण के कार्य को यथासंभव छोटी मशीनों की अधिकतम उपयोग से संपन्न किया जाए।
6. शासन की स्थानीय इकाई के रूप में गाँव, नगर आर जिला पंचायत को औपचारिक तौर पर निर्धारित विषयों के बारे में कानून बनाने और नियोजन का अधिकार मिले।
7. गाँव, नगर और जिला पंचायत के सदस्यों को देश के राष्ट्रपति के चुनाव में मतदान का अधिकार मिले।

चौखंभा राज के प्रस्ताव में गाँव-उन्मुख लोकतंत्र को विकसित करने की एक सुविचारित योजना थी। इसमें गाँव पंचायत और किसानों में सीधा संबंध, उत्पादकता और संसाधनों की जानकारी, फसलवार खेती की योजना, और गाँव पंचायत, योजना आयोग व भूमि आयोग में समन्वय का सुझाव था। गाँव - पंचायत को अनाज संग्रह और लगान वसूली की जिम्मेदारी का प्रस्ताव भी किया गया। पीने का साफ पानी, गाँव की स्वच्छता, और यातायात सड़क निगरानी के लिए ग्राम-पंचायत को ध्यान रखना था। इसको ही प्राथमिक विद्यालय, दवाखाना, प्रसव-सेवा केंद्र और शिशु कल्याण केंद्र की व्यवस्था सँभालनी थी

इस योजना में भारत के लिए अनुकूल समाजवादी राज्य-व्यवस्था के मूल तत्व प्रस्तुत किए गए हैं। यह सोवियत संघ की कम्युनिस्ट सत्ता-व्यवस्था व्यवस्था और अमरीका की पूंजीवादी बाजार व्यवस्था से बिलकुल अलग रखी गई है। यह स्पष्ट है कि चौखंभा राज योजना की अपेक्षा है कि स्वराज और लोकतंत्र के प्रकाश को केंद्र और राज्य से आगे जिला, नगर और गाँव तक अविलम्ब पहुँचाने के लिए अविलम्बता ('इमेडीएसी') और सहभागिता (हिस्सेदारी) की कसौटियों को आधार बनाया जाए। देश के सुसंचालन के लिए राष्ट्रीय संसद से लेकर गाँव पंचायत तक वयस्क मताधिकार के जरिये चुने जनप्रतिनिधियों के परस्पर संबद्ध योगदान की सुविधा की दृष्टि से राज्यसत्ता का एक चार-मंजिला ढांचा निर्मित किया जाए। इस चार-स्तरीय राज्यसत्ता को उत्पादन, स्वामित्व, प्रशासन, नियोजन, शिक्षा आदि की जिम्मेदारी संभालनी होगी। इसके तकनीकी प्रबंधन को छोटी मशीन की टेक्नोलाजी से संचालित किया जाएगा।

चौखंभा राज के प्रस्ताव में राजनीतिक और आर्थिक विकेंद्रीकरण के जरिये आर्थिक, राजनीतिक और प्रशासनिक क्षेत्रों के लोकतंत्रीकरण का निर्देश है। इसमें राजनीतिक नेतृत्व, आर्थिक शक्ति के स्वामियों, और प्रशासनिक अधिकारियों की मिलीभगत को लोकतंत्र और देशहित का सबसे प्रबल शत्रु के रूप में पहचानते हुए इसे नई राज्यव्यवस्था की संरचना के जरिये प्रभावहीन बनाने का बीड़ा उठाया गया था। इस योजना में प्रशासनिक व्यवस्था के अविलंब जनहित-उन्मुख होने का दबाव था। प्रत्येक भारतीय स्त्री-पुरुष के बीच जातिभेद, वर्गभेद और धर्मभेद से ऊपर उठकर परस्पर सहयोग और अधिकतम समत्व की संभावना पर बल था। दूसरे शब्दों में, डॉ. लोहिया की चौखंभा राज योजना नवस्वाधीन भारत के लिए क्षेत्रीयता, अलगाववाद, अधिनायकवाद, नौकरशाही, और बड़ी मशीन पर आधारित उद्योगीकरण जैसे महाप्रश्नों का एकसाथ समाधान प्रस्तुत करती है।

चौखंभा राज के प्रस्ताव में गाँव-उन्मुख लोकतंत्र को विकसित करने की एक सुविचारित योजना थी। इसमें गाँव पंचायत और किसानों में सीधा संबंध, उत्पादकता और संसाधनों की जानकारी, फसलवार खेती की योजना, और गाँव पंचायत, योजना आयोग व भूमि आयोग में समन्वय का सुझाव था। गाँव - पंचायत को अनाज संग्रह और लगान वसूली की जिम्मेदारी का प्रस्ताव भी किया गया। पीने का साफ पानी, गाँव की स्वच्छता, और यातायात सड़क निगरानी के लिए ग्राम-पंचायत को ध्यान रखना था। इसको ही प्राथमिक विद्यालय, दवाखाना, प्रसव-सेवा केंद्र और शिशु कल्याण केंद्र की व्यवस्था सँभालनी थी। इसी स्तर पर खेल और सांस्कृतिक कार्यों के प्रोत्साहन का दायित्व दिया

गया। गाँव-पंचायत में युवाओं को सक्रिय भूमिका विशेषकर ग्राम कल्याण कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में योगदान पर जोर दिया गया। निरक्षरता निवारण, ग्रामोद्योग संवर्धन व सहकारी समितियों को प्रोत्साहन भी गाँव स्तर पर ही सँभालने का सुझाव था। खेतों और अन्न-उत्पादन के सुधार के लिए 'अन्न सेना' और खेती योग्य भूमि के विस्तार के लिए 'भूमि सेना' का प्रावधान रखा गया। इसमें ग्रामीण बेरोजगारी का भी समाधान था।[23]

आज भी चौखंभा राज की कल्पना को लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के विमर्श में महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है। लेकिन डॉ. लोहिया मानते थे कि चौखंभा राज की स्थापना से सिर्फ सत्ता का विकेंद्रीकरण ही नहीं बल्कि हमारे नव-स्वाधीन राष्ट्र के लिए अनेकों अन्य हितकारी परिणाम निकलेंगे:

1. विविधता में एकता को बल मिलेगा। हर स्थानीय समुदाय अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए विविध लघु योजनाएँ लागू करते हुए अंततः देश की दुर्दशा के उन्मूलन में योगदान करेगा।
2. भाषा, धर्म और अन्य आधारों पर पैदा बहुसंख्यक-अल्पसंख्यक विभाजन में निहित अलगाव, असुरक्षा और तनाव का यह रचनात्मक समाधान होगा।
3. भूस्वामित्व से पैदा होने वाली आर्थिक गैरबराबरी में निहित द्वंद्व और टकराहट के बावजूद अंतर्वर्गीय सहकारिता की प्रगति होगी।
4. राज्यसत्ता का देशीकरण (विउपनिवेशीकरण) होगा। ब्रिटिश शासन के दौरान गाँव से लेकर जिला, प्रदेश और केंद्र में जमी हुई अफसरशाही पर विधिसम्मत तरीके से लोकशाही का नियंत्रण कायम करने की जरूरत पूरी होगी।
5. अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आमदनी का 1/4 हिस्सा गाँव सरकार और 1/4 हिस्सा जिला सरकार को देने से परस्पर पूरकता स्थापित के जरिये नया प्राणसंचार होगा।
6. चौखंभा राज छोटी मशीनों के मशीनों के माध्यम से तकनीकी विकेंद्रीकरण संपन्न करेगी और यह लोकतांत्रिक क्रांति का भी आधार बनेगी।
7. गाँव-समाज की उदासीनता दूर होगी; प्रभु जातियों का आलस मिटेगा और वंचित जातियों में आशा का संचार होगा।
8. यह भी निश्चित है कि भारत विभाजन के सदमें से सहमे देश में एक साथ विभिन्न स्थानीय समुदायों की विविध तामय सांस्कृतिक अस्मिता का संरक्षण और सहभागी प्रक्रियाओं से लोकतांत्रिक राष्ट्रीय एकता का संवर्धन हो सकेगा।
9. यह योजना देश की राज्यव्यवस्था में विदेशी शासन से जुडी जनविरोधी प्रवृत्तियों और परंपराओं के उन्मूलन का भी लक्ष्य जनसाधारण के वोट से चुने हुए प्रतिनिधियों के जरिये पूरा करेगी।

कुछ निष्कर्ष

इस निबंध के अंत में यह प्रश्न स्वाभाविक होगा कि सहभागी राष्ट्रनिर्माण की यह अनूठी योजना क्यों नहीं स्वीकारी गई? वस्तुतः चौखंभा राज की योजना के साथ कई असुविधाजनक तथ्य जुड़े हुए थे जिससे यह देश के लिए आकर्षक नहीं सिद्ध हुई।

एक तो इसमें राज्यव्यवस्था के समूल लोकतंत्रीकरण का आवाहन था। जो देश की तत्कालीन शक्ति संरचना में अरसे से सुस्थापित व्यक्तियों, वर्गों और जातियों के लिए खतरे की घंटी थी। दूसरे, इसकी प्रस्तावक जमात अर्थात भारत के समाजवादी नेता और कार्यकर्ता 1946 में संविधान सभा के चुनावों से अलग रहे और भारत विभाजन के प्रस्ताव पर कांग्रेस की पहली कतार के सभी नेताओं के खिलाफ थे। डॉ. लोहिया समेत अधिकांश सोशलिस्ट एक अलग दल के रूप में कांग्रेस के विरुद्ध 1952, '57 और '62 के आम चुनावों में आमने सामने हुए। इससे उनको सत्तारूढ़ कांग्रेस पार्टी द्वारा 'बहिष्कृत' जैसा सलूक मिला और उनके देशहितकारी प्रस्तावों की भी खुली उपेक्षा की गई।

तीसरे, कांग्रेस के नेतृत्व द्वारा अपनाए गए राष्ट्रनिर्माण के रास्ते की समस्याओं की पूरी तस्वीर 1962 के चीनी हमले और 1969 में कांग्रेस पार्टी के विभाजन के बीच की अवधि में क्रमशः सामने आई। लेकिन तब तक समूचे राजनीतिक समुदाय में सत्ता के राष्ट्रहितकारी विकेंद्रीकरण की बजाय आत्मरक्षा की प्रवृत्ति प्रबल हो चुकीं थीं। सहभागी लोकतंत्र के जरिये राष्ट्रनिर्माण की बजाय 'सरकारीकरण' और व्यक्ति-केंद्रित सत्ताविमर्श की केंद्रीयता को महत्व दिया जाने लगा। चौथे, 1974 में जयप्रकाश नारायण के प्रयासों से शुरू 'संपूर्ण क्रांति आंदोलन' ने 1. राष्ट्रनिर्माण की समस्याओं, 2. 'लोक' पर 'तंत्र' के चौतरफा वर्चस्व के हानिकारक परिणाम, 3. देश की सत्ता के बिगड़ते चरित्र और 4. लोकतंत्र के आत्मघाती दोषों की तरफ देश का ध्यान जरुर खींचा।[24] लेकिन जून। '75 और मार्च, '77 के इमरजेंसी राज के बाद लोकतांत्रिक नव-निर्माण की सभी सकारात्मक संभावनाएँ धूमिल हो चुकीं थीं।

इसी के समांतर, समाजविज्ञान की सैद्धांतिक दृष्टि और मौलिक राजनीतिक नव-निर्माण के ताजा इतिहास की मदद से यह भी याद रखना चाहिए कि बिना जनक्रांति के संपन्न हुए राजनीतिक परिवर्तनों में राज्यसत्ता के संदर्भ में केंद्रीकरण की प्रवृत्ति की प्रधानता रहती आई है। पूरे नेहरू-युग में सत्ता-प्रतिष्ठान की तरफ से 'संकट-वाद' को ही सभी बुनियादी बदलावों को टालने की आड़ बनाया गया था। इसमें गांधी जी की हत्या, कांग्रेस से कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का संबंध विच्छेद, देशी रियासतों का आधा-अधूरा विलय, शरणार्थी समस्या, कश्मीर में टकराहट, देशभर में भाषाओं को लेकर आंदोलन, 1952 और '57 के आमचुनावों में कांग्रेस की प्रबल विजय और मध्यम वर्ग में यथास्थितिवादी रुझानों का उभार जैसे तथ्यों ने अवरोधक का काम किया।[25]

विकेंद्रीकरण की प्रगति के लिए जनसाधारण में आंदोलन, राजनीतिक समुदाय में आम सहमति और राजनीतिक नेतृत्व में दृढ इच्छाशक्ति की जरूरत होती है और 1947-'67 के दौर में इन तीनों का स्पष्ट अभाव था। फिर किसी राजसत्ता के नवनिर्माण में एक ठोस संवैधानिक व्यवस्था और लोकहितकारी न्यायपालिका से सहारा मिलता है लेकिन नवस्वाधीन भारत में यह दोनों सुविधाएँ भी नहीं थीं।

संदर्भ

1. देखें: लोहिया, रामनोहर (1963) मार्क्स, गांधी एंड सोशलिज्म (हैदराबाद, नवहिंद प्रकाशन)
2. देखें; अब्राहम लिंकन (1809-'65); अमरीका के 16वें राष्ट्रपति (1861-'65). लोकतंत्र के पक्षधर और गुलामी प्रथा के प्रबल विरोधी।
3. हेराल्ड लास्की (193-1950) ब्रिटिश विचारक, लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स के प्रोफेसर और ब्रिटिश लेबर पार्टी के अध्यक्ष. ग्रामर ऑफ पॉलिटिक्स (1925) और क्राइसिस इन डेमोक्रेसी (1933) के लेखक।
4. देखें; सौम्या सेनगुप्ता (2016) 'राममनोहर लोहिया : एग्रेरियन रेवोलुशन थ्रू विलेज अपलिफ्टमेंट इन इंडिया', इंडियन जर्नलऑफ सोसाइटी एंड पॉलिटिक्स 03 (02): 2016 53-58; रमेश कुमार (2018) 'डॉ. लोहिया' ज चौखम्भा राज एंड गुड गवर्नेंस : रेलेवेंस इन प्रेजेंट डे इंडिया' द डिस्कससेंट, खंड 6 अंक 4 अक्तूबर - दिसंबर, 2018; अमित बसोले (2009) 'द पीपुल्स मूवमेंट लेफ्ट एंड राममनोहर लोहिया' संहति; जून 13, 2009; महेश जायसवाल (2021) 'कल ढूँढेगे लोग डॉ. लोहिया को', सबलोग, वर्ष 13, अंक 3, मार्च 2021, 17-19; आनंद कुमार (2021) 'लोहिया की प्रासगिकता', सबलोग, वर्ष 13, अंक 3, मार्च, 2021; पृष्ठ 23-26
5. देखें; गांधी जी (1960) मेरे सपनों का भारत (अहमदाबाद, नवजीवन प्रकाशन) और जयप्रकाश नारायण (1959) भारतीय राज्य-व्यवस्था का पुनर्निर्माण (वाराणसी, सर्व सेवा संघ).
6. देखें; जयप्रकाश नारायण (1959) भारतीय राज्य-व्यवस्था का पुनर्निर्माण (अजित भट्टाचार्य/अरविन्द मोहन (2006) जेपी एक जीवनी (बीकानेर, वाग्देवी प्रकाशन) पृष्ठ 243-244
7. मैथ्यू, जार्ज (2013) 'पंचायत राज ऑर कलक्टर राज?", टाइम्स ऑफ इंडिया 15 अप्रैल 2013
8. लोहिया. राममनोहर (1951) वी ब्युल्ड फॉर सोशलिज्म (बंबई, सोशलिस्ट पार्टी); चौधरी, चित्रा (1993) राममनोहर लोहिया एंड इंडियन सोशलिस्ट थाट (नई दिल्ली, मिनर्वा पब्लिकेशंस); बीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य (2012) सलिएंट आइडियाज ऑफ डॉ. राममनोहर लोहिया (दिल्ली, अनामिका पब्लिकेशंस); के. गोपीनाथन पिल्लई (1994) पोलिटिकल फिलासफी ऑफ राममनोहर लोहिया (नई दिल्ली, दीप एंड दीप पब्लिकेशंस); सुहैल जावेद (1996) सोशलिज्म इन इंडिया (नई दिल्ली, रेडीएंट पब्लिशर्स)
9. इस संदर्भ में ईस्ट इंडिया कंपनी के एक गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स (1732-1818) के कार्यकाल (1774-1785) के बारे में ब्रिटेन में चले मुकदमे का उदाहरण प्रासंगिक है।
10. देखें; नौरोजी, दादाभाई (1876) पावर्टी एंड अन-ब्रिटिश रूल इन इंडिया (नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग); सुंदरलाल (2018) भारत में अंग्रेजी राज (नई दिल्ली, प्रभात प्रकाशन)।
11. देखें; मस्तराम कपूर (सं.)(2010) राममनोहर लोहिया रचनावली 9 खंड (दिल्ली, अनामिका पब्लिकेशंस)
12. देखें; वी. आर. मेहता (1992) फाउंडेशंस ऑफ इंडियन पोलिटिकल थाट (नई दिल्ली, मनोहर); राजाराम तोल्पड़ी (2010) 'कांटेक्स्ट, डिस्कोर्स एंड विजन ऑफ लोहिया'स सोशलिज्म', इकनामिक एंड पोलिटिकल वीकली 2 अक्तूबर खंड XLV, अंक 40, पृष्ठ 71-77; संजय कुमार(2011) 'लोहिया : डेमोक्रेसी', एम. पी. सिंह व हिमांशु रॉय (सं) इंडियन पोलिटिकल थाट - थीम्स एंड थिंकर्स (नई दिल्ली, पियर्सन) पृष्ठ 240-260
13. दास, सी. आर. व् डॉ. भगवानदास (1923/1973) अन आउटलाइन स्कीम ऑफ स्वराज (कलकत्ता, प्रकाशन एवं प्रचार विभाग, पश्चिम बंगाल सरकार)
14. यंग इंडिया, 19.3.'31
15. यंग इंडिया, 26.3.'31
16. नवजीवन, 29.1.'25
17. हरिजन, 18.1.'48
18. विनोबा (1942; 2000 पांचवा संस्करण) स्वराज्य-शास्त्र (वाराणसी, सर्व सेवा संघ प्रकाशन) पृष्ठ 23-46
19. श्रीमन्नारायण (1946) गांधियन कांस्टिट्यूशन फॉर फ्री इंडिया (इलाहाबाद, किताबिस्तान)
20. देखें; गांधी, एम्. के. (1909) की बहुचर्चित पुस्तक हिन्द स्वराज में संसदीय लोकतंत्र की समस्याओं पर गांधी जी द्वारा प्रस्तुत दृष्टिकोण।
21. भारत की संविधान सभा के सदस्यों के निर्वाचन मंडल का निर्माण वयस्क मताधिकार पर आधारित नहीं था। शिक्षा और संपत्ति की अनिवार्य शर्तों के कारण कुल जनसँख्या के मात्र 15 प्रतिशत स्त्री-पुरुषों को मत देने का अधिकार था।
22. भारत की संविधान सभा के कुल 389 सदस्य थे इनमें से 292 सदस्य ब्रिटिश भारत के प्रदेशों की विधान सभा से निर्वाचित किए गए और 93 सदस्य भारतीय रियासतों से मनोनीत थे। यह विधान सभाएं संपत्ति और उच्च शिक्षा की शर्तों पर प्रदत्त सीमित मताधिकार से बने मतदाता मंडल द्वारा चुनी गई थी। इससे देश की वयस्क जनसंख्या के सिर्फ 15% स्त्री-पुरुषों को मतदान का अधिकार दिया गया था। संविधान सभा के लिए हुए निर्वाचन में कांग्रेस के 208 उम्मीदवार और मुस्लिम लीग के 73 उम्मीदवार चुने गए थे। मुस्लिम लीग के सदस्यों ने पाकिस्तान की माँग के पक्ष में संविधान सभा का बहिष्कार किया। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी और कुछ अन्य समूहों ने वयस्क मताधिकार पर संविधान सभा का चुनाव न कराने के कारण इसके सदस्यों के चुनाव से अपने को दूर रखा। 14 अगस्त.'47 को भारत विभाजन के बाद पाकिस्तान की संविधान सभा के लिए फिर से चुनाव हुए। भारत का संविधान भारत के हिस्से में रहे क्षेत्रों से चुने हुए 299 सदस्यों ने मिलकर बनाया। इसमें अनुसूचित जनजाति के 5 सदस्य, 28 मुस्लिम और 15 महिलाएँ भी शामिल थे।
23. राममनोहर लोहिया रचित 'वी बिल्ड फॉर सोशलिज्म'(1951), 'फ्रैगमेंट्स ऑफ ए वर्ल्ड माइंड'(1951) तथा 'बरगद की बात'(1957) आदि में इन बिंदुओं को चिन्हित किया गया है। इस सम्बन्ध में प्रासंगिक पुस्तिकाओं और अन्य प्रकाशनों का संकलन नेहरू मेमोरियल लाइब्रेरी (नई दिल्ली) में उपलब्ध है।
24. नारायण, जयप्रकाश (1973) आमने-सामने (वाराणसी, सर्व सेवा संघ)
25. लोहिया, राममनोहर (1966) आजाद हिन्दुस्तान के नए रुझहान (हैदराबाद, नवहिंद प्रकाशन); 'रेवोलुशन अरेस्टेड' (मैनकाइंड; जुलाई-अगस्त, 1966)।

पूर्ण लोकतंत्र अर्थात् पंचायती राज का निर्माण - डा. लोहिया

हम किसलिए लड़ रहे हैं? ...मूल रूप से हमारा उद्देश्य एक नया गोवा बनाना है, जहाँ हर गोवावासी एक योग्य और खुशहाल नागरिक हो, जो पूर्ण लोकतंत्र की गरिमा को प्राप्त करने एवं स्वतंत्र और एकजुट हिंदुस्तान के लिए जीने और मरने को तियार है...

पूर्ण लोकतंत्र क्या है? गोवा के लिए इसका मतलब है कि पाँच लाख लोग वास्तव में पाँच लाख होने चाहिए. आप में से प्रत्येक को सक्रिय होना चाहिए और समझदारीपूर्वक स्वशासन के लिए तैयार होना चाहिए। सारा हिंदुस्तान ऐसे लोकतंत्र के लिए प्रयास कर रहा है।

लोकतंत्र के लिए शिक्षा या धन संपदा का होना ही कोई योग्यता नहीं है। किसी व्यक्ति की लोकतंत्र के लिए जाने और मरने की इच्छा ही सच्ची योग्यता होती है। कभी-कभी गरीब और अनपढ़ लोग लोकतंत्र के लिए बेहतर होते हैं क्योंकि वे अपने दैनिक जीवन में इसकी आवश्यकता देखते हैं और इसे प्राप्त करने के लिए तैयार रहते हैं या प्रयास करते हुए मर जाते हैं।

लोकतंत्र का अर्थ है विदेशी शासन का अंत। इसका

अर्थ है पंचायती राज का निर्माण। लेकिन इसका मतलब इससे कहीं ज्यादा है - ऐसी लोकतांत्रिक मन:स्थिति का निर्माण, जिसमें हर व्यक्ति राजा होता है। विशाल राष्ट्रीय शक्ति की इस दुनिया में, कोई भी ब्राह्मण या अमीर आदमी तब तक राजा नहीं हो सकता, जब तक कि किसान या मछुआरा एक ही समय में उसके समान ही राजा न हो। राजा बनने के लिए हर एक को परिश्रम करना पड़ता है। यह ऊपर से उपहार के रूप में आपके पास नहीं आता है।

गोवा में हम जिस पूर्ण लोकतंत्र का निर्माण का प्रयास कर रहे हैं, उसके तहत हमें योग्यता और सीखने की क्षमता के बीच भ्रमित नहीं होना चाहिए। प्रत्येक गोवावासी, युवा हो या बूढ़ा, विद्वान् हो या अनपढ़, लोकतंत्र के लिए उतनी ही क्षमता रखता है, जितनी उसके पास कार्रवाई करने और कष्ट सहने की क्षमता हो।

मैंने आपके राजनीतिक कार्यकर्ताओं के सामने सत्याग्रह और ग्राम पंचायत के दो कार्यक्रम रखे हैं।

सत्याग्रह कार्यक्रम -

जन प्रतिरोध (एक सप्ताह में दो सौ प्रतिरोध); किसान मोर्चा (कर और लगानबंदी के लिए गाँवों में मोर्चे; गाँवों के समूहों का शहर की ओर मार्च); चावल और अन्य खाद्य पदार्थों पर सीमा शुल्क हटाने के लिए कस्बों में प्रदर्शन; शराब की दुकानों पर महिला प्रदर्शन; विद्यार्थियों की टोलियों का स्कॉट-परेड बहिष्कार और गाँवों में जन संपर्क यात्रा; स्टांप-राजस्व और लाटरी के खिलाफ अभियान; प्रचार इकाइयों का गाँवों में ग्रामीण समस्याओं और संघर्ष के बारे में भाषण, नारे, गीत, एकांकी नाटक आदि सांस्कृतिक गतिविधियाँ (सं. - यह मूल पाठ का सारांश है)।

ग्राम पंचायत -

पंचायत का गठन निम्नलिखित संकल्प की घोषणा के आधार पर होगा:

"हम ग्रामवासी स्वतंत्र रूप से निश्चित कर चुके हैं कि ग्रामराज के सिद्धांत से प्रेरित होकर अपनी पंचायत बनाएंगे। हम अपने विवादों को आपस में सुलझाएंगे और कोर्ट नहीं जाएंगे। हम स्टांप पेपर का उपयोग नहीं करने का भी निर्णय लेते हैं। जब भी हमें राष्ट्रीय कांग्रेस, गोवा द्वारा सलाह दी जाएगी तो हम फसल कटाई के मौसम में किराया और कर का भुगतान करने से भी मना करेंगे। इस बीच हम सत्याग्रह अभियान को अपना समर्थन देने का संकल्प लेते हैं और इसमें भाग लेने का निर्णय करते हैं। इन उद्देश्यों के लिए, हम अपनी कार्यकारिणी का चुनाव करने का निर्णय लेते हैं। हम सभी सक्षम पुरुषों का एक स्वयंसेवी दस्ता बनाने का भी निर्णय लेते हैं और महिलाओं को इसकी महिला शाखाओं में शामिल होने के लिए आमंत्रित करते हैं। हम शराब के खिलाफ भी काम करेंगे।"

कार्यकारिणी के चुनाव में जनसंख्या की सभी जातियों और वर्गों को शामिल करने की सावधानी बरतनी चाहिए। गाँव के सेवादल में से पाँच-पाँच के जत्थों में सत्याग्रही भरती की जानी चाहिए और उन्हें महाल (नगर) के सत्याग्रह अभियान में भेजा जाना चाहिए।

सभी जोखिमों से गुजरने और सभी आदेशों की तामील करने के इच्छुक पाँच दृढ़-संकल्पित व्यक्तियों की टोलियाँ बनाई जानी चाहिए। ऐसी टोलियों के नेता का संकट के समय गाँव का नेतृत्व करने की क्षमता के आधार पर चयन करना चाहिए।

खाद्य पदार्थों की बगैर मुनाफे के बिक्री के लिए पेरनेम, सतारी, क्यूपेम, संगम और कैनकोना के प्रत्येक सीमावर्ती महाल में तुरंत दो गाँवों का चयन करते हुए पंचायतों में व्यवस्था की जानी चाहिए। वितरण निश्चित और सामान राशन के आधार पर किया जाना चाहिए।

इन कार्यक्रमों के साथ आपके राजनीतिक कार्यकर्ता विभिन्न वर्गों और यूनियनों, रेलकर्मियों, मोटर चालकों, किसानों, विद्यार्थियों, मछुआरों और अन्य समूहों को संगठित करने में आपकी सहायता करेंगे। चूँकि ये संघ बहुत खुले तौर पर काम नहीं कर सकते इसलिए आपको व्यापक एकता बनानी होगी। एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता बरतते हुए आप सभी को तेजी से काम करना चाहिए। यदि आप अगले दो-तीन महीनों में इन विभिन्न कार्यक्रमों को अंजाम देते हैं, तो एक ऐसी परिस्थिति पैदा हो जाएगी कि आम हड़ताल के हथियार के द्वारा आप पुर्तगाली सरकार को अपनी स्वतंत्रता स्वीकार करने या गोवा छोड़ने का लिए बाध्य कर सकते हैं।

(स्रोत: गोवा में क्रांति - डॉ. राममनोहर लोहिया (मूल 1946; 2021)
(ग्वालियर, आई टी एम पब्लिकेशंस, आई टी एम यूनिवर्सिटी) 19-36

प्रेम प्रकाश

लोक, परंपरा और विकेंद्रित ढाँचे पर जेपी के सुझाव

भारत के आधुनिक इतिहास में लोकनायक जयप्रकाश नारायण एक युगांतरकारी मोड़ पर खड़े हैं। वे लंबे संघर्ष के बाद मिले स्वराज की वैचारिक ऊर्जा के लोकजीवन के धरातल पर उतरने के बाद उसकी वास्तविक परिणति के भी साक्षी हैं। सत्ता के विकेंद्रीकरण को लेकर उनके सुझावों पर एक दृष्टि

भारतीय राज-व्यवस्था को लेकर जयप्रकाश नारायण की चिंता और इसके विकेंद्रीकरण पर उनके सुझावों की चर्चा से पहले कुछ बातों की सफाई जरूरी है। सफाई की यह दरकार हमें बहुत दूर नहीं ले जाती। यह दूरी बहुत कम है या कहें कि है भी नहीं। ग्राम-स्वराज या सत्ता के विकेंद्रित ढाँचे की जो समझ गांधी दे गए, वही बात आगे प्रासंगिक और व्यावहारिक दरकारों के साथ अन्य लोगों ने रखी। जेपी का महत्व इसलिए ज्यादा है कि वे गांधी और उनके प्रयोग के बीच के उस पड़ाव से भी जुड़े हैं, जहाँ विनोबा भूदान और ग्रामदान के अपने प्रयोग के साथ खड़े हैं।

बहरहाल बात उस स्पष्टता की जिसकी डोर थामकर हम इस दिशा में आगे बढ़ सकते हैं और विवेक के साथ समाधानकारी गंतव्य तक पहुँच सकते हैं। सरकार और उसकी नियामक व्यवस्था को लेकर दुनियाभर में ज्यादातर विमर्श का प्रस्थान और विस्तार सत्ता के एक ऐसे स्वरूप को सामने लेकर आता है, जिसमें सत्ता और अधिकार केंद्रित है, सर्वाधिक प्रभावशाली है। विश्व इतिहास में औपनिवेशिक दौर ने शासन के इस मॉडल और समझ को और गाढ़ा किया। यह गाढ़ापन कम होने के बजाय और बढ़ा है, उत्तर-औपनिवेशिक ढाँचे के तौर पर सामने है। आशीष नंदी अपनी किताब 'द इंटिमेट एनिमी' (जिगरी दुश्मन) में इस बारे में गहरी तार्किक समझ के साथ बात करते हैं। यहाँ यह बात समझनी जरूरी है कि औपनिवेशिकता के विरोध में भी सत्ता के इस केंद्रीकृत ढाँचे का विरोध या तो कमजोर रहा या फिर नदारद। इस कमी को पूरा करते हैं महात्मा गांधी। 'हिंद स्वराज' में उन्होंने केंद्रीकृत सत्ता की हिंसा और संवेदनहीनता पर रोशनी डाली तो आगे 'ग्राम स्वराज' की बात कर 'मेरे सपनों का भारत' का खाका भी सामने रखा। जीवन की आखिरी साँस तक वे इस सोच से टस से मस नहीं हुए। सत्याग्रह का उनका प्रयोग समाज और सत्ता के विकेंद्रित ढाँचे को लेकर कभी भी दुविधाग्रस्त नहीं रहा। यह और बात है कि आज इस दुविधाहीनता को 'एक असंभव संभावना' (सुधीर चंद्र की किताब) के तौर पर रेखांकित किया जाता है और बताया जाता है कि चेतना और समाज के अहिंसक चरित्र को वे इतनी दूर तक मुकम्मल और कारगर देखना चाहते हैं, जितनी दूर तक मानवीय अभ्यास इतिहास के अब तक के अपने अनुभव में या तो शामिल नहीं है या फिर इसकी उम्मीद व्यवहार के स्तर पर बेईमानी है। यही वजह है कि लोकधरा पर गांधी के प्रयोग को सुंदर अल्पना की तरह देखने वालों ने भी उन्हें 'यूटोपियन' कहा, उनके विचार सूत्र को अव्यावहारिक माना।

नीदरलैंड्स इंस्टीट्यूट ऑफ न्यूरोसाइंस की सोशल न्यूरोलॉजिस्ट एमिली कैस्पर ने एक दिलचस्प शोध किया है। ''कैस्पर जानना चाहती थीं कि सत्ता के विरोध का निर्णय लोग निर्भीकता से करते हैं या ऐसा करते हुए वे किसी भय से दबे होते हैं। शोध के नतीजे से यह बात जाहिर हुई है कि अनजाने ही सत्ता के साथ सहमति की मनोवैज्ञानिक स्वाभाविकता हाल के दौर में बढ़ी है। अपने शोध अध्ययन की व्याख्या करते हुए कैस्पर कहती हैं कि बगैर उचित प्रशिक्षण और जागरूकता के लोग सत्ता के खिलाफ अपनी असहमति को खुले विरोध के मोर्चे तक ले जाने से भागते हैं। कैस्पर के अध्ययन और उसके

नतीजे को अगर भारत के मौजूदा हालात से जोड़कर देखें तो विमर्श का एक नया आधार विकसित हो सकता है।[1]''

कैस्पर की बातों की दरकार राज-व्यवस्था को लेकर गांधी और जेपी की समझ को प्रासंगिकता की उस सतह पर ले आती है, जहाँ केंद्रीकृत सत्ता के अति शक्तिशाली होने का खतरा पूरी लोकतांत्रिक प्रणाली और उसकी बुनियादी अवधारणा को आघात पहुँचा सकता है, मौजूदा अनुभव में तो पहुँचा रहा भी है। सत्ता के इकहरे और केंद्रीकृत ढाँचे में राजकीय नेतृत्व कैसे अराजक और व्यक्तिवादी हो जाता है, इस खतरे को ग्लोब के तमाम हिस्सों में आज महसूस किया जा रहा है। दिलचस्प यह कि इस खतरे को जेपी ने 1959 में तब रेखांकित किया था, जब यह खतरा इतना बड़ा नहीं था। यह भी कि इस बारे में कोई बड़ी और आधारभूत समझ भी विचार के स्तर पर तब कहीं नहीं दिख रही थी। भारतीय राज-व्यवस्था की ढाँचागत कमी पर अपने 'सुझाव' के तौर पर जेपी ने जो बातें 'ए प्ली फॉर रिकंस्ट्रक्शन ऑफ इंडियन पॉलिटी' के तौर पर छह दशक पहले देश-दुनिया के सामने रखीं, वह आज एक ऐसे ऐतिहासिक दस्तावेज का नाम है, जो गांधी के अहिंसा और संघर्ष के बीच भारतीय इतिहास में सर्वाधिक प्रतिष्ठा और प्रतिबद्धता के साथ खड़ा दिखाई पड़ता है। बाद में पुस्तकीय रूप में सामने आए जेपी के तैयार इस दस्तावेज को अखिल भारत सर्व सेवा संघ प्रकाशन ने 'भारतीय राज्य-व्यवस्था की पुनर्रचना का एक सुझाव' के तौर पर हिंदी में भी प्रकाशित किया। इसके प्राक्कथन में जेपी जो पहली बुनियादी बात कहते हैं उसमें निर्वाचन पद्धति का जिक्र करते हैं। अगर जयप्रकाश के विचार की क्रमबद्धता कोई इतिहास के बड़े फलक पर भी देखना चाहता है तो भारतीय लोकतंत्र में निर्वाचन पद्धति के दोष की बात जेपी बिहार आंदोलन के दौरान भी करते हैं, जिसमें 'राइट टु रिकॉल' तक के लोकतांत्रिक दरकार को वे रेखांकित करते हैं। जेपी लिखते हैं, "पहली बात जिस पर मैं जोर देना चाहता हूँ, वह यह है कि जो प्रश्न हमारे सामने उपस्थित है, उसे वर्तमान निर्वाचन-प्रणाली की अपेक्षा किसी उन्नत प्रणाली तक ही सीमित नहीं किया जा सकता। हमारे सामने उपस्थित विषय इससे कहीं अधिक व्यापक और विस्तृत है- वह यह कि आज के जमाने में हमारे लिए सर्वोपयुक्त राज्य पद्धति अथवा राज्य-शासन व्यवस्था का स्वरूप क्या हो। दूसरी बात ध्यान में रखने की यह है कि राज्य-व्यवस्था का स्वरूप चाहे जैसा भी हो, वह शून्य में स्थापित नहीं किया जा सकती। उसका उद्देश्य समाज का व्यापक हित है, अतः उसे तदनुरूप ही होना चाहिए।[2]"

साफ है कि वे राज्य-व्यवस्था में ऐसे किसी ऊपरी सुधार को लेकर फिक्रमंद नहीं हैं, जिसे मत और मतदान की प्रक्रिया के बीच किसी सुधारवादी निर्णय से पूरा किया जा सके। ऐसी कुछ माँग देश में जब-तब अलग-अलग विचार प्रवाह के लोग करते रहते हैं। जेपी की मूल चिंताएँ ज्यादा गहरी और मौलिक हैं, जिस पर वे तर्क और विवेक के साथ बात करते हैं। इस मुद्दे पर आगे उनके शब्द हैं, "मैं यहाँ जो सुझाव प्रस्तुत कर रहा हूँ, उसमें उस राज्य-शासन-व्यवस्था की रूपरेखा उपस्थित की जाएगी, जो मेरे मत से हमारे देश के लिए सर्वथा उपयुक्त तो है ही, साथ ही अत्यंत तर्कसम्मत और विवेकसम्मत भी है।[3]"

कैस्पर के शोध की बात हम पहले कर चुके हैं। ये बातें आज कई लोग और विचार समूह भी कह रहे हैं और इस आधार पर शोधपूर्ण व्याख्या कर लोकतंत्र की चिंता और समाधान का विमर्श गढ़ रहे हैं। जेपी चिंता और समाधान की इस जमीन पर छह दशक पहले पहुँचते हैं। यही नहीं, इस चिंता के गोत्र और गंगोत्री दोनों को लेकर खासी स्पष्टता से अपनी बात कहते हैं। 'भारतीय राज्य-व्यवस्था की पुनर्रचना का एक सुझाव' के आरंभ में ही वे ठोस और स्पष्टवादी लहजे में कहते हैं, "पश्चिम की वर्तमान राज्य व्यवस्था का आधार विकीर्ण मानव-समाज है, जिसमें राज्य का निर्माण वैयक्तिक ढांचे पर हुआ है। किंतु यह आधार गलत है, क्योंकि इसमें मनुष्य की सामाजिकता और समाज के वैज्ञानिक संगठन दोनों की उपेक्षा है। प्राचीन भारतीय राज्य व्यवस्था में इन बातों का ध्यान रखा गया है।"

यहाँ यह बात गौर करने की है कि जेपी देश की मौजूदा लोकतांत्रिक ढाँचे या राज्य-व्यवस्था को लेकर अपनी बात को उस परंपरा और प्राचीनता से जोड़ते हैं, जिसे लेकर आज तक हम कई तरह के पूर्वग्रहों के शिकार रहे हैं। इस दिशा में ज्यादा विस्तार में न जाते हुए जो एक बात खास तौर पर समझने की है, वह यह कि जेपी अपने सुझावों के साथ खुद अपनी वैचारिक समझ की भी नई धुली शिनाख्त लोगों के सामने रखते हैं। यह शिनाख्त साम्यवादी, समाजवादी, सर्वोदय के लिए जीवनदान करने और सक्रिय राजनीति को प्रणाम कर चुके उस लोकनायक की है, जो सत्य और संघर्ष के साझे में यकीन करता है और गांधी के रचनात्मक प्रयोगों की शृंखला में भूदान-ग्रामदान आंदोलन की सर्वोदयी धारा में बहुत दूर तक प्रतिबद्ध भाव से चलने के बाद देश और व्यवस्था को लेकर अपनी आंतरिक दुविधा और असमाधान को एक टिकाऊ और ठोस निष्कर्ष देना चाहता है।

वे लिखते हैं, "मैंने इस प्रश्न पर किसी पूर्वनिश्चित धारणा की दृष्टि से विचार नहीं किया है। साथ ही, इस बात का भी ध्यान रखा है कि जो विचार मैं यहाँ व्यक्त कर रहा हूँ, उसे किसी वाद का 'संज्ञा' न दी जाए। समुदायवादी (Communitarian) अभिधान का प्रयोग भी अनिच्छापूवर्क ही करना पड़ा है। कभी-कभी ऐसे व्याख्यात्मक शब्द अनिवार्य हो जाते हैं। ... 'सर्वोदय समाज' की स्थापना के लिए प्रयत्नशील मेरे बंधु इस प्रबंध में 'सर्वोदय' शब्द का प्रयोग न देखकर कदाचित न चौंके। किंतु मैं समझता हूँ कि मेरी इस मीमांसा का उद्देश्य सबका कल्याण और सबका कल्याण ही है।[4]"

अपने 'सुझाव' को व्यवस्थित तरीके से रखते हुए जेपी उस चिंता को सतह पर लाते हैं जिस संबंध में कैस्पर के शोध का जिक्र हम पहले कर चुके हैं। यहाँ वे इस धारणा पर भी सवाल खड़ा करते हैं कि लोकतंत्र की अवधारणा को पश्चिमी समझ और राजकीय ढाँचे में देखने के अपने खतरे हैं और इसका भुक्तभोगी आजादी के बाद भारत भी बना। व्यक्तिवादी लोकतंत्र किस तरह अधिनायकवादी खतरों तक पहुँचता है, उस बारे में वे कहते हैं, "यह संदिग्ध है कि 'जनता' अनंतकाल तक इस स्थिति से परितुष्ट रह सकेगी। और फिर अधिनायकावदी व्यवस्था की ओर से जो व्यापक प्रहार हो रहे हैं, उन्हें देखते हुए क्या यह चिंता नहीं होती कि लोकतांत्रिक

व्यवस्था के अधीन रहने वाले लोग स्वशासन की स्थिति का अनुभव नहीं कर पा रहे हैं।[5]"

भारतीय उपमहाद्वीप से लेकर यूरोप और अमेरिका तक आज सरकारों के गठन और उनके लोकतांत्रिक आचरण को लेकर जो एक बड़े मोहभंग की स्थिति दिख रही है, वह बड़े असंतोष और संघर्ष को जन्म देगा, यह बात जेपी जिस आधार पर काफी पहले समझ रहे थे, वह आधार निश्चित तौर पर वह है जिसे लोकतंत्र को जनता के 'प्रत्यक्ष शासन' या 'डायरेक्ट डेमोक्रेसी' के तौर पर देखते हुए एक अन्य अतिरेक को रचते हैं। लोकतंत्र के बारे में खासतौर पर एचबी मेयो की इस बात को रेखांकित करते हुए जेपी आगे आपनी बात कहते हैं, "लोकतांत्रिक व्यवस्था का वास्तविक रूप तो यह है कि जनता ही प्रत्यक्ष रूप से शासन करे, अपने लिए कानून बनाए, न्याय व्यवस्था का संचालन करे और (यद्यपि कठिन कार्य है, फिर भी) प्रशासन का कार्य स्वयं चलाए या उसकी देखरेख करे।[6]"

इस क्रम में जेपी साफ करते हैं, वे लोकतंत्र को लेकर दोषमुक्ति के किसी अखिल या अव्यावहारिक तकाजे से दूर रहकर कुछ सामान्य और व्यावहारिक सुझावों को देश-समाज के सामने रखना चाहते हैं। वे कहते हैं, "विद्वतजनों के प्रति श्रद्धावनत होकर भी और यह मानकर भी आदर्श पूर्णत: प्राप्य नहीं है, मेरा आग्रह ऐसी लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए है, जिसमें अधिक से अधिक लोग अपना अधिक से अधिक शासन कर सकें।[7]"

दिलचस्प है कि जेपी अपने 'सुझाव' से पहले गांधी के उस कथन को स्वतंत्र तौर पर रखते हैं, जिसमें गांधी कहते हैं- "...प्रत्यक्ष प्रदर्शन द्वारा लोकतंत्र के सच्चे विज्ञान के उद्विकासन का श्रेय भारत के लिए सुरक्षित रहे।" बिहार आंदोलन के दौरान गांधी के नैतिक आदर्श के बूते जेपी की यह समझ ज्यादा साकार रूप में दिखी। "(बिहार) आंदोलन के दूसरे चरण में जेपी ने जनता सरकार की बात कही और बिहार के लगभग 40 क्षेत्रों में जनता सरकारों ने पहला कदम सरकार के स्थानीय कामों और कार्यालयों की निगरानी का उठाया तो मतदाता का सजग, सक्रिय, स्वायत्त रोल प्रकट हुआ। एक ऐसा पॉलिटिकल सावरेन को महज मतदाता नहीं रखा, बल्कि उसे लोकतंत्र के स्थनीय विकास का माध्यम बना दिया। उसके ऊपर एक प्रत्यक्ष जिम्मेवारी आ गई। ऐसा करने में उन्होंने संविधान का उल्लंघन नहीं किया बल्कि लोकतंत्र में लोक की शक्ति का नया स्रोत ढूँढ निकाला।[8]"

दरअसल, "जेपी ने 1974 में जब देखा कि संविधान का प्रयोग लोकतंत्र के विरुद्ध किया जा रहा है तो उन्होंने इसी 'पॉलिटिकल सावरेन' का आह्वान किया। यह सही है कि पॉलिटिकल सावरेन की मान्यता संविधान में नहीं है, किंतु लोकतंत्र में है। संविधान की रचना भारत में पॉलिटिकल सावरेन के नाम में ही हुई है। जेपी का यही तर्क था कि लोकतंत्र को संविधान के पन्नों में नहीं बाँधा जा सकता है। और जब संविधान स्वयं प्रतिनिधियों के हाथ में जुल्म का साधन बन जाए (जैसा वह बाद को इमरजेंसी में बन गया और जनता के प्रतिनिधि निरंकुशता पर मुहर लगाते चले गए) तो पॉलिटिकल सावरेन का कर्तव्य हो जाता है कि संविधान के बाहर जाकर लोकतंत्र की रक्षा करें।[9]"

राज्य-व्यवस्था को लेकर अपनी समझ को 'सुझाव' की शक्ल में तार्किक निचोड़ के साथ रखते हैं, "अब हम पुन: भारतीय राज्य-व्यवस्था के आधार की ओर आते हैं। जैसा कि कहा जा चुका है, यह आधार होगा, स्वाधिकार प्राप्त, आत्मनिर्भर, कार्षिक, औद्योगिक, नागर-ग्राम्य स्थानीय समुदाय। स्थानीय समुदाय की सर्वोच्च राजनीतिक संस्था होगी ग्रामसभा और सभी वयस्क निवासी इसके सदस्य समझे जाएंगे। कार्यपालिका अर्थात पंचायत का चयन ग्रामसभा के सभी सदस्यों की सहमति से होगा। कोई व्यक्ति किसी पद के लिए प्रत्याशी नहीं होगा। सभी चयनात्मक पदों के लिए प्राचीनकाल की भाँति ही स्पष्ट अहर्ताएँ होंगी। निर्धारित अवधि के पश्चात कोई व्यक्ति उसी पद पर प्रतिष्ठित नहीं हो सकेगा। पंचायतों का काम विभिन्न उपसमतियों के माध्यम से होगा, जिसके काम बँटे रहेंगे। पंचायत या उसकी किसी उपसमिति में कोई अधिकारी या राज्य द्वारा नियुक्त अथवा नामजद सदस्य न रह सकेगा।[10]"

इस संबंध में जो बात खासतौर पर अंतिम तौर पर गौर करने की है, वह यह कि राज्य-व्यवस्था को लेकर जेपी अपनी बात उस आलोक में कहते हैं जिसमें राज्य-व्यवस्था की प्राचीनता और परंपरा भारतीय समाज निर्माण की परंपरा रही है। हिंदी साहित्य का इतिहास लिखते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'लोक' और 'परंपरा' पर जोर देते हैं। यह जोर इस कदर प्रभावी हुआ कि हिंदी साहित्य और आलोचना के लिए ये बीज शब्द बन गए। भारत में राज्य-व्यवस्था की जेपी की पुनरर्चना का तर्क और निष्कर्ष भी इन दो बीज शब्दों पर ही आधारित है। सुझाव से पहले प्राक्कथन में उनके शब्द हैं, "दूसरे अध्याय में भारतीय राज्य-शासन-व्यवस्था का वर्णन इसलिए किया गया है कि वह हमें आगे बढ़ने में मार्गदर्शिका का काम कर सके। तीसरे अध्याय में मैंने प्राचीन भारतीय ग्राम समाज की चर्चा इस कारण की है कि लोग उसे समझें और अपना मार्गदर्शक मानें।[11]"

संदर्भ

1. विकल्पहीनता के विरोध का विमर्श, 28 जुलाई 2018, पृष्ठ-4, हस्तक्षेप, राष्ट्रीय सहारा
2. जयप्रकाश नारायण; भारतीय राज्य-व्यवस्था की पुनर्रचना का एक सुझाव, (1959), अखिल भारत सर्व-सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, काशी, पृ. 1
3. वही, पृ. 1
4. वही, पृ. 1
5. वही, पृ.2
6. वही, पृ. 2
7. वही, पृ. 3
8. आचार्य राममूर्ति; शिक्षा, संस्कृति और समाज, (1990), श्रम भारती, खादीग्राम, मुंगेर, बिहार, पृ.-225-226
9. वही; पृ. 225
10. जयप्रकाश नारायण; भारतीय राज्य-व्यवस्था की पुनर्रचना का एक सुझाव, (1959), अखिल भारत सर्व-सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, काशी, पृ. 76
11. वही; पृ. 2

योगेश कुमार

विकेंद्रीकरण की नेहरूवादी दृष्टि

हमारी राजनीतिक व्यवस्था में स्थानीय पंचायतों की भूमिका को लेकर गांधी जी और नेहरू जी के अपने-अपने मत थे। इस मत वैभिन्य ने व्यवस्था को किस तरह प्रभावित किया, एक विहगावलोकन

राजस्थान के नागौर जिले में 2 नवंबर 1959 को पंचायती राज अधिनियम के मूर्त रूप लेने के बाद प्रदेश में पहली बार चुने हुए पंचायत प्रतिनिधियों के कार्यक्रम के उद्घाटन अवसर पर पंडित जवाहरलाल नेहरू ने संबोधित किया। यह भाषण[1] स्थानीय शासन और विकेंद्रीकरण के संबंध में उनके विभिन्न दृष्टिकोण और धारणाओं को व्यक्त करता है। यहाँ इस बात को ध्यान में रखना जरूरी है कि आजादी के समय अखंड भारत के दो देशों में विभाजन से एक तरफ अत्यधिक जनहानि हुई, वहीं दूसरी ओर जर्जर अर्थव्यवस्था प्राप्त हुई थी। देश घोर गरीबी, भूख और विकास में पिछड़ेपन के गंभीर संकट से गुजर रहा था। चूँकि देश ने कठिन समय में संप्रभुता प्राप्त की थी, इसलिए एक संघीय ढाँचे में एक मजबूत केंद्र के साथ स्थिर लोकतंत्र की स्थापना करना ही न्यायोचित था जो बहुत गंभीर और चुनौती से भरा काम था। भारत के संविधान में नीति निर्देशक तत्वों में विधानसभाओं को स्थानीय शासन प्रणाली के स्वरूप और कार्यों का प्रारूप बनाने का दायित्व सौंपा गया था।

संविधान सभा में हुई बहसों का विश्लेषण देश में स्थानीय शासन की उस परिकल्पना में विरोधाभास का संकेत देता है, जिसे गांधी जी ने ग्राम स्वराज[2] में व्यक्त किया था। गरीबी, शिक्षा, बुनियादी सुविधाओं, स्वास्थ्य जैसी प्राथमिक जरूरतों का समाधान करने के लिए प्रभावी आर्थिक विकास की परिकल्पना अधिकांश तत्कालीन राष्ट्रीय नेताओं की पहली प्राथमिकता थी। प्रस्तावित आर्थिक विकास और स्थानीय शासन का मॉडल जीवंत रूप से गांधी जी के ग्राम स्वराज के विचार के साथ इस तरह नहीं जुड़ पा रहा था, नीतियों में विरोधाभास स्पष्ट नजर आ रहा था। साथ ही बी.आर. अंबेडकर ने अपने भाषणों में जाति के आधार पर सामाजिक विभाजन के दुष्परिणामों की संभावनाओं की ओर इशारा किया। उन्होंने पंचायतों को 'अज्ञानता और स्थानीयता के गढ़' के रूप में व्यक्त करते हुए पंचायतों द्वारा समावेशी विकास और स्वशासन की जड़ों को कमजोर करने की संभावना व्यक्त की। उन्हें ऐसी आशंका थी कि ग्राम पंचायत की सत्ता पर अभिजात्य और उच्च जाति के लोगों वर्ग का कब्जा हो जाएगा।[3] इस विचार ने संवैधानिक रूप से स्थानीय शासन को स्थापित करने की पहल को कमजोर कर दिया था। इसलिए नेहरू जी केआधुनिक भारत के ताने-बाने में गांधी जी के ग्राम स्वराज और स्थानीय शासन को संविधान में यथोचित स्थान नहीं मिल सका।

नेहरू जी का नागौर का भाषण स्थानीय शासन के प्रति उनके दृष्टिकोण और विचारों को समझने के लिए प्रासंगिक है।[4] उन्होंने इसे एक ऐतिहासिक क्षण बताया और उल्लेख किया कि राजस्थान में स्थानीय सरकार की स्थापना के समय यदि आज गांधी जी होते तो वह बहुत खुश होते। उन्होंने दोहराया कि राजस्थान सरकार ने लोगों को जिम्मेदारियाँ सौंपी हैं और राजस्थान के लोगों ने 'लोकतंत्र की जिम्मेदारी' लेने का संकल्प लिया है। इससे जमीनी स्तर पर स्थानीय विषयों का प्रबंधन करने में आम लोगों की क्षमता पर उनके विश्वास का पता चलता है।

उनका भाषण स्थानीय शासन से जुड़ी आशंकाओं तथा 'भारत माता' की परिकल्पना को स्पष्ट करता है। उन्होंने कहा, "भारत माता का अर्थ है आप, मैं और हम सभी एक साथ

इस देश का हिस्सा हैं। हम अपनी भारत माता के लिए नए परिधान को तैयार करने की कोशिश कर रहे हैं। भारत माता का परिधान उसकी गरीबी के कारण जीर्ण-शीर्ण हो गया है। अब हम चाहते हैं कि भारत माता को नए कपड़े पहनाए जाएँ और वे एक सुंदर घर में रहे। हम यह भी चाहते हैं कि हमारे देश की सभी मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी हों। हम चाहते हैं कि हमारे देशवासियों को खाने के लिए पर्याप्त भोजन मिले और रहने के लिए आवास मिले। हम इन चीजों को दान या किसी की दया के रूप में नहीं चाहते, बल्कि इन्हें अपने प्रयासों से हासिल करना चाहते हैं।" यह दृष्टिकोण भारत को संपन्न, आत्मनिर्भर और मजबूत बनाने की आकांक्षा पुरजोर ढंग से पेश करता है।

खाद्य संकट से जूझ रही देश की जनता के लिए बड़ी मात्रा में गेहूँ (पीएल 480) का आयात संयुक्त राज्य अमेरिका से करना पड़ रहा था। इसलिए देश में अन्न उत्पादन बढ़ाना और भुखमरी तथा गरीबी को दूर करना सर्वोपरि प्राथमिकता थी। यह उल्लेख करने की आवश्यकता है कि 1956 और 1960 के बीच सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) के माध्यम से वितरित किए जाने वाले अन्न का 90% आयात किया जात था। उस समय भारत की अति गरीब 25% आबादी को सस्ता राशन उपलब्ध कराने के लिए जितने अनाज की जरूरत थी उसका आधा ही देश में उपलब्ध था। अनाज पर इतनी अधिक बाहरी निर्भरता उस समय के नीति निर्माताओं और राजनेताओं को परेशान कर रही थी। हालाँकि हरित क्रांति की ठोस रणनीति श्री लाल बहादुर शास्त्री के प्रधानमंत्रित्व काल में प्रारंभ की गई थी। हरित क्रांति की शुरुआत 1967-68 में तीसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान हुई थी।[5]

नेहरू जी के विचारों में विकेंद्रीकृत शासन का मॉडल आर्थिक प्रगति तथा सामुदायिक सशक्तीकरण का मिश्रण था। उन्होंने नागौर के भाषण में इस बात पर जोर दिया कि पंचायतों के काम को सहकारी समितियों के काम से अलग किया जाना चाहिए, जो पंचायतों और सहकारी समितियों के समानांतर अस्तित्व का समर्थन करता था। उनकी यह धारणा थी कि पंचायतें गाँव के दिन-प्रतिदिन के प्रशासन को संभालने में मदद करेंगी। दूसरी ओर सहकारी समितियों का उद्देश्य आर्थिक मामलों का प्रबंधन करना था। स्थानीय शासन को वे अफसरों द्वारा किए जाने वाले काम सौंपकर, परोक्ष रूप से स्थानीय शासन को सीमित कर रहे थे। जैसा कि उन्होंने कहा था कि "प्रशासन की जिम्मेदारियाँ केवल बड़े अधिकारियों के हाथों में नहीं होनी चाहिए बल्कि हमारे 40 करोड़ लोगों के बीच विभाजित होनी चाहिए।" नेहरू जी ग्राम पंचायतों को ग्राम स्वराज्य की इकाइयों के रूप में राजनीतिक सशक्तीकरण की बात नहीं कर रहे थे। जबकि गांधी जी का सपना प्रत्येक गाँव को एक आत्मनिर्भर 'गणराज्य' के रूप में विकसित करने का था, जहाँ आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की जिम्मेदारी स्थानीय नेतृत्व के पास हो।

उन्होंने सहकारिता की भूमिका को रेखांकित करते हुए विस्तार से वर्णन किया और कहा कि हमने पंचायतों के साथ-साथ सहकारी समितियों के कार्यों को भी उचित महत्व दिया है। विकेंद्रीकरण को लेकर उनकी अभिव्यक्ति उनके इस कथन में निहित थी कि हर गाँव में अधिक शक्तियों वाली एक ग्राम पंचायत होनी चाहिए, साथ ही पर्याप्त आर्थिक शक्तियों के साथ एक सहकारी समिति भी होनी चाहिए। यह उनके दृष्टिकोण को व्यक्त करता है कि आर्थिक विकास और प्रगति के लिए किसानों के समूह और अन्य उत्पादनकर्ता समूहों को अपने व्यावसायिक हितों को बढ़ावा देने के लिए एक साथ आना होगा। हालाँकि, ग्राम पंचायतों को जनहित से जुड़े मुद्दों पर ध्यान देते रहना होगा। भूमिकाओं के इस अंतर ने नेहरूजी की रणनीतिक सोच को प्रतिबिंबित किया। हालाँकि नेहरू जी ने फिर से सहकारी समितियों के आर्थिक कार्य को जनहित के साथ उलझा दिया था, जो कि स्थानीय स्वशासन यानी ग्राम पंचायतों का कार्यक्षेत्र था। उन्होंने कहा कि "सहकारी समितियाँ एक दूसरे के साथ अपने लाभ साझा करेंगी, छोटे कारखानों की स्थापना करेंगी, नए स्कूलों को खोलेंगी और सार्वजनिक अस्पतालों तथा पशु अस्पतालों की स्थापना भी करेंगी। अत: उनका मानना था कि पंचायती राज व्यवस्था के साथ-साथ सहकारिता से भी सभी ग्रामीणों को फायदा पहुँच सकता है, जैसे - बच्चों को शिक्षा के अवसर और सभी को रोजगार।"[6] ग्राम पंचायत की शक्तियों को समग्रता में परिभाषित नहीं किया। सहकारी समितियों के अधिक आर्थिक अधिकारों की पैरवी उनकी विकेंद्रीकरण की प्रतिबद्धता की सीमाएँ दर्शाता है।

उनके भाषण में तीसरे महत्वपूर्ण आयाम 'ग्रामीण शिक्षा' का उल्लेख किया गया था, जो ग्रामीण भारत के संदर्भ में उनकी व्यापक समझ को दर्शाता है। उन्होंने कहा, कि "हर दिन नए अवसर आ रहे हैं और हर गाँव में स्कूल होना जरूरी है ताकि ग्रामीणों को शिक्षा मिल सके। लेकिन इस बात का हमेशा ध्यान रखें कि शिक्षा न केवल पुरुषों के लिए आवश्यक है, बल्कि महिलाओं की भी शिक्षा तक समान पहुँच होनी चाहिए, क्योंकि कोई भी देश तब तक आगे नहीं बढ़ सकता जब तक कि उसमें पुरुष और महिलाएँ मिलकर एक समृद्ध राष्ट्र बनाने का प्रयास न करें। वे दिन गए जब महिलाओं को घरों की चारदीवारों के भीतर ही सीमित कर दिया जाता था और उन्हें पुरुषों की जिम्मेदारियों को साझा करने की

नेहरू जी के विचारों में विकेंद्रीकृत शासन का मॉडल आर्थिक प्रगति तथा सामुदायिक सशक्तीकरण का मिश्रण था। उन्होंने नागौर के भाषण में इस बात पर जोर दिया कि पंचायतों के काम को सहकारी समितियों के काम से अलग किया जाना चाहिए, जो पंचायतों और सहकारी समितियों के समानांतर अस्तित्व का समर्थन करता था। उनकी यह धारणा थी कि पंचायतें गाँव के दिन-प्रतिदिन के प्रशासन को संभालने में मदद करेंगी। दूसरी ओर सहकारी समितियों का उद्देश्य आर्थिक मामलों का प्रबंधन करना था

अनुमति नहीं थी।" उन्होंने अपने वक्तव्य में महिला-पुरूष लैंगिक समानता पर पर्याप्त बल दिया। उनके स्व-कथन में वर्णित तीन स्तंभों - पंचायत, सहकारी समितियाँ और विद्यालय - का हमारे ग्रामीण जीवन में महत्व नजर आता है। इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि नेहरू जी ने जमीनी स्तर पर आर्थिक और सामाजिक सशक्तीकरण के माध्यम से राजनीतिक सशक्तीकरण की कल्पना की थी।

नेहरू जी के विचार से ग्राम पंचायतों को शक्तियों के हस्तांतरण में दो अवरोध थे। पहला यह था कि प्रशासनिक नौकरशाही ग्राम पंचायतों को शक्तियों के हस्तांतरण का स्वागत नहीं करेगी। उन्होंने कहा कि "कभी-कभी हमारे अधिकारी खुद को स्वामी मानने लगते हैं। मुझे उम्मीद है कि आपके अध्यक्ष, सरपंच और अन्य पदाधिकारी इस तरह का व्यवहार नहीं करेंगे।" अनुभवों के आधार पर उन्हें भय यह था कि निर्वाचित प्रतिनिधि कहीं नौंकरशाही व्यवस्था का हिस्सा न बन जाएँ। उनका दूसरा भय जाति-आधारित भेदभाव का था जो विकेंद्रीकरण के लिए रोड़ा पैदा कर सकता था। उन्होंने कहा कि "हमें जातिगत भेदभाव को मिटाना चाहिए। आधुनिक भारत में किसी को भी दूसरों से श्रेष्ठ नहीं समझना चाहिए। राजनीतिक जीवन में हम सबके पास समान मताधिकार है, आर्थिक मामलों में हम सभी के पास समान अवसर होना चाहिए और हमारी पंचायतों में भी स्त्री- पुरुष और ऊँच-नीच का भेद छोड़कर सबको एक समान समझना चाहिए, "हम सब एक ही देश के बच्चे हैं"। आशय स्पष्ट था कि यदि समानता, समान अवसर और परस्पर सम्मान के सिद्धांतों का पालन नहीं किया गया तो विकेंद्रीकृत शासन निष्प्रभावी हो जाएगा। उनके यह विचार आज भी प्रासंगिक हैं।

नेहरू जी की रणनीतियों पर उस समय के आर्थिक संकट की छाया स्पष्ट देखी जा सकती थी। उद्योग और सेवा क्षेत्र में रोजगार का सृजन करना आवश्यक था। शिक्षा के साथ-साथ सहकारी आंदोलन के माध्यम से कृषि में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना उनकी चिंताओं का केंद्रबिंदु था। दूसरी पंचवर्षीय योजना समाप्त हो रही थी जिसने बिजली उत्पादन और सिंचाई सुविधाओं को बढ़ाने के लिए बड़े पैमाने पर बाँध बनाए थे। सार्वजनिक क्षेत्र के विभिन्न मुख्य क्षेत्रों में सार्वजनिक निवेश के माध्यम से भारी उद्योग जैसे भेल (बी. एच.ई.एल.), भिलाई स्टील प्लांट, बाल्को आदि स्थापित हो रहे थे। इन औद्योगिक इकाइयों में शिक्षित और कुशल लोगों की बहुत जरूरत थी। कृषि में अधिक उत्पादकता और समृद्धि के लिए ज्यादा उपज देने वाली किस्मों, पर्याप्त सिंचाई सुविधाओं और रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता थी। हरित क्रांति को बढ़ावा देने के लिए सहकारी आंदोलन की कल्पना की गई थी। नेहरू जी आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए केंद्र द्वारा नियंत्रित और

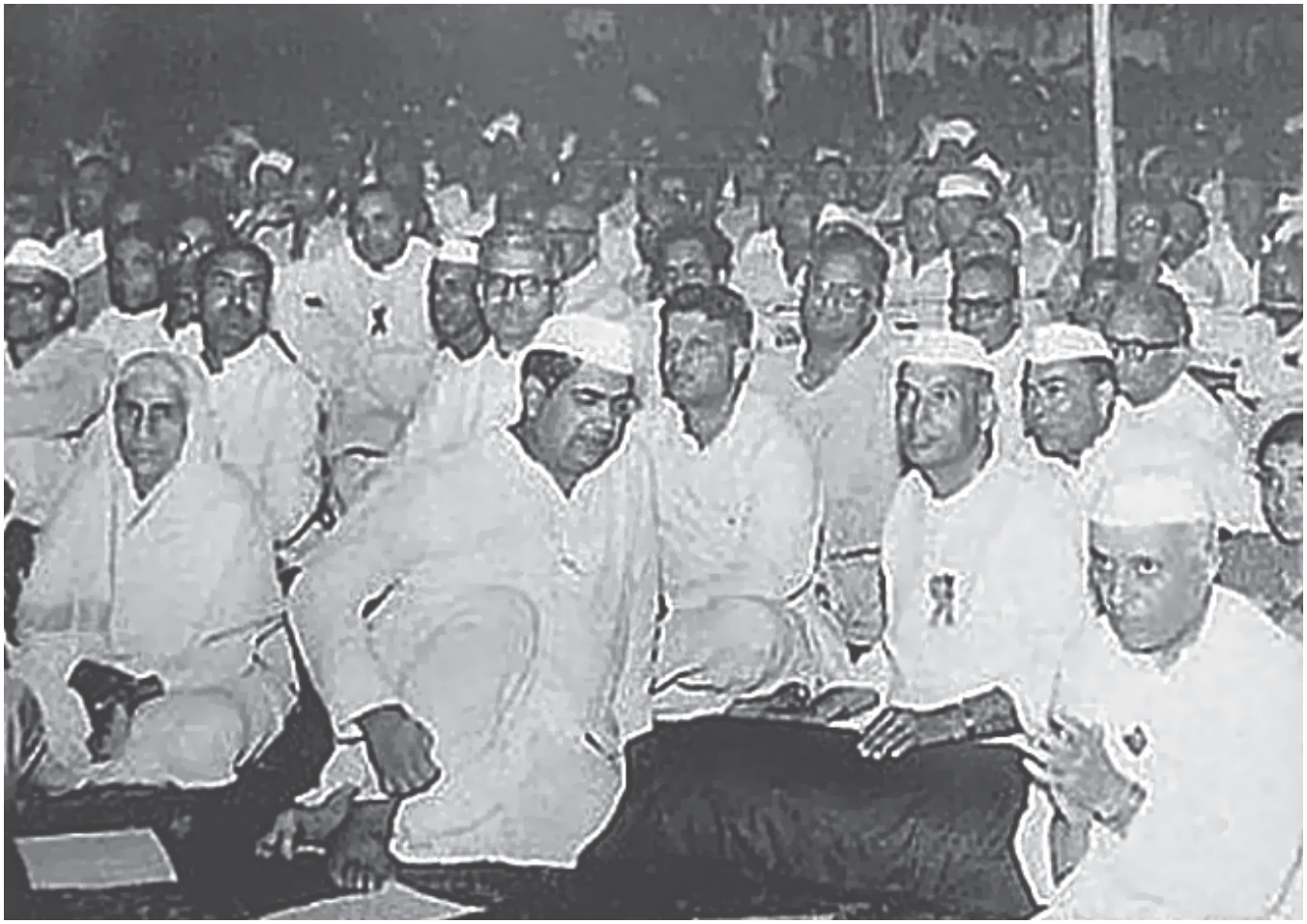

संचालित नीतियों में विश्वास रखते थे।[7]

यहाँ एक बड़ा प्रश्न चिह्न है कि नेहरू जी का औद्योगीकरण और विकास का रोडमैप भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक स्वभाव के अनुकूल था या नहीं? इसी तरह एक तरफ शक्तिशाली केंद्र का विचार और दूसरी तरफ विकेंद्रीकरण के लिए स्थानीय शासन और प्रत्यक्ष लोकतंत्र को मजबूत बनाने की बात में विरोधाभास था। स्वतंत्रता आंदोलन में बड़ी संख्या में भाग लेने वाले नेताओं की स्थानीय शासन में भागीदारी से गाँवों और कस्बों में अपनी सरकारें चलाने का एक बड़ा अवसर गँवा दिया। केंद्रीकृत और टॉप-डाउन मॉडल के कारण अन्नकोष के माध्यम से आत्मनिर्भरता का अभाव, सशक्त औद्योगीकरण और उच्च आर्थिक विकास के रूप में दिखाई दे रहे हैं। हालाँकि, 'योजनाबद्ध' टॉप-डाउन विकास मॉडल ने एक बड़ी आबादी को गरीबी, कुपोषण, निरक्षरता, पलायन के कारण विकास की दौड़ में पीछे छोड़ दिया है। यह लोगों की आत्मनिर्भरता तथा सामाजिक-सांस्कृतिक और आर्थिक विविधता के सम्मान के साथ विकास की योजना बनाने में गांधी के दर्शन के बिल्कुल विपरीत है। गाँधीजी ग्रामसभा में 'जनशक्ति' पर जोर दे रहे थे, जहाँ स्थानीय विकास और स्वशासन से संबंधित निर्णय लिए जाते हैं। भारत के संविधान का निर्माण करते समय समकालीन राजनीतिक नेतृत्व ने स्थानीय शासन और आर्थिक आत्मनिर्भरता के दो दृष्टिकोणों का एक अच्छे मिश्रण का मौका गँवा दिया।

गाँधी के आधुनिक भारत का सपना सतत विकास, पर्यावरण के प्रति संवेदनशील व्यवहार, श्रम आधारित औद्योगीकरण, स्वदेशी घरेलू उद्योगों के विकास आदि में अंतर्निहित था। जिससे अधिक समानता आधारित विकास प्राप्त किया जा सके। वे जानते थे कि पश्चिमी विकास मॉडल पर आधारित तीव्र आर्थिक विकास से असमानताएं और बढ़ेंगी। गांधी जी की सोच स्पष्ट थी कि स्थानीय सरकारों के माध्यम से आर्थिक विकास और सामाजिक समानता तभी संभव है जब स्थानीय सरकारें स्वयं निर्णय लेने में सक्षम हों। ग्राम पंचायतों और स्थानीय शहरी निकायों को अपने जिले की एक साझी योजना बनाने के लिए एक साथ आना होगा, ताकि अधिक टिकाऊ विकास प्राप्त कर सकें। गांधी जी के मॉडल में 'लोगों को शक्ति' का अर्थ होगा कि स्थानीय लोगों को स्थानीय रूप से शासन करने का अधिकार। राज्य और केंद्रीय सरकार तथा उनके प्रशासनिक तंत्रों को ऐसी नीतियों और योजनाओं को समेकित करने की क्षमता प्रदर्शित करनी चाहिए जहाँ आधुनिक ज्ञान और लोक ज्ञान का अनूठा सम्मिश्रण हो।

गाँधी के आधुनिक भारत का सपना सतत विकास, पर्यावरण के प्रति संवेदनशील व्यवहार, श्रम आधारित औद्योगीकरण, स्वदेशी घरेलू उद्योगों के विकास आदि में अंतर्निहित था। जिससे अधिक समानता आधारित विकास प्राप्त किया जा सके। वे जानते थे कि पश्चिमी विकास मॉडल पर आधारित तीव्र आर्थिक विकास से असमानताएं और बढ़ेंगी। गांधी जी की सोच स्पष्ट थी कि स्थानीय सरकारों के माध्यम से आर्थिक विकास और सामाजिक समानता तभी संभव है जब स्थानीय सरकारें स्वयं निर्णय लेने में सक्षम हों

बढ़ती हुई आर्थिक विषमताएँ, विभिन्न समुदायों में विकास की अपर्याप्त पहुँच, पर्यावरण का क्षरण, स्थानीय ज्ञान की उपेक्षा आदि निश्चित रूप से आज भी प्रमुख प्रश्न हैं। क्या भारत ने अपने संविधान में पंचायती राज के स्वरूप का सही चुनाव किया था? स्वतंत्रता के लगभग चार दशकों के बाद 73वें और 74वें संविधान संशोधन से भारत को जो स्थानीय शासन प्रणाली मिली है, क्या यह वही है जिसकी गाँधीजी ने परिकल्पना की थी? क्या गांधी जी की कल्पना के अनुसार आज की ग्राम पंचायतें स्थानीय गणतंत्र बन पाएंगी? वर्तमान सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य पर गंभीर आत्मनिरीक्षण की आवश्यकता है। जमीनी स्तर पर ढांचागत परिवर्तनों को प्राप्त करने के लिए 73वें और 74वें संविधान संशोधन के तहत परिभाषित स्थानीय सरकारों के स्वरूप, शक्ति और कार्यों विश्लेषण सार्थक होगा।

नोट : राजस्थान के नागौर जिले में पं. जवाहरलाल नेहरू के भाषण पर अधारित।

संदर्भ

1. पं. जवाहरलाल नेहरू का नागपुर भाषण। जन स्वराज, [ऑनलाइन] राजीव गांधी पंचायती राज संगठन, अगस्त 6, 2015। https://rgprs.wordpress.com /2015/08/06/nagaur-speech-of-pandit-jawahar-lal-nehru/
2. गांधी, मोहनदास करमचंद; हिंद स्वराज या इंडियन होम रूल, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, 1909
3. शिवरमकृष्णन, के.सी.; कोर्ट्स, पंचायत्स ऐंड नगपालिकाज: बैकग्राउंड ऐंड रीव्यू ऑफ केस लॉज, एकेडमिक फाउंडेशन, 2009, पृ.18
4. ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग, (ऑनलाइन) नवंबर 2, 2021। http://rajpanchayat.rajasthan.gov.in/en-us/aboutus/history.aspx.
5. वॉटर ऐंड एग्रीकल्चरल ट्रांसफॉर्मेशन इन इंडिया: अ सिंबियॉटिक रिलेशनशिप - II: शाह, मिहिर; विजयशंकर, पी.एस.; हैरिस, फ्रांसेस्का: इकोनॉमिक ऐंड पोलिटिकल वीकली, 2021, खंड LVI अंक 30
6. नेहरू'ज फ्रेमवर्क ऑफ पंचायती राज ऐंड रूरल डेवलपमेंट; पलनिथुरै, गणपति; मध्य प्रदेश इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंस रिसर्च, 2016, खंड 21
7. दांडेकर, वी.एम.; फोर्टी ईयर्स ऑफ इंडिपेंडेंस, [पुस्तक लेखक] बिमल जालान, द इंडियन इकोनॉमी: प्रॉब्लेम्स ऐंड प्रॉस्पेक्ट्स, 1992

''पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विषय में जानकारियाँ बहुत ही सीमित हैं। डॉ. महेशचंद्र शर्मा ने इस विषय पर गवेषणात्मक अध्ययन किया है। इस शोध-ग्रंथ का प्रकाशन न केवल जनसंघ की राजनीति व विचारधारा के प्रति लोगों को लाभदायक जानकारियाँ देगा वरन् राजनीति शास्त्र की वैचारिक बहस को भी आगे बढ़ाएगा। दीनदयाल उपाध्याय व भारतीय जनसंघ को समझने के लिए यह शोध-ग्रंथ प्रामाणिक आधारभूमि प्रदान करता है।''

—डॉ. इकबाल नारायण

पूर्व कुलपति-राजस्थान विश्वविद्यालय,
काशी हिंदू विश्वविद्यालय तथा नॉर्थ-ईस्ट हिल्ज यूनिवर्सिटी,
पूर्व सदस्य-सचिव, भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद्

''यदि मुझे दो दीनदयाल मिल जाएँ, तो मैं भारतीय राजनीति का नक्शा बदल दूँ।''

—डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी

पं. दीनदयाल उपाध्याय द्वारा लिखित पुस्तकें

प्रभात प्रकाशन
ISO 9001 : 2008 प्रकाशक
www.prabhatbooks.com

ISBN 978-93-5186-262-8
₹ 500/-

पं. दीनदयाल उपाध्याय
कर्तृत्व एवं विचार
डॉ. महेशचंद्र शर्मा

पं. दीनदयाल उपाध्याय
कर्तृत्व एवं विचार
डॉ. महेशचंद्र शर्मा

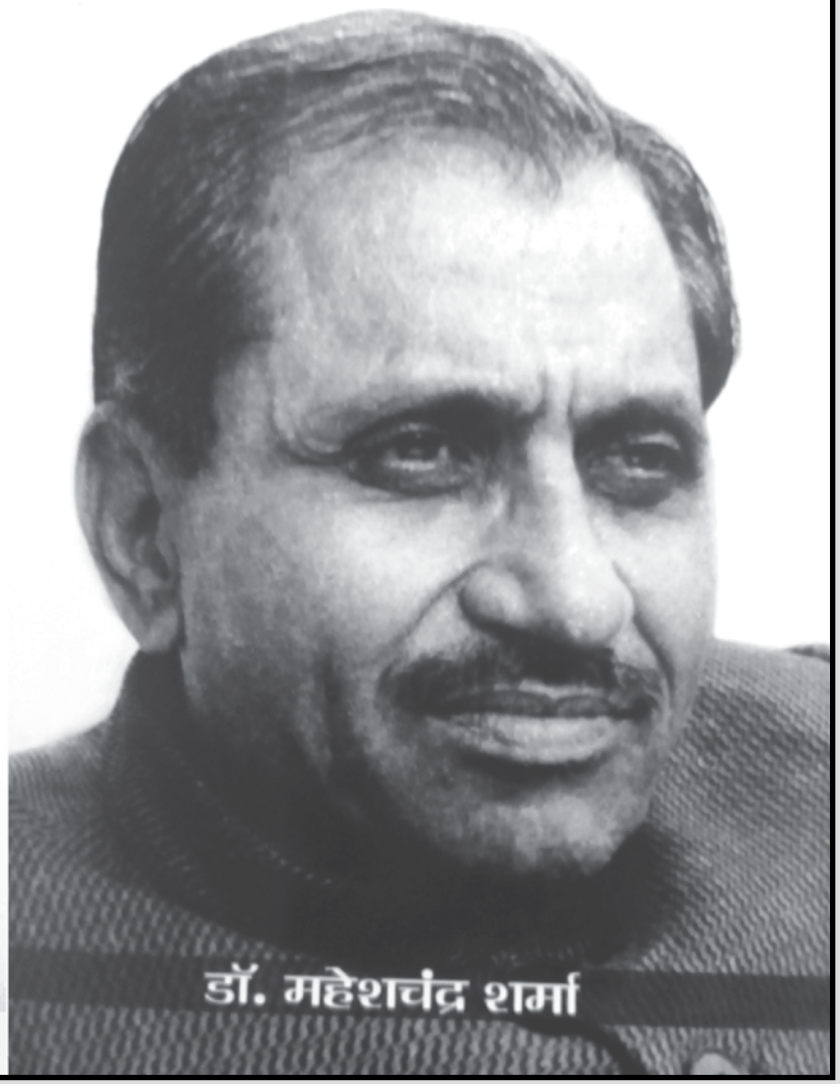

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

'मंथन' की सदस्यता लें

एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान से प्रकाशित शोध त्रैमासिक पत्रिका 'मंथन' की सदस्यता लें। भारत–विचार–दर्शन पर केंद्रित इस पत्रिका की सदस्यता के लिए व्यक्ति/संस्थान कृपया निम्न पते पर सूचित करें और शुल्क एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के नाम से स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, एकाउंट नं. 10080533188, आईएफएससी–एसबीआईएन0006199 में जमा करें।

सदस्यता विवरण

नामः .....

पताः .....

..... राज्यः ..... पिनकोड : .....

लैंड लाइनः ..... मोबाइलः (1)..... (2).....

ई मेलः .....

जन–मार्च 2019 से पुनर्निधारित मूल्य

	भारत में	विदेश में
एक प्रति	₹ 200	US$ 9
वार्षिक	₹ 800	US$ 36
त्रिवार्षिक	₹ 2000	US$ 100
आजीवन	₹ 25,000	

प्रंबध संपादक

'मंथन' त्रैमासिक पत्रिका

एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002

दूरभाष : +91-9868550000, 011-23210074

ई–मेल: info@manthandigital.com

प्रभात प्रकाशन

नवनूतन प्रकाशन की गौरवशाली परंपरा

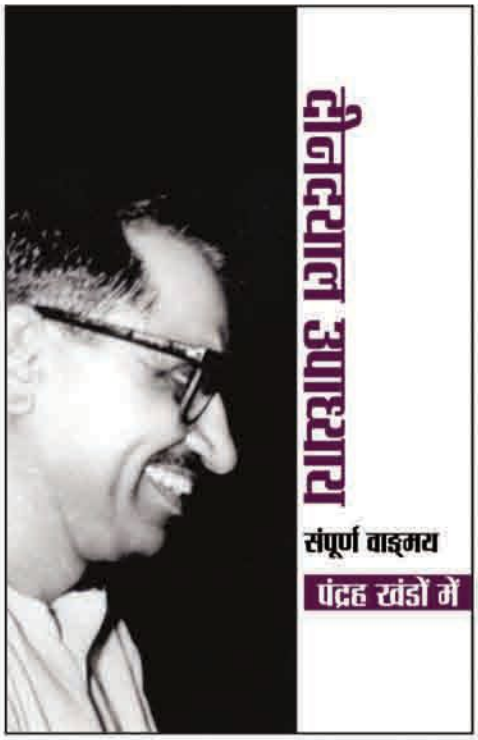

दीनदयाल उपाध्याय

संपूर्ण वाङ्मय (पंद्रह खंडों का सैट)

9 अक्तूबर, 2016 को नई दिल्ली के विज्ञान भवन में पं. दीनदयाल उपाध्याय जन्म शताब्दी वर्ष के अवसर पर डॉ. महेश चंद्र शर्मा द्वारा संपादित एवं प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 'दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय' के पंद्रह खंडों का लोकार्पण भारत के प्रधानमंत्री मान. श्री नरेंद्र मोदी, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरकार्यवाह मान. श्री सुरेश (भय्याजी) जोशी व भारतीय जनता पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष मान. श्री अमित शाह के करकमलों द्वारा संपन्न हुआ।

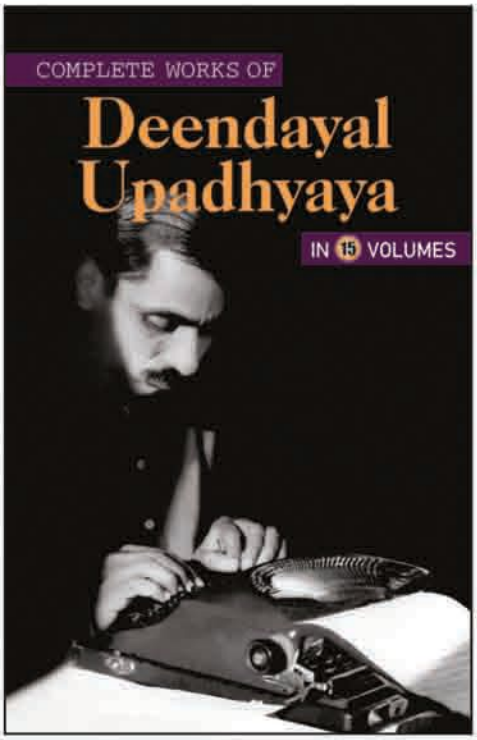

COMPLETE WORKS OF DEENDAYAL UPADHYAYA

(Set of 15 Volumes)

11 फरवरी, 2019 को भारत के राष्ट्रपति मान. श्री राम नाथ कोविंदजी को 'Complete Works of Deendayal Upadhyaya' की प्रथम प्रति भेंट करते हुए प्रधान संपादक डॉ. महेश चंद्र शर्मा

प्रभात प्रकाशन
ISO 9001:2015 प्रकाशक
4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002
हेल्पलाइन नं. 7827007777 ☎ 011-23289777
E-mail : prabhatbooks@gmail.com ✣ Website : www.prabhatbooks.com

एकात्म मानवदर्शन
अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान
28 मीना बाग, नई दिल्ली-110001
☎ 011-23062611
इ-मेल : ekatmrdfih@gmail.com

Regd. R.No. 32486/78 (Hindi)

AGRICULTURE & FARMERS WELFARE

Mukhya Mantri Fasal Bima Yojana (MMFBY):

Enabling the paddy growers to come under insurance coverage by paying only Rs. 10/ per kani (0.16 ha) an amount of Rs. 5.04 Cr has been supported from the state budget during 2020-21.Due to the support from the state government farmers enrolment has been increased by 1190%(during 2018-19 to 2020-21) over achievement during 2015-16 to 2017-18. Similar programme is being implemented during 2021-22 also.

Pradhan Mantri Kisan SammanNidhi (PM-KISAN):

With a view to supplement the financial needs of the small and marginal farmers in procuring various inputs for ensuring proper crop health and appropriate yields and also to protect the farmers from falling in the clutches of moneylenders for meeting such expense, Government of India has launched new Central Sector Scheme, namely, "Pradhan Mantri Kisan Samman Nidhi (PM-KISAN)" on 1st February,2019. Each eligible farmers is being paid Rs.6000 per year directly to their bank accounts in three equal installments.

Year	Farmers benefitted @ Rs.6000/-per annum(No.)-Cumulative	Amount transferred directly to the accounts of beneficiaries (Rs. in Crore)-cumulative
2018-19	151857	30.37
2019-20	199707	113.29
2020-21	229915	129.26
2021-22	235950	361.63

Krishak Bandhu Kendra(KBK):

Farmers of 8-10 adjacent villages are being trained on modern agricultural practices, different plant protection measures available scheme benefits, soil health, use of modern machineries & implements etc. under a single roof on every working day from 2 PM to 5.30PM.Till Novemeber 2021, 25 such Krishak bandhu kendras have been opened and are functional in different corners of the state. More 12 KBKs will be functional shortly.